

# भक्ति संवेदना और सत्ता प्रतिष्ठान : पुष्टिमार्गीय साहित्य के संदर्भ में

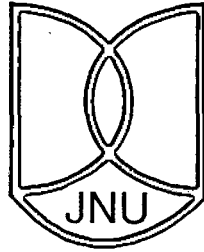
पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध-कर्ता

बजरंग बिहारी तिवारी

शोध-निर्देशक

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल



भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067



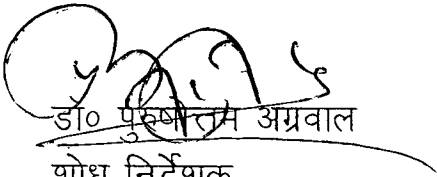
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय  
**JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY**  
School of Language, Literature, & Culture Studies  
NEW DELHI-110067, INDIA

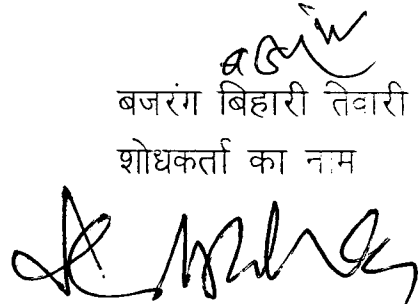
भारतीय भाषा केन्द्र

दिनांक : 12.7.2000

प्रमाण पत्र

मैं द्यौषणाकराई मैमै (बजरंग बिहारी तिवारी) द्वारा प्रस्तुत  
“भक्ति संवेदना और सत्ता प्रतिष्ठान : पुष्टिमार्गीय साहित्य के संदर्भ में”  
शीर्षक शोध प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी  
भी विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया  
गया है। यह शोध प्रबंध मेरी (बजरंग बिहारी तिवारी की) मौलिक कृति है।

  
डॉ० पुष्पलता अग्रवाल  
शोध निर्देशक  
भारतीय भाषा केन्द्र  
ज०ने०वि० नई दिल्ली - ६७

  
बजरंग बिहारी तिवारी  
शोधकर्ता का नाम  
प्रो० नसीर अहमद खान  
अध्यक्ष  
भारतीय भाषा केन्द्र  
ज०ने०वि० नई दिल्ली - ६७

बर्ट्रेण्ड रसेल की स्मृति में

अपराजिता के लिए

## अनुक्रम

### पृष्ठ संख्या

भूमिका

एक से सात

अध्याय - एक

1 - 41

पुष्टिमार्ग का उदय और विकास : ऐतिहासिक  
पृष्ठभूमि

अध्याय - दो

42 - 88

मध्यकाल के प्रमुख संप्रदाय और पुष्टिमार्ग

अध्याय - तीन

89 - 146

पुष्टिमार्ग का आंतरिक सत्तातंत्र

अध्याय - चार

147 - 211

पुष्टिमागीय अनुशासन में कवि और कविता

अध्याय - पांच

212 - 283

पुष्टि मार्ग का विस्तार : राग, भोग और शृंगार  
की त्रयी

उपसंहार

284 - 292

ग्रंथानुक्रमणिका

293 - 298



## भूमिका

नवजागरण के दौर में जो स्थान 'समाजों' का है, मध्यकाल में वही संप्रदायों, पंथों का । कोई भी बड़ा आंदोलन सिर्फ एकल प्रयासों से नहीं चलता, लोगों का संगठित दल ही उसे संचालित नियंत्रित करता है । यह संगठित समूह भक्ति काल में संप्रदाय और पंथ के नाम से जाना जाता है और आधुनिक काल में समाज के नाम से । भक्ति आंदोलन को रूपाकार देने की चेष्टा बल्लभ संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, रामानंदी संप्रदाय, कबीर पंथ, दादू पंथ, नानक पंथ आदि करते हैं । नवजागरण काल में ऐसा ही प्रयत्न ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि के द्वारा किया जाता है । इसलिए, इन आंदोलनों को समग्रता में समझने के लिए इन संगठित प्रयत्नों को समझना अनिवार्य है । एक आंदोलन में जबकि एक से अधिक संगठित प्रयत्न चल रहे होते हैं तो यह कतई जरूरी नहीं कि उनके मकसद और कार्य प्रणाली भी एक जैसी हो । बहुधा वे अपने उद्देश्यों में एक-दूसरे के विरोधी होते हैं । उनके आपसी टकरावों, समझौतों से आंदोलन की चेतना निर्मित होती है । आंदोलन को समग्रता में समझने के लिए ऐसे प्रयत्नों पर एकाग्र और सम्मिलित अध्ययन होने चाहिए । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस उद्देश्य की पूर्ति का एक विनम्र प्रयास है ।

मुक्तिबोध ने भक्ति आंदोलन के अवसान के कारणों पर विचार करते हुए रामभक्ति शाखा की चर्चा की थी । अत्यंत संक्षेप में ही मुक्तिबोध ने बताया था कि सामाजिक बदलाव की आकांक्षा से प्रेरित निगुण भक्ति आंदोलन को रामभक्ति शाखा ने नख-दंत-विहीन किया । मुक्तिबोध का यह अर्थपूर्ण संकेत इस शोध प्रबन्ध के आधारभूत प्रेरकों में से एक है । यह जिज्ञासा मन में बनी हुई थी कि भक्ति आंदोलन अपनी संपूर्णता में वर्ण, जाति, धर्म, लिंग जैसे सामाजिक भेदों-उपभेदों से कितना मुक्त हो सका था ? क्या सचमुच सगुण भक्ति धारा का उदय सामाजिक

बदलाव की चिनगारी को बुझाने के लिए हुआ था? या कि वह बदलाव के मूल चेतना का ही विस्तार था? दूसरी परंपरा की खोज में डा० नामवर सिंह इस समस्या को उठाते तो हैं, पर मुक्तिबोध का हवाला देने के बाद चुप रह जाते हैं। प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी भक्ति आन्दोलन के उदय की व्याख्या के संदर्भ में डा० नामवर सिंह के संकोच को व्याख्यायित करते हुए उन्हें 'काकुतर्की' तक बता देते हैं। हमारे वक्त के इन दो बड़े आलोचकों के बीच का विवाद यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि भक्ति आंदोलन पर विचार-विमर्श गुजरे हुए दिनों की कहानी नहीं, एक जीवंत औरसमकालीन मुद्दा है।

सगुण भक्ति धारा के दो केन्द्रीय आराध्य हैं - राम और कृष्ण। यह बात ध्यान देने की है कि मिथक निर्माता पुराणकारों से लेकर भक्ति आंदोलन के संप्रदाय प्रवर्तकों तक राम का चरित्र <sup>अपेक्षाकृत बड़े</sup> आकर्षण का केन्द्र नहीं बन सका। कृष्ण चरित ही ज्यादातर लोगों को लुभाता रहा। मध्य-काल की सगुण भक्ति धारा में कृष्ण का ही बोलबाला रहा। आधुनिक काल में आचार्य शुक्ल की आलोचना ने जो चमत्कार पैदा किया उसके चलते कृष्ण भक्ति धारा रामभक्ति धारा की तुलना में गौण लगने लगी। सगुण भक्ति धारा के दो बड़े संप्रदायों के आराध्य कृष्ण ही हैं। बल्लभ और चैतन्य संप्रदाय हिन्दी क्षेत्र से बाहर दूसरे प्रांतों में भी फले-फूले। उनके अनुयायियों की संख्या भी अपेक्षाकृत ज्यादा रही। चैतन्य संप्रदाय ने भक्ति के सिद्धांत विकसित करने में पर्याप्त रुचि दिखाई, जबकि बल्लभ संप्रदाय ने सिद्धांत निर्माण में भागीदारी के साथ ब्रजभाषा में पद रचना को बहुत प्रोत्साहन दिया। भक्ति काल के सबसे अधिक रचनाकार पुष्टिमार्ग के ही हैं। पुष्टिमार्ग के सांप्रदायिक ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे गए। वार्ता ग्रंथों से ब्रजभाषा गद्य का एक स्वरूप तैयार हुआ। शोध के लिए पुष्टि मार्ग का चयन करते वक्त इस तथ्य का ख्याल भी रखा गया।

ऐसा नहीं है कि भक्ति आन्दोलन में पुष्टि मार्ग के केन्द्रीय महत्व को यहाँ पहली बार उद्घाटित किया जा रहा है। स्वयं

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बल्लभाचार्य कोवैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रधान प्रवर्तकों में गिना था । शुक्ल जी ने पुष्टिमार्गी वार्ता ग्रंथों की प्रामाणिकता पर सन्देह किया था, लेकिन बल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ के साथ सूरदास, परमानंददास आदि अष्टह्वापी कवियों के जीवन वृत्तान्त वार्ता ग्रंथों के आधार पर ही प्रस्तुत किया था । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सूर पर विचार करते हुए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का सहारा लिया था । पुष्टि मार्ग पर विस्तार से शोध करने वाले विद्वानों ने वार्ता साहित्य के साथ दूसरे सांप्रदायिक ग्रंथों की भी प्रामाणिक बताया । बल्लभ संप्रदाय पर व्यवस्थित रूप से अनुसंधान करने वाले विद्वान हैं - द्वारकादास पारीख, प्रभुदयाल मीतल, दीनदयाल गुप्त, गोवर्धन नाथ शुक्ल, हरिहर नाथ टंडन, रामकृष्ण शर्मा और शकुंतला शर्मा । यह बात ध्यान देने की है कि ये सभी अनुसंधानकर्ता या तो पुष्टिमार्गी हैं या पुष्टिमार्ग में श्रद्धा रखने वाले । इसलिए, इनके यहां आलोचनात्मक विवेक से ज्यादा श्रद्धाभाव सक्रिय है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस मायने में अलग है कि शोधकर्ता न तो पुष्टिमार्गी है और न ही शोध और आलोचना के क्षेत्र में तर्क की जगह श्रद्धा को महत्व देनेवाला ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध पांच अध्यायों में विभाजित है । अध्यायों का विभाजन इस दृष्टि से किया गया है कि भक्ति आन्दोलन में बल्लभ संप्रदाय की भूमिका स्पष्ट हो सके, तत्कालीन संप्रदायों के प्रति उसके दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त हो सके और संप्रदाय के उद्देश्य, कार्य-प्रणाली तथा आंतरिक अनुशासन की अपेक्षित जानकारी मिल सके । शोधकर्ता का उद्देश्य बल्लभ मतानुयायियों की भावनाओं को आहत करना कदापि नहीं रहा है । लेकिन, विश्लेषण के क्रम में शोध की मयांदा का सम्मान करते हुए ही टिप्पणियां दी गई हैं । इसलिए अगर किसी श्रद्धालु को कोई निष्कर्ष या टिप्पणी अप्रिय लगे तो शोधकर्ता क्षमाप्रार्थी है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्यायों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

पहले अध्याय 'पुष्टिमार्ग का उदय और विकास : ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि' में मध्यकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों की समीक्षा करते हुए पुष्टिमार्ग के उदय के कारणों पर रोशनी डाली गई है। पुष्टिमार्ग का उदय भक्ति आंदोलन के उदय से अलग-थलग नहीं जा सकता। इस क्रम में भक्ति आंदोलन के उदय की भी यथावश्यक जानकारी दी गई है। भक्ति आंदोलन में इस्लाम की भूमिका पर नए सिरे से विचार का प्रस्ताव है। मुस्लिम शासन सत्ता को स्याह व सफेद जैसे खानों में रख कर देखने के बजाए उसकी मिली-जुली भूमिका स्पष्ट की गई है। बल्लभ संप्रदाय ने मुस्लिम शासकों से किस तरह मधुर संबंध बनाया और इसके बदले में उन्हें कौन से लाभ हुए, यह इस अध्याय का केन्द्रीय भाग है। भक्ति आंदोलन के बारे में कई प्रचलित अवधारणाओं, मान्यताओं पर पुनर्विचार की ज़रूरत को यह अध्याय सशक्त रूप से रेखांकित करता है।

दूसरे अध्याय 'मध्यकाल के प्रमुख संप्रदाय और पुष्टि मार्ग' में अन्य संप्रदायों के प्रति पुष्टि मार्ग के दृष्टिकोण का खुलासा किया गया है। बल्लभ संप्रदाय अपने समय का संभवतः सबसे बड़ा संप्रदाय था। पुष्टिमार्गी आचार्यों ने इसे अन्य संप्रदायों से श्रेष्ठतर बताया। पुष्टि-मार्गी साहित्य में जिन संप्रदायों का उल्लेख मिलता है, उनमें मर्यादा मार्ग, शैव मत और शाक्त मत पारंपरिक संप्रदाय हैं। दार्शनिक स्तर पर बल्लभ संप्रदाय को अद्वैत वेदान्त से झूझना पड़ा था। सत्ताप में ही सही, पर रामोपासकों की चर्चा भी वातावरण में हुई है। चैतन्य महाप्रभु का गौडीय संप्रदाय बल्लभ संप्रदाय के समक्ष किस रूप में खड़ा था, यह भी दूसरे अध्याय में विवेचित किया गया है। ब्रजमंडल के दो ऐसे संप्रदाय और थे जिनके बारे में यों तो पुष्टि मार्गी ग्रंथ कोई सूचना नहीं देते, पर अध्याय को पूर्णता प्रदान करने के लिए उनका संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। ये संप्रदाय हैं - राधावल्लभ और हरिदासी।

'पुष्टिमार्ग का आंतरिक सत्तातंत्र' शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय है। इस अध्याय में बल्लभ संप्रदाय का अपने अनुयायियों के प्रति रवैये का

विश्लेषण है। इस अध्याय में पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है और संप्रदाय में दीक्षित हो जाने के बाद जिन प्रतिबंधों, उपबंधों के अधीन वैष्णवों को रहना पड़ता है, उस पर विचार किया गया है। उत्तम वैष्णव के लक्षण गिनाते हुए पूर्ण समर्पण की व्यावहारिक परिणतियों की व्याख्या की गई है। उत्तम वैष्णव की पहचान इस पैमाने से की जाती है कि उसमें दासता बोध कितना गहरा और अविचल है। दास-धर्म की रक्षा पुष्टि मार्ग में प्राण-पण से की जाती है। सेवक में तर्क, जिज्ञासा और शंका जन्म न ले सके इसका समुचित प्रावधान आचार्यों ने कर दिया था। अपनी मान्यता को पुष्टि करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण वैष्णवों के जीवन प्रसंग पेश किए गए हैं। अन्याश्रय प्रसंग में पुष्टिमार्गी आचार्यों की व्यवस्थाएं विवेचित हैं। मीरा-प्रसंग में बल्लभ संप्रदाय की मीरा के प्रति दृष्टि किंचित विस्तार से वर्णित है। इस अध्याय के अंतिम भाग में स्त्री और शूद्र के प्रति बल्लभ संप्रदाय की कथित उदारता का जायजा लिया गया है।

अध्याय चार में 'पुष्टि मार्गीय अनुशासन में कवि और कविता' की छानबीन हुई है। भक्तिकालीन रचनाकारों के लोकाश्रित होने पर आम सहमति है। यह धारणा बनी हुई है कि भक्त कवि विषय वस्तु के चयन और पद रचना में पूर्णतया स्वतंत्र थे। अष्टछापी कवियों का हवाला देते हुए इस धारणा का खण्डन किया गया है। इन कवियों पर संप्रदाय के नियम किस तरह लागू होते थे उनकी रचनाओं या रचनात्मक प्रतिभा का किस तरह इस्तेमाल किया गया था यह सप्रमाण निरूपित किया गया है। सूरदास को अपने जीवन के अंतिम क्षणों में महाप्रभु बल्लभ के प्रति अपनी अनन्य भक्ति प्रदर्शित करनी पड़ी थी। सूर के अतिरिक्त अन्य कवियों ने सिर्फ बल्लभाचार्य की स्तुति नहीं की, अपितु किट्ठलनाथ तथा उनके सातों पुत्रों की बधाई भी गाई थी। इससे साबित होता है कि ये कवि अगर चारण परंपरा में नहीं तो उसके नजदीक तो थे ही।

बल्लभ संप्रदाय का विस्तार : राग, भोग और शृंगार की त्रयी 'शोध प्रबन्ध' का पांचवां और अंतिम अध्याय है। इस अध्याय

में पुष्टिमार्ग के क्रमशः वैभवशाली बनने की कहानी है । वैभव का प्रदर्शन संप्रदाय में तरह-तरह से किया जाता था । राग, भोग और शृंगार की त्रयी का विधान इसी के परिणाम हैं । इस अध्याय में बल्लभाचार्य से लेकर गोस्वामी हरिराय तक पुष्टिमार्ग की आचार्य परंपरा का निरूपण है और साथ ही संप्रदाय के कुछ प्रसिद्ध प्रसंगों, विवादों का जिक्र भी है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए आधारभूत सामग्री जुटाने में बड़ी दिक्कत आई । पुष्टिमार्गी मंदिरों में साम्प्रदायिक ग्रंथों के रखरखाव और पठन-पाठन के लिए विद्या-विभाग हुआ करते हैं । इनमें कांकरौली का विद्या विभाग अत्यंत समृद्ध माना जाता है, लेकिन साम्प्रदायिक लोगों की अध्ययन में अरुचि के चलते इस समय यह विद्या विभाग अत्यंत दयनीय अवस्था में है । मुझे अपने शोध की ज्यादातर सामग्री इसी विद्या विभाग से मिली । विद्या विभाग के संचालक श्री बिन्दुलाल शर्मा ने यथासंभव सहयोग दिया । तृतीय पीठ के कर्मान पीठाधीश्वर गोस्वामी ब्रजेश कुमार जी महाराज ने विद्या विभाग के उपयोग की अनुमति देकर बड़ी कृपा की । कांकरौली प्रवास के दौरान 'संबोधन' पत्रिका के संपादक कमर मेवाड़ी साहब ने बड़ी मदद की । नाथद्वारा का साहित्य मंडल भी पुष्टिमार्गी ग्रंथों का एक अच्छा केन्द्र है । इसके संचालक पुष्टिमार्गी विद्वान भगवती प्रसाद देवपुरा जी हैं । उन्होंने मुझे शोध से संबंधित पुस्तकें उपलब्ध कराईं । इसके अलावा मथुरा, प्रयाग तथा अयोध्या के कई पुस्तकालयों में जाना हुआ । पुस्तकालयों के कर्मचारियों ने अपेक्षित और उपलब्ध पुस्तकों के अवलोकन की अनुमति देकर अनुग्रहीत किया । शोध से संबंधित जरूरी पुस्तकें जुटाने में देशबन्धु कालेज की लाइब्रेरी से बहुत सहायता मिली । लाइब्रेरियन सुनीता कुमारी तथा सतवंत कौर का आभारी हूँ । इसके अलावा साहित्य अकादमी पुस्तकालय और जे. एन. यू. पुस्तकालय का भी आभारी हूँ ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निर्देशक आदरणीय डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं । विषय के चुनाव से लेकर शोध प्रबन्ध के पूरा होने तक उनका आत्मीय और

बौद्धिक निर्देशन प्राप्त होता रहा । उन्होंने जो एकेडमिक फ्रीडम प्रदान किया वह अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है ।

आदरणीय प्रो० मैनेजर पाण्डेय, प्रो० नित्यानन्द तिवारी, डा० कुसुम बाण्डिया व डा० सुमन केसरी ने न सिर्फ शोध कार्य में रुचि दिखाई वरन् समय-समय पर उचित सलाह भी दी । इनके प्रति हार्दिक आभार ।

देशबन्धु महाविद्यालय के सहयोगियों में डा० रामस्वरूप शर्मा, डा० शशि मेहरा, डा० होतीलाल शर्मा, डा० विक्रमसिंह, डा० मंजू दीवान और स्मृति शेष डा० विनीता अग्रवाल के प्रति कृतज्ञ हूँ । डा० अनिल सेठी, डा० अमिय सेन, संजीव कुमार, भाई उमेश फा, डा० मोहन जीत सिंह, डा० के. एस. भाटिया तथा राजीव कुंवर, महेन्द्र बनीवाल, विन्ध्याचल हिमांशु पंड्या, प्रेम कुमार, ओम प्रकाश से हुए विचार-विमर्श का फायदा मिला है । आदरणीय राजेंद्र यादव ने इस शोध-प्रबंध की कुछेक स्थापनाओं पर अपनी राय देकर उत्साह बढ़ाया है । ललित कार्तिकेय जी से समय-समय पर हुई बातचीत का फायदा शोध-प्रबन्ध लिखते हुए मिला ।

मित्र रामचन्द्र लातार मेरा हौसला बढ़ाते रहे । विभव, अनुराग, सैफ, राकेश रंजन, लल्लन जी, संदीप जी, फिरोज, संजय, अजित नायक, राजीव रंजन के प्रति कृतज्ञ हूँ ।

श्री भारत प्रकाश भाटिया ने इस शोध प्रबंध को पूरे मनोयोग से पढ़ा, गलतियाँ सुधारीं तथा बेहतर ढंग से टाइप किया । हार्दिक आभार ।

शोध-प्रबंध पूरा करने के लिए सुधा तथा रुचिता लातार उत्साह-वर्द्धन करती रहीं । उनके प्रति आभार । छोटे भाई राम बिहारी ने परिष्मपूर्वक संदर्भ ग्रंथ सूची तैयार की । इसके लिए उन्हें ढेर सा धन्यवाद ।

पुष्टि मार्ग का उदय और विकास : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मध्यकाल की सांस्कृतिक स्थिति के विवेचन का अनिवार्य संदर्भ इस्लाम से जुड़ता है। पुष्टिमार्ग के संस्थापक बल्लभाचार्य ने अपने 'कृष्णाश्रय' नामक ग्रंथ में लिखा है, 'देश मलेच्छों से आक्रान्त है, मलेच्छों से दबा हुआ देश पाप का स्थान बन गया है। सत्पुरुषों को पीड़ा दी जाती है। सम्पूर्ण लोक इस पीड़ा से पीड़ित है, ऐसे में भगवान् कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं। गंगा आदि सब उत्तम तीर्थ भी दुष्टों से आक्रान्त हो रहे हैं, इसलिए इन आधिदैविक तीर्थों का महत्व भी तिरोहित हो गया है। ऐसे समय में केवल कृष्ण ही मेरी गति हैं।' <sup>1</sup> उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर मध्यकाल के सबसे बड़े धर्माचार्य की पीड़ा समझी जा सकती है। बल्लभाचार्य जब श्रीकृष्ण की शरण में जाने का औचित्य-निर्लपण कर रहे थे, उस समय सिकन्दर लोदी का शासन (सन् 1489-1517 ई०) था। सिकन्दर लोदी की धार्मिक कट्टरता लगभग सभी इतिहास-विदों ने स्वीकार की है। अपनी प्रथम ब्रज यात्रा (सन् 1493 ई०) में महाप्रभु बल्लभाचार्य ने गोकुल का अनुसंधान करके वहाँ गोविन्द घाट पर श्रीमदभागवत का पारायण किया था। उसी स्थल पर उन्होंने श्रावण शुक्ल एकादशी को अपने प्रमुख सेवक दामोदरदास हरसानी को सर्वप्रथम मंत्र दीक्षा दी थी। 'इस प्रकार उन्होंने समर्पण मंत्र द्वारा 'पुष्टिमार्गीय' सम्प्रदाय की स्थापना की थी।' <sup>2</sup> प्रभुदयाल मीतल ने अपने शोध-ग्रंथ में बल्लभाचार्य की प्रथम ब्रज-यात्रा के प्रसंग में लिखा है, 'जब आचार्य जी ब्रज में आए, उस समय यह धार्मिक प्रदेश दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी की मजहबी तानाशाही के कष्टों से कराह रहा था। सिकन्दर लोदी बड़ा तास्सुवी और क्रूर शासक था। ऐसा कहा जाता है, वह एक निम्न जातीय हिन्दू माता



का पुत्र था, इसलिए तुर्क मुसलमान सरदार उसे सुल्तान बनाने के पक्ष में नहीं थे । उसने हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार कर यह सिद्ध करना चाहा था कि वह भी किसी कट्टर मुसलमान से कम नहीं है । उसके काजी मुल्लाओं और राजकीय कर्मचारियों ने मथुरा में ऐसे अमानवीय आदेश जारी कर रहे थे कि उनसे वहाँ के निवासियों का जीवन दूभर हो गया था ।<sup>3</sup> वार्ता साहित्य में इन मजहबी अत्याचारों की स्मृतियाँ सुरक्षित हैं । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत गोविन्ददास भल्ला की वार्ता में लिखा गया है, 'जब वा कारीगर ने कही जो वह निवार तो श्री ठाकुर जी की है तब हाकिम ने कही जो वह निवार मैं देखूंगी पाछे हाकिम श्रीठाकुर जी के दिवाले में जायके सिज्या ऊपर चढ़ि बैठ्यो सो गोविन्ददास ने सुनी तब गोविन्ददास ने आपके गुप्ती लैके हाकिम को गारी दीनी जो तू कौन है जो हमारे श्री ठाकुर जी की सिज्या ऊपर बैठ्यो है ऐसे वा हाकिम को ठौर मार्यो तब हाकिम के मनुष्यन ने गोविन्ददास को ठौर मार्यो ।'<sup>4</sup> श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि जब श्री आचार्य जी मथुरा में यमुना स्नान करने के लिए विश्राम घाट की ओर जाने लगे तब उजागर चौबे तथा दूसरे लोगों ने रोका । उसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा - 'दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी का कामदार रुस्तम अली यहाँ आया था । उसका चौबों ने उपहास किया । उससे रुष्ट होकर उसने विश्राम घाट पर एक ऐसा यंत्र टांग दिया है कि उसके नीचे होकर जो हिन्दू निकलता है उसकी चौटी कट जाती है और दाढ़ी निकल आती है । इस प्रकार मुसलमान किए जाने के भय से कौई भी हिन्दू यमुना-स्नान नहीं कर पाता है ।'<sup>5</sup> इस क्रम में आगे लिखा गया है कि आचार्य जी ने अपने दो सेवकों को एक यंत्र देकर दिल्ली भेजा जिससे प्रभावित होकर सिकन्दर लोदी ने मथुरा की यंत्र बाधा को हटाने के लिए आदेश जारी कर दिया ।<sup>6</sup> वार्ता की अपनी कथन शैली और प्रसंगों को अलौकिक ढंग से पेश करने की पद्धति है । उसे ध्यान में रखकर

देखें तो पाएंगे कि इस घटना में ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि न तो मथुरा के चौबों द्वारा सिकन्दर लोदी के कामदार का उपहास करना आसान था, न ही किसी करामाती यंत्र के द्वारा सिकन्दर लोदी को प्रभावित करना।

6 इस घटना में तथ्य की बात यह है कि बल्लभाचार्य के ब्रज आने से पहले मथुरा के विश्राम घाट पर हिन्दुओं का स्नान था, जहाँ हिन्दू अपने मृतकों का दाह संस्कार करने के बाद स्नानादि किया करते थे। सिकन्दर लोदी ने मथुरा के हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने के लिए उनके धार्मिक कृत्यों पर कड़ी पाबन्दी लगा दी थी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में सुरक्षित 'तबकाते अकबरी' की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रोफेसर हलीम ने लिखा है कि सिकन्दर लोदी के शासन में राज्य की ओर से मथुरा के घाटों पर कर्मचारी नियुक्त थे जो हिन्दुओं को मथुरा में स्नान नहीं करने देते थे और बाल नहीं बनवाने देते थे।<sup>7</sup> प्रोफेसर हलीम की तरह डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, 'मूर्तियों का तहन करना, सब प्रकार के विपरीत विश्वासों का हनन करना, काफिरों (हिन्दुओं) को मुसलमान बनाना - ये कृत्य एक आदर्श मुसलमान के कर्तव्य समझे जाते थे। ... सिकन्दर लोदी के समय में तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का एक आन्दोलन सा चल गया था। राज्य की ओर से मुसलमान धर्म न मानने वाली प्रजा पर बड़े-बड़े प्रतिबंध लगे थे। बलपूर्वक उसे मुसलमान बनाना तो साधारण बात थी। उसे एक प्रकार का कर जो 'जज़िया' कहलाता था, राज्य को देना होता था।<sup>8</sup> 'तारीख़े दाउदी' जहांगीर कालीन लेखक अब्दुल्ला की रचना है। इसमें सिकन्दर लोदी के धर्मोन्माद और अत्याचारों का जो उल्लेख है, उसे ग्राउस महोदय ने इस प्रकार उद्धृत किया है, 'सिकन्दर ने मथुरा के हिन्दुओं पर सिर मुड़वाने तथा धार्मिक कृत्य करने की कड़ी पाबन्दी लगा दी थी। उसके आदेश के कारण मथुरा में हिन्दुओं को नाई मिलना कठिन हो गया था।<sup>9</sup> अब्दुल्ला से पहले अकबर कालीन इतिहास लेखक फरिश्ता ने भी 'तारीख़े फरिश्ता' में लिखा था, 'सिकन्दर का आदेश था कि कोई हिन्दू यमुना स्नान न करे। उसने नाइयाँ

को कड़ी हिदायत दी थी कि वे हिन्दुओं के सिरों और दाढ़ियों को न मूँटें । उसके कारण हिन्दू अपनी धार्मिक क्रियाएं नहीं कर सकते थे।<sup>10</sup> गैर मुसलमानों के प्रति तत्कालीन शासकों, विशेषकर सिकन्दर लोदी की दमनकारी प्रवृत्ति के चलते जो स्थिति बनी थी, उसमें पूजा स्थलों का ढहाया जाना आम बात थी । तत्कालीन साम्प्रदायिक साहित्य में इसके कई साक्ष्य मिलते हैं । श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ दिग्विजय' में सिकन्दर लोदी के राज कर्मचारियों द्वारा मथुरा में किए जाने वाले अत्याचारों का उल्लेख है । 'कांकरौली का इतिहास' नामक ग्रंथ में लिखा गया है कि 'आचार्य चरण की त्याग वृत्ति से प्रभावित होकर सिकन्दर लोदी ने वैष्णव सम्प्रदायों के साथ किसी प्रकार का जोर जुल्म न करने की मुनादी फिटवा दी ।'<sup>11</sup> प्रभुदयाल मीतल ने इस कथन को 'सर्वथा अप्रामाणिक' बताया है । उनके अनुसार 'सिकन्दर लोदी पर मजहबी उन्माद उसके समस्त शासन काल में बराबर जारी रहा था ।'<sup>12</sup> मीतल लिखते हैं, 'श्री आचार्य जी के प्रयास से सिकन्दर लोदी ने कुछ शतों के साथ मथुरा में हिन्दुओं को यमुना-स्नान करने और वहाँ के घाटों पर स्नान कराने की सुविधा प्रदान की थी । कदाचित्त उसके लिए राजकीय कर देना पड़ा था । उसी प्रकार का तीर्थ कर सुल्तानों के शासन काल में मथुरा में लगता था जिसे मुगल सम्राट अकबर ने संवत् 1620 में हटाया था । सुल्तानी काल में हिन्दुओं को हिन्दू बने रहने के लिए 'जजिया' नामका एक और कर भी देना पड़ता था, जिसे मुगल सम्राट अकबर ने ही संवत् 1627 में बंद किया था ।'<sup>13</sup>

उत्तर भारत पर मुसलमानी शासन को मुख्यतः दो भागों में बाँट कर देखा जाता है - सल्तनत काल और मुगल काल । जैसा कि हमने देखा बल्लभाचार्य के उभार के वक्त सल्तनत काल का आखिरी महत्वपूर्ण सुल्तान सिकन्दर लोदी शासन कर रहा था । सिकन्दर सैयद वंश का था । सैयद वंश से पहले तुग़लक, खिलजी, गुलाम तथा गोरी वंश के सुल्तान दिल्ली

की गद्दी संभाल चुके थे । इन वंशों की शासन अवधि ज्यादा दिनों की नहीं थी । इसीलिए, इनकी प्रशासनिक, धार्मिक नीतियां बहुत कुछ अस्थिर थीं । इनकी धार्मिक नीतियों के बारे में हमें जो साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, वे आम तौर पर शासकीय घोषणाएं हैं । इन घोषणाओं को पूरी तौर पर अमली जामा पहनाया जाता होगा, इसमें सन्देह की पर्याप्त गुंजाइश है । इतिहासकार श्रीराम शर्मा ने सुल्तानों की धार्मिक नीतियों पर विचार करते हुए कुछ ऐसे बिन्दु गिनाए हैं जिनके आधार पर हिन्दू प्रजा की स्थिति मुसलमानों से अलग होती थी ।<sup>14</sup>

सबसे महत्वपूर्ण विभेदक तत्व जज़िया नामक कर था । इस्लामी शासन में गैर मुसलमानों को रहने की इज़ाजत सिद्धान्ततः नहीं थी । यह रियायत उन्हें इस कर के भुगतान के कारण मिलती थी । मुस्लिम विधि संहिता 'फतवा-ए-आलमगीरी' जिसे औरंगजेब के शासन काल में तैयार किया गया था, जज़िया के दो प्रकारों की चर्चा करती है । एक, वह जिसे मुस्लिम शासन के अन्तर्गत आने वाले छोटे-छोटे क्षेत्रों को राजा अदा करते थे । दूसरे, सीधे मुस्लिम शासित इलाकों के लोग अदा करते थे । पहले प्रकार में कर का स्वरूप व्यक्तिगत नहीं था । इसका निर्धारण इलाके से प्राप्त राजस्व के ही अनुसार परस्पर सहमति से कर लिया जाता था जबकि दूसरे में, कर व्यक्तिगत तौर पर लगाया जाता था । जब भी कोई नया इलाका जीता जाता था, वहाँ के निवासी दूसरे क्षेत्रों में प्रचलित दर के अनुसार जज़िया कर का भुगतान करते थे । दूरदराज के क्षेत्रों में उत्तराधिकारी के गद्दी पर बैठने के साथ उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह जज़िया का भुगतान करे । जज़िया की अदाएंगी इस बात की सूचक थी कि क्षेत्र विशेष के शासक ने इस्लामी शासन की अधीनता स्वीकार ली है ।

सामान्य प्रजा के लिए जज़िया अतिरिक्त आर्थिक बोझ तो था ही, वह इस बात का भी लगातार एहसास कराता था कि वे एक

अजनबी शासन व्यवस्था में जी रहे हैं। यह कर गैर मुस्लिम (या कि हिन्दू) प्रजा के दोयम दर्जे को रेखांकित करता था। गैर मुस्लिम कुरान, पैगम्बर और इस्लाम के प्रतिकूल किसी प्रकार की टीका टिप्पणी नहीं कर सकते थे। वे किसी मुस्लिम के साथ विवाह नहीं कर सकते थे और मुस्लिम स्त्री से व्यभिचार के जुर्म में फँड़े जाने पर कठोरतम सजा का प्रावधान था। पुराने मंदिरों के उद्धार और नए मंदिर के निर्माण पर रोक थी। सुल्तान गैर मुस्लिमों की पोशाक के बारे में हुक्म जारी कर सकता था और उन्हें अच्छी नस्ल के घोड़ों की सवारी करने से रोक सकता था। गैर मुस्लिमों को सख्त हिदायत दी जाती थी कि वे अपने धार्मिक उत्सव इस प्रकार मनाएं जिससे किसी मुसलमान की आँखें या कान दूषित न हों। उन्हें मुसलमान फ़ोसियों के घरों से ऊँचे घर बनाने से रोक जा सकता था।

जज़िया के अलावा हिन्दुओं पर तीर्थ कर भी लगाया जाता था। ज्यादातर मुस्लिम शासक यह कर तीर्थ स्थलों और धार्मिक मेलों से कसूलते थे। जज़िया कर के भुगतान को टाला नहीं जा सकता था जबकि मेलों और धार्मिक स्थलों की यात्रा न करने वालों से यह टैक्स नहीं लिया जाता था। जज़िया नियमित वार्षिक कर था जबकि तीर्थ कर अवसर विशेष पर लगाया जाता था। जज़िया का भुगतान मुस्लिम शासित क्षेत्र में रहने वाले गैर मुस्लिम ही करते थे जबकि तीर्थ कर दूसरे राज्यों से आने वाले लोगों से भी लिया जाता था। आम तौर पर हिन्दुओं के मुंडन और अतिथि जैसे संस्कार तीर्थ स्थलों पर सम्पन्न किए जाते थे, इसलिए उन्हें यह कर देना ही पड़ता था।

जज़िया और तीर्थ कर हिन्दुओं को इस बात की छूट देते थे कि वे अपने धार्मिक क्रिया कलाप स्वतंत्रतापूर्वक संपन्न कर सकें। लेकिन यह स्वतंत्रता व्यक्तिगत स्तर पर दी जाती थी। सल्तनत काल में हिन्दुओं को सार्वजनिक पूजा करने की मनाही थी। वे देवताओं की मूर्तियों की सामूहिक पूजा नहीं कर सकते थे। यह कहना कठिन है कि सुल्तानों के

इस हुक्म की कितनी तामील हो पाती होगी । मुस्लिम बहुल इलाकों में इस पर अमल होता होगा, लेकिन दूसरी जगहों पर यह शासकीय पाबंदी बेअसर रही होगी । उस दौर के मुस्लिम इतिहासकार/सूचना संग्राहक ऐसी घटनाओं का जिम्मा मुश्किल से करते हैं जहाँ किसी सार्वजनिक पूजा के लिए हिन्दुओं को दंडित किया गया हो ।

सुल्तान जब भी कोई नया इलाका जीतता था, उस क्षेत्र के मंदिर प्रायः लूट लेता था । फिरोजशाह तुगलक ने अपने विजय अभियानों में कांगड़ा और जगन्नाथ पुरी के मंदिर लूटे और नष्ट किए थे । होली और दीवाली जैसे त्योहारों पर सिकन्दर लोदी जैसे कट्टर शासक हिन्दू प्रजा के साथ बहुत सख्ती बरतते थे ।

हिन्दू और मुसलमानों के बीच शासकीय नौकरियों के संदर्भ में फर्क किया जाता था । राजस्व के दस्तावेज प्रायः हिन्दी में होते थे जो इस विभाग में बड़ी संख्या में हिन्दुओं की नियुक्तियों से संभव थे । ध्यान देने की बात यह है कि ये हिन्दू कर्मचारी किसानों से सीधे लगान वसूलते थे और परगना अधिकारी को पहुँचाते थे । इस तरह वे सरकारी नौकर न होकर अपने समुदाय के कारिन्दे थे । राजस्व विभाग में उच्च पदों पर उनकी नियुक्तियाँ सामान्यतः नहीं होती थीं । सेना में हिन्दू सिपाहियों की भर्ती का रिवाज गजनवियों के समय से था । यहाँ भी उन्हें ऊँचे पद नहीं दिए जाते थे ।

‘फतवा-ए-आलमगीरी’ में कहा गया है कि हिन्दुओं को मुसलमानों के समान नहीं दिखना चाहिए । अलाउद्दीन ने आदेश जारी करके हिन्दुओं को महंगे पोशाक पहनने, घुस्सवारी करने और पालकियों में बैठने पर रोक लगा दी थी । गयासुद्दीन तुगलक ने लगभग ऐसे ही आदेश जारी किए थे । लेकिन ऐसे आदेश स्पष्टतया सामान्य आदेश नहीं थे । हिन्दुओं से कभी-कभार यह कहा जाता था कि वे अपनी नई पोशाकों पर ऐसे चिन्ह लगा लें जिससे कोई उन्हें मुस्लिम समझने की गलती न करे । ऐसे हुक्म सिर्फ

शहरों में जारी होते थे । गांव में ऐसे आदेशों के जारी होने का कोई मतलब नहीं था ।

सुल्तनत काल में मुसलमान धर्म परिवर्तन कर हिन्दू नहीं बन सकते थे और न मुस्लिम बने हिन्दू वापस अपने धर्म में लौट सकते थे । इस मामले में अपवाद कश्मीर का शासक जैनुल आबदीन (1420-1470) है जो असाधारण रूप से उदार था । इसने अपने शासन काल में जजिया नामक कर तो समाप्त किया है, मुस्लिम बने हिन्दुओं को वापस अपने धर्म में लौटने की अनुमति भी दी ।<sup>15</sup>

मुख्यतः

पुष्टिमार्गीय साहित्य में तीन मुस्लिम शासकों के नाम मिलते हैं - सिकन्दर लोदी, अकबर और औरंगजेब । अकबर को छोड़कर बाकी दोनों के प्रति बड़े कड़वे उद्गार व्यक्त किए गए हैं । साम्प्रदायिक ग्रन्थों से पता चलता है कि पुष्टिमार्ग से अकबर के संबंध बहुत घरेलू किस्म के थे । सुल्तनत काल की समाप्ति और अकबर के सिंहासनालङ्घ होने के दरम्यान दिल्ली की गद्दी पर बाबर, हुमायूँ और शेरशाह का आधिपत्य रहा । बाबर का शासन काल काफी हड़बड़ी भरा था, इसलिए उसके पास प्रशासनिक सुधारों के लिए वक्त नहीं था । उसने अपनी धार्मिक नीति लोदियों से भिन्न नहीं रखी । राणा सांगा के खिलाफ लड़ाई में मुसलमानों का पूर्ण समर्थन पाने के लिए उसने उन्हें कर मुक्त कर दिया ।<sup>16</sup> सिर्फ हिन्दुओं से ही राजस्व की उगाही होने लगी । इस तरह उसने इन दो कौमों के बीच मौजूद दरार को और चौड़ा कर दिया । उसके एक सेना अधिकारी हिन्दू बेग के बारे में कहा जाता है कि उसने संभल के एक मंदिर को मस्जिद बना दिया । चंदेरी पर विजय अभियान के दौरान सेना प्रमुख शैख जैन ने कई मंदिर ढहाए थे ।<sup>17</sup>

हुमायूँ का रवैया अपने पिता के मुकाबले थोड़ा उदार था । बैरम खाँ हुमायूँ का विश्वास पात्र अधिकारी था । बैरमखाँ शिया मुसलमान

था । मध्यकाल में कट्टर सुन्नी के लिए शिया का साथ लाभगुज्जा अपराध माना जाता था ।<sup>18</sup> बैरम खाँ का सान्निध्य हुमायूँ को सहिष्णु बनाने में सहायक सिद्ध हुआ । हुमायूँ ने मिर्जापुर जिले (उ० प्र०) में क्तारस के जंगमवादी मठ के रखरखाव के लिए 300 एकड़ ज़मीन दी थी ।

पुष्टिमागीय ग्रंथ 'भावसिंधु' में 'श्री आचार्य जी महाप्रभु की निजवार्ता' के अन्तर्गत लिखा गया है कि महाप्रभु वल्लभ की भेंट हुमायूँ से हुई थी और हुमायूँ ने आचार्य जी का द्रव्यादि द्वारा आदर-सत्कार किया था, 'सो एक समय श्री महाप्रभु जी थानेश्वर, कुरुक्षेत्र, सीह नंद पधारे सो या स्थल को आपने सनाथ कीयो । ओर रामानुज, जगतानंद आदि सबन को आपने शरण लीए । फेरि आप उहां सो विजय कीए । सो ईच्छा विचारि के दील्ली में निगमबोध घाट पे न्हाय के ब्रज को पधारे सो वा समय आपके संग में रामानुजपंडित, जगतानंद पंडित, वासुदेव दास ककड़ा, पूरन मल क्वत्री, अंबाले के त्रिपुरदास, यादवेन्द्र दास आदि भगवदीयन को समाज लैके दील्ली को पधारे । सो यह बात म्लेच्छन ने सुनी के हुमायूँ सो जाय अरज करी, जो साहिब पहेले जंत्र जो दील्ली में मथुरा दरवाजे पर लगाए सो कितने हिंदु हो गए सोई फकीर साहब पधारे हैं । सो न जाने कहा होनहार है । एसो दिल्ली में भारी शोर भयो और अपने दीन के गाम में हते, सो फकीर साहब को आए जानि के सब भाजि गए । कोई काजी रह्यो नाहि । सो अब हजरत आप बचाओ तो बचेंगे । नातर सब हिंदु हो जाता है । ... फेरि हुमायूँ ने यह बात सुनी, तब दोग वजीर हिंदु, सोने की सुखपाल, चमर, क्वत्र लैके आप को पधरायवे को पठाए । सो एक मजल सामने आए, सो उन वजीरन ने आयके हुमायूँ की आडी की विनती करी ओर कितनीक भेंट करी के सुखपाल में आपको पधराए । ओर विनती करी, जो आज्ञा होय तहां ताई आपके सामने हजरत साहब लिवायवे को आवें । तब आपने आज्ञा करी, जो लिवायवे को कछु काम नाहि । जो हम निगम बोध घाट पे न्हायवे को पधारेगे ऊहां आय के दर्शन करें । सो यह हलकारा ने आयके अरज



करी । सो हुमायु ने ऊहां ताई हलकारान की डाक बांधि दीनी,  
सो घरी घरी में खबर मंगावे । ... फेरि आप निगमबोध घाट पे  
न्हायवे को पधारे, तब हुमायु आपके दर्शन को आयो ।... फेरि  
साष्टांग दंडक करिके सहस्रावधि मोहोर आपकी भेंट धरी । ओर  
वीनती करी जो आज मुजे दर्शन दीया, आपुना जान्या । जो मेरे  
राज्य के भाग्य की कहा बड़ाई करूं, जो जासमय आपका अवतार भया,  
ओर यह वीनती करी, जो मोको यह दुवा दो जो दीऊ दीन कायम  
रहे बिगरे नाहि । तब आपने आज्ञा कीनी जो हमारे बिगारी के कहा  
करनो हे, जो अनीति करोगे तो आप ही बिगरी जाओगे ।<sup>19</sup>

शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियों ने पूरे सोलह वर्ष शासन  
किया । शेरशाह की धार्मिक नीति भी कट्टरता भरी नहीं थी । उस समय  
के मुस्लिम इतिहासकार उसकी तारीफ़ करते नहीं दिखते<sup>20</sup> जबकि अलाउद्दीन,  
फिरोज शाह अथवा सिकन्दर लोदी की प्रशंसा करते नहीं अघाते । इससे  
साफ़ जाहिर होता है कि शेरशाह में धर्मान्धता नहीं थी । उसका एक  
प्रमुख कमांडर हिंदू था और उसकी डाक चौकियों में हिंदू नियुक्त किए  
जाते थे ।<sup>21</sup> लेकिन इससे उसे सर्वथा उदार भी नहीं कहा जा सकता ।  
‘तारीख़े दाउदी’ नामक ग्रंथ जोधपुर के राजा मालदेव पर उसके आक्रमण  
को उसकी धार्मिक प्रतिबद्धता के रूप में चिन्हित करता है । इस ग्रंथ के  
अनुसार उसका आक्रमण जोधपुर के मंदिरों को मस्जिदों में बदलने के हरादे  
से संचालित था ।<sup>22</sup>

शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीमशाह ने अपने राज्य को पूरी तरह  
मुल्लाओं के अधीन कर दिया ।<sup>23</sup> वह अपने राज्य के संचालन के लिए शाह  
मुहम्मद नामक धर्म गुरु का मुख्यापेक्षी था । बाद में, सिकन्दर शाह के  
वक्त कई वजहों से आंतरिक कलह बहुत तेज हो गई जिसने हेमू नामक एक  
दुकानदार को सामान्य दुकानदार से ऊपर उठाकर, आदिलशाह  
का वज़ीर बन जाने का अवसर दिया । आदिल शाह ने इसे ‘विक्रमाजित’

के खिताब से नवाजते हुए मानों धार्मिक असहिष्णुता की परंपरा को कमजोर करना शुरू कर दिया ।

भक्ति आंदोलन के उदय की व्याख्या करते हुए हिंदी के आचार्य और आलोचक बल्लभ कृत 'कृष्णाश्रय' के इन श्लोकों का सहारा लेते रहे हैं :

मलेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च  
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ।  
गंगादितीर्थ वर्येषु दुष्टैरवाकृतैष्विह,  
तिरोहितार्थ देवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ।  
+ + +  
अपरिज्ञाननष्टेषु मंत्रिष्वव्रतयोगिषु,  
तिरोहितार्थ वेदेषु कृष्ण एव गतिर्मम ।

सत्तनत काल की धार्मिक परिस्थितियों को देखते हुए 'कृष्णाश्रय' के इन श्लोकों में व्यक्त आचार्य बल्लभ की वेदना के औचित्य को समझा जा सकता है । हालांकि प्रो० नामवर सिंह यह बात मुश्किल से स्वीकारते दिखते हैं कि मलेच्छु मुसलमान हैं : 'यह सही है कि स्तोत्र के इन श्लोकों में एक जगह देश के 'मलेच्छाक्रान्त' होने का उल्लेख है । और यदि मलेच्छु को मुसलमानों का वाचक मान भी लिया जाए तो उससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि गंगादि तीर्थों के भ्रष्ट होने, वेदों के अर्थ तिरोहित होने, व्रतादिक सभी कर्मों के नष्ट होने, पाखंड, पाप, अज्ञान आदि के बढ़ने के लिए ये मलेच्छु ही जिम्मेदार हैं और इन्हीं के आक्रमण के कारण कृष्ण का आश्रय ढूँढा जा रहा है ।'<sup>24</sup> प्रो० नामवर सिंह के इस निष्कर्ष पर डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है : 'देश मलेच्छाक्रान्त है' यह इस प्रसंग खंड का उद्घोषक वाक्य है जिसे नामवर सिंह यह कहकर हल्का करना चाहते हैं कि 'एक जगह देश के मलेच्छाक्रान्त होने का उल्लेख है ।' शायद गीत की टेक की तरह यदि

इस वाक्य की बार-बार आवृत्ति होती तो उन्हें समझ में आता कि सचमुच देश मलेच्छाक्रांत है । काकुत्स्थ आगे है, 'मलेच्छ' शब्द को लेकर खड़ी कठिनाई से आलोचक मान पाता है कि 'मलेच्छ' का अर्थ मुसलमान हो सकता है । वल्लभाचार्य के समय में यवन (ग्रीक), शक, हूण कोई भारत को आक्रान्त नहीं किए थे । तब मलेच्छ का एक और सीधा अर्थ होता है मुसलमान । यह सब आज अत्यन्त अप्रिय प्रसंग ला सकता है, पर इतिहास हमारे प्रिय और अप्रिय लाने से नहीं बनता । इतिहास को दबाने और भुठलाने से वर्तमान अधिक अप्रिय हो सकता है जो हमारे लिए ज्यादा बड़ी समस्या है ।<sup>25</sup> हम अभी आगे देखें कि खुद रामस्वरूप जी इतिहास को कितना दबाते या भुठलाते हैं ।

फिलहाल, यह देखें कि इस मुद्दे पर आचार्य शुक्ल का मतव्य क्या है :

८५ 'कृष्णाश्रय' नामक अपने एक प्रकरण ग्रंथ में आचार्य जी ने देश काल की अत्यंत विपरीत दशा का वर्णन किया है जिसमें वैद मार्ग या मयादि मार्ग का अनुसरण उन्हें अत्यंत कठिन या असंभव दिखाई पड़ा । वल्लभाचार्य जी के समय में देश में मुसलमानी साम्राज्य अच्छी तरह दृढ़ हो चुका था । हिन्दुओं का एकमात्र स्वतंत्र और प्रभावशाली राज्य दक्षिण का विजय नगर राज्य रह गया था, पर बहमनी सुल्तानों के पड़ोस में रहने के कारण उसके दिन भी गिने हुए दिखाई पड़ते थे । इस्लामी संस्कृति का प्रभाव अच्छी तरह जम रहा था । सूफ़ी भक्तों या पीरों के द्वारा सूफ़ी पद्धति की भक्ति का प्रचार कार्य चल रहा था । इस परिस्थिति में भागवत की प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रचार द्वारा ही लोगों के कल्याण मार्ग की ओर आकर्षित होने और साथ ही भारतीय संस्कृति के बने रहने की संभावना आचार्य जी को दिखाई पड़ी ।<sup>26</sup>

जाहिर है चतुर्वेदी जी आचार्य शुक्ल के ठरें पर चलते हुए मुसलमानी संस्कृति के कुप्रभाव से 'भारतीय संस्कृति' को बचाने का श्रेय बल्लभ को देते हैं । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस प्रस्तावना के बावजूद कि भक्ति आंदोलन को शास्त्र के बजाए लोक के कोण से देखना चाहिए, हिंदी के अधिकांश आलोचक शुक्ल जी की मान्यता के ही समर्थक हैं ।

प्रगतिशील खेमों के आलोचकों ने इस मुद्दे को प्रायः समाप्त मान लिया है, लेकिन 'राष्ट्रवादी ताक्तों' के उभार के इस दौर में दूसरे आलोचक भक्ति आन्दोलन की बार-बार याद दिला रहे हैं। यहाँ एक उदाहरण देखना उपयुक्त होगा। 'अक्षर पर्व' पत्रिका के अगस्त 1999 अंक में प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'स्वतंत्रता-परतंत्रता' शीर्षक से एक छोटी सी टिप्पणी लिखी है। इस टिप्पणी में उन्होंने डा० रामविलास शर्मा की दो स्वीकारोक्तियाँ उद्धृत की हैं और उस पर अपनी तरफ से एक वाक्य में स्पष्टीकरण दिया है 'यदि पिछले हजार बरस परतंत्रता के रहे हैं तो इस धारणा का मैंने बार-बार खंडन किया है। धर्म भिन्न होने से जातीयता भिन्न नहीं हो जाती।' - रामविलास शर्मा, 'अक्षर पर्व' वार्षिकांक - 1999। 'भारतीय संस्कृति किस प्रकार अधोगति को प्राप्त हुई, इसका कवि ने यहाँ मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। इस भारतीय संस्कृति को एक लहर की तरह मुस्लिम सभ्यता आक्रांत किए हुए थी। इसी विदेशी सभ्यता के लहर के ऊपर वह आलोकमय सत्य का लोक है, जो इस समय हिंदुओं की दृष्टि से ढंका हुआ है। बिना इस बीच के सांस्कृतिक अंधकार को पार किए, सत्य तक पहुँच नहीं हो सकती।' - रामविलास शर्मा : निराला के 'तुलसीदास' काव्य की भूमिका - 1938, पुनः 1992 में स्वीकृत संपुष्ट।

उपर्युक्त उद्धरणों के संदर्भ में जाति, धर्म, संस्कृति और उनके आधार पर स्वतंत्रता-परतंत्रता की व्याख्या अपेक्षित होगी।<sup>27</sup>

इस टिप्पणी के आलोक में भक्ति आन्दोलन के उदय के प्रसंग में दो अलग-अलग खेमों के बीच व्याप्त आम सहमति साफ तौर पर रेखांकित की जा सकती है। एक और बात जो ध्यान देने की है कि मध्यकालीन सांस्कृतिक-साहित्यिक विमर्श में ब्राह्मण संस्कृति ही हिन्दू संस्कृति है और हिन्दू संस्कृति के पर्याय के रूप में भारतीय संस्कृति का प्रयोग होता है।

यों तो भक्ति आंदोलन के बारे में कई प्रांतियां मौजूद हैं, लेकिन सबसे बड़ी प्रांति इस मान्यता से पैदा हुई है कि भक्ति की सगुण और निर्गुण शाखाओं में कोई तात्त्विक अंतर नहीं है। अपवाद के रूप में आचार्य शुक्ल को छोड़ दें तो इस मुद्दे पर विचार करने वाले बाकी आलोचक दोनों धाराओं को अलग-अलग चिन्हित करने के बजाए समानता के सूत्र खोजते ज्यादा दिखाई देते हैं। आचार्य दिववेदी जितने मुग्ध भाव से कबीर की व्याख्या करते हैं, उससे कहीं ज्यादा प्रगल्भता तुलसी के संदर्भ में दिखाते हैं। कबीर की लोक व्याप्ति की वजह तलाशते हुए उन्हें शास्त्र की बेसाखी की ज़रूरत महसूस होती है। डा० राम-विलास शर्मा निर्गुण और सगुण के बीच किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं देखते। वे कबीर और तुलसी की समाज चेतना को बिल्कुल एक सा साबित कर देते हैं।<sup>28</sup>

भक्ति आंदोलन की दोनों धाराओं को अलग-अलग समझने का विवेकपूर्ण प्रस्ताव मुक्तिबोध का है।<sup>29</sup> गजानन माधव मुक्तिबोध ने रेखांकित किया कि सगुण और निर्गुण दो भिन्न आन्दोलन ही नहीं थे वे एक दूसरे के विपरीत भी थे। सगुण धारा निर्गुण को शत्रु के रूप में देखती थी और उसी ने निर्गुण भक्ति आंदोलन को समाप्त भी किया। बल्लभाचार्य के साक्ष्य से देखें तो मुक्ति बोध की मान्यता पुष्ट होती है। अपने 'कृष्णाश्रय' नामक प्रकरण ग्रंथ में ही बल्लभाचार्य ने लिखा,

नानावाद विनष्टेषु सर्व कर्म व्रतादिषु  
पाषाणैक प्रयत्नेषु कृष्णा एव गतिर्मम ।

हिंदी भाषी जनता को 'मलेच्छाक्रांतेषु देशेषु' का अर्थ समझाने के लिए उद्धृत प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी को यह श्लोक उपेक्षणीय लगता है। इतिहास को इसी तरह दबाया और भुठलाया गया है। उक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए डा० दीनदयालु गुप्त लिखते हैं, 'उस समय कुछ ऐसे मत पंथ भी चल पड़े जिनके धर्माचार्यों को वेद शास्त्र का ज्ञान तक न था और

जो इधर उधर से धर्म की दस पांच बातें समेट कर तथा मूढ़ जनता में एक पंथ सड़ा कर सिद्ध गुरु बनने का दावा करते थे । श्री वल्लभाचार्य ने अपने कृष्णाश्रय ग्रंथ में अनेक वादों के रूप में प्रचलित पाखण्ड पंथों का उल्लेख किया है । वे कहते हैं कि नास्तिकों के अनेक वादों के प्रभाव से सम्पूर्ण कर्म और व्रत नष्ट हो गए हैं । जो कर्म और व्रत किए जाते हैं, वे पाखण्ड के लिए । ऐसे समय में केवल कृष्ण ही रक्षा करने वाले हैं ।<sup>30</sup> बताने की जरूरत नहीं कि डा० गुप्त आ० शुक्ल की मान्यता को ही दोहरा रहे हैं । भक्ति काल की असली लड़ाई वेदवादियों और वेदविरोधियों के बीच में है, सवणों और अवणों के बीच में है, संप्रदायों और पंथों के बीच में है ।

श्रुति मार्ग पर आए संकट को आचार्य प्रवर ही नहीं सगुण भक्ति धारा के तमाम कवि भी शिद्दत से महसूस कर रहे थे । एक पद में अष्ट-छापी कवि परमानंद दास कहते हैं --

माधो या घर बहुत धरी )  
 कहन सुनन को लीला कीनी मयादा न टरी ॥  
 जो गोपिन के प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान ।  
 तौ सब औघड़ पंथहिं होतो कथ्य गमैया ज्ञान ॥  
 बारह बरस को भयो दिगम्बर ज्ञानहीन संन्यासी ।  
 खान पान घर-घर सबहिन के, भ्रम लाय उदासी ॥  
 पाखंड दंभ बढ़यो कलियुग में श्रद्धा धर्म भयो लोप ।  
 परमानंद वेद पढि बिगर्यो का पर कीजै कोप ॥<sup>31</sup>

कृष्ण भक्ति शाखा के समान राभक्ति धारा भी वेदमार्ग पर झाई विपत्ति से विचलित है । इस धारा के अगुआ तुलसीदास पंथों को कल्पित तथा वेद मार्ग को वास्तविक घोषित करते हैं —

सुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक ।  
ते परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ      अनेक ॥<sup>32</sup>

गैर दिक्कों की अभिव्यक्ति से डरे हुए सवणों की चिंता संगठित रूप में सगुण भक्ति आन्दोलन को जन्म देती है। वक्त की नज़ाकत को समझते हुए इस भक्ति धारा का स्वरूप पर्याप्त लचीला बनाया गया। शास्त्रानुमोदित वर्णाश्रम धर्म की सर्वोच्चता को स्वीकार कर कोई भी इस शाखा में शामिल हो सकता था। इसीलिए हम इसमें शूद्रों, मुसलमानों की (सशर्त) मौजूदगी पाते हैं। बल्लभ सम्प्रदाय में स्त्रियाँ, शूद्र, मुसलमान सब हैं। पुष्टि मार्ग मर्यादा मार्ग से अपने को श्रेष्ठ मानता है, लेकिन वह वेद की सर्वोच्चता पर कहीं भी उंगली नहीं उठाता। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वाता' में तीन वैष्णव जाति के बूढ़े हैं। इन्हें भी श्रीनाथ जी के दर्शन करने की अनुमति मिली हुई थी। लेकिन ऐसे वक्त जब आसपास दूसरे वैष्णव न हों। वर्ण धर्म की शुचिता का पूरा ध्यान रखकर ही गुंजाइश निकाली गई थी।<sup>33</sup>

भारत के इतिहास की विवेकपूर्ण कानबीन करने वाले यह जानते हैं कि शासन-सत्ता से ब्राह्मणों का रिश्ता शुरू से ही मधुर और आत्मीय किस्म का रहा है। शासक चाहे देसी हो या विदेशी, ब्राह्मणों ने राजदरबारों में अपनी जगह सुरक्षित रखी है। इस देश की व्यापक जनता के लिए वे भले ही पराए रहे, लेकिन शासकों के लिए विश्वसनीय, उनके अपने। शासन में बदलाव के साथ अपनी स्वाभिभक्ति बदलने में उन्होंने देर नहीं लाई। समूचे ब्राह्मण साहित्य में शासक वर्ग की, राजा की आलोचना अपवाद रूप में ही है। फिर ऐसा क्या घटित हुआ कि बल्लभाचार्य को 'मलेच्छाक्रांतिषु देशेषु' लिखना पड़ा? इस प्रश्न का सर्वाधिक सुलभ जवाब तो यह है कि मुसलमान हिंदुओं की धर्म-भावना पर कुटाराघात कर रहे थे।<sup>लेकिन, हम कणों रुककर</sup> इस सर्व स्वीकृत समाधान पर पुनर्विचार करना चाहिए। अगर उक्त घोषणा की वजह 'हिंदू स्वाभिमान' पर खतरा था तब तो यह घोषणा मुहम्मद गौरी की दिल्ली पर विजय के साथ हो जानी चाहिए थी, लेकिन यह घोषणा होती है इस्लामी शासन

के पूरे तीन सौ साल बाद । दिल्ली सल्तनत (जिसकी शुरुआत लगभग 1200 ई० में हुई) के पूरे दौर में देश को मलेच्छों से आक्रांत घोषित करने की ज़रूरत क्यों नहीं महसूस की गई ? सल्तनत के आखिरी सुल्तान सिकन्दर लोदी (1489-1517) के शासनकाल में ही संकट का बोध क्यों हुआ ? असल में, बल्लभाचार्य की इस घोषणा के पीछे आहत धर्म भावना एक बहाना भर थी । इसका मूल कारण था ब्राह्मणों की सत्ता-केंद्र से विच्छिन्नता, उनकी आजीविका पर ख़तरा, उनकी सुविधाओं में कटौती। अपने निजी संकट को उन्होंने समाज का संकट बनाकर पेश किया । इस चतुराई को बाद के विद्वानों ने पर्दे के भीतर ही रहने दिया ।

दिल्ली की गद्दी इस्लामी शासकों के हाथ में जाने के साथ ही ब्राह्मणों ने उनसे संपर्क कायम कर लिया । इस सुमधुर संपर्क का ही परिणाम था कि उन पर जजिया नामक कर नहीं लगाया गया । जिस वक्त बाकी हिंदू जनता जजिया के बोझ तले कराह रही थी, ब्राह्मण चैन की ज़िंदगी गुज़ार रहे थे । इसमें ख़लल डाला फ़िरोजशाह तुग़लक़ ने । धर्म-परायण फ़िरोज शाह को यह बात समझ में नहीं आई कि जहाँ मुल्क के सारे काफ़िर जजिया अदा कर रहे हैं, इन काफ़िरों का अगुआ कर मुक्त रखा गया है । उसने जानकर अधिकारियों, धर्म गुरुओं से पूछा कि शरीयत के किन उपबंधों के तहत ब्राह्मणों को अब तक छूट दी गई है । इस्लामी कानून में इसकी कोई संतोषजनक व्याख्या नहीं मिली । फ़िरोज शाह ने ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया ।<sup>34</sup> ब्राह्मणों को एकाएक आभास हुआ कि धर्म संकट में है । वे अभी इस संकट के टलने का इंतज़ार ही कर रहे थे कि सिकन्दर लोदी का जमाना आ गया । उसने फ़िरोज शाह की परंपरा बनाए रखी । ब्राह्मणों के लिए यह हताशा का दौर था । उन्हें घोषणा करनी पड़ी कि देश को मलेच्छों ने आक्रांत कर दिया है, धर्म संकट में पड़ गया है । अब श्रीकृष्ण की शरण में जाने के सिवा और कोई रास्ता नहीं है । इस घोषणा के बावजूद ब्राह्मणों ने अपनी कोशिशें जारी रखीं । इधर मुग़ल वंश की स्थापना हो गई । बाबर और हुमायूँ का शासन काल हल्ललों भरा रहा । अकबर से इस



वंश को स्थायित्वमिला । ब्राह्मणों की मेहनत रंग लाई । वे फिर शासक के कृपापात्र हो गए । विश्वीकृष्ण की शरण से बादशाह सलामत की शरण में चले गए । इस दौरान बल्लभाचार्य की उक्त घोषणा की एक बार भी आवृत्ति नहीं हुई । उन्हें फिर जजिया कर से मुक्त कर दिया गया । अब तक बल्लभाचार्य दिवंगत हो चुके थे । उनके पुत्र गुसाई विट्ठलनाथ की पहुंच सम्राट अकबर के अंतःपुर तक थी । एक बार मुगल सम्राट अकबर की एक बेगम ने श्री विट्ठलनाथ जी को बुला कर उन्हें वशीकरण मंत्र देने को कहा । विट्ठलनाथ जी ने बेगम को वशीकरण मंत्र लिखकर दे दिया । यह बात सम्राट को मालूम हुई । उन्होंने बेगम से वह मंत्र मंठवाया । ताबीज खोलने पर देखा गया कि उसमें लिखा था :

यत्र मंत्र अरु तंत्र को भूलि करौ जनि कोय ।

पति कहे सो कीजिए, पति आपहि बस होय॥

इस पर अकबर ने उन्हें गोकुल में गौचर भूमि तथा 'गोस्वामी' का विरुद्ध दिया था ।<sup>35</sup>

शासन-सत्ता से ब्राह्मणों का अलगाव बहुत थोड़े दिनों का ही रहा । उन्होंने जल्दी ही राजदुवार तक अपनी पहुंच बना ली । पूरे मध्यकाल में अकबर का शासनकाल सत्ता से ब्राह्मणों के संबंध का लाभग स्वर्ण-युग था । बल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय का सर्वाधिक विकास इसी अवधि में हुआ । ब्राह्मणों ने इसका बदला भी चुकाया । अकबरी दरबार का प्रामाणिक ब्योरा पेश करने वाले शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ादे' लिखते हैं : नौरोज़ (नव वर्षारंभ) के समय आनंदोत्सव करना तोर्हरान और तुरान की प्राचीन प्रथा है ही ; पर उसने (अकबर ने) उसे भी हिंदुओं की प्रथा का रंग देकर हिंदू बना डाला । सौर और चांद्र दोनों गणनाओं के अनुसार जब-जब उसकी वर्षगांठ पड़ती थी, तब तब उत्सव होता था । उस समय तुलादान भी होता था । बादशाह सात अनाजों और सात धातुओं आदि का तुलादान करता था । ब्राह्मण

बैठकर हवन करते थे और सब चीजों की गठरियां बांधकर आशीर्वाद देते हुए घर जाते थे । दशहरे पर भी आते थे, आशीर्वाद देते थे, पूजन कराते थे और माथे पर टीका लगाते थे । जड़ाऊ राखी बादशाह के हाथ पर बांधते थे । बादशाह हाथ पर बाज बैठाता था । किले के बुरजों पर शराब रखी जाती थी । बादशाह के साथ-साथ उसके दरबारी भी छ्ती रंग में रंग गए । पान के बीड़ों ने सबके मुंह लाल कर दिए । गोमांस, लहसुन, प्याज आदि अनेक पदार्थ हराम हो गए और बहुत से दूसरे पदार्थ हलाल हो गए । <sup>36</sup> कृतज्ञ ब्राह्मणों ने दो कदम आगे बढ़ कर मलेच्छ बादशाह को अवतारी पुरुष घोषित कर दिया । शम्सुल उल्मा लिखते हैं : ब्राह्मणों ने बादशाह के एक हजार एक नाम बनाये थे । कहते थे कि यह सब भगवान की लीला है । पहले कृष्ण और राम आदि के रूप में अवतरित हुए थे ; अब प्रभु ने इस रूप में अवतार लिया है । श्लोक बना-बनाकर लाया करते थे और पढ़ा करते थे । पुराने पुराने कागज़ों पर लिखे श्लोक दिखाते थे और कहते थे कि बहुत पहले बड़े-बड़े पंडित लोग लिखकर रख गए हैं कि इस देश में एक ऐसा चक्रवर्ती राजा होगा जो ब्राह्मणों का आदर करेगा, गौओं की रक्षा करेगा और संसार को अन्याय से बचावेगा । <sup>37</sup> एक मुसलमान शासक से अपनी निकटता को धर्म सम्मत ठहराने और शाही खजाने से प्राप्त होने वाली दान दक्षिणा की भारी राशि को 'जस्टिफाई' करने के लिए ब्राह्मणों ने एक और कहानी गढ़ी : अकबर के सामने एक प्राचीन लेख उपस्थित किया गया था जिससे सूचित होता था कि इलाहाबाद में मुकुंद नामक एक ब्रह्मचारी हो गया था, जिसने अपने सारे शरीर के अंग काट कर हवन कुंड में डाले थे । वह अपने चेलों के लिए कुछ श्लोक लिखकर गया था जिसका अभिप्राय यह था कि हम शीघ्र ही एक प्रतापी बादशाह बनकर इस संसार में फिर आवेंगे । उस समय भी हमारे सामने उपस्थित होना । उसी के अनुसार बहुत से ब्राह्मण वह लेख लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए थे । उन लोगों ने निवेदन किया कि हम लोग तब से श्रीमान पर ध्यान लगाये बैठे हैं । जब गणना की गई तब पता चला कि मुकुंद ब्रह्मचारी के मरने और बादशाह के जन्म

लैने में तीन-चार मास का अंतर था । कुछ लोगों ने इस पर यह भी आपत्ति की कि एक ब्राह्मण का मलेच्छ या मुसलमान के घर में जन्म लेना ठीक नहीं जंचता । इसका उत्तर उन लोगों ने यह दिया कि करने वाले ने तो अपनी ओर से कोई बात छोड़ नहीं रखी थी, पर वह भाग्य को क्या करे । जिस स्थान पर उसने हवन किया था उस स्थान पर कुछ हड्डियाँ और लोहा गड़ा हुआ था । इसी का यह फल हुआ कि उसे मुसलमान के घर में जन्म लेना पड़ा ।<sup>38</sup>

एक बार पुनः 'कृष्णाश्रय' ग्रंथ की तरफ लौटें । बल्लभाचार्य की चिन्ता 'मलेच्छाक्रांतिषु देशेषु...' को ठीक-ठीक समझने की कुंजी उसी श्लोक का यह अंश है, 'सत्पीडा व्यग्र लोकेषु' अर्थात् सत्पुरुषों को पीडा दी जाती है, सम्पूर्ण लोक इस पीडा से पीडित है । कहने की ज़रूरत नहीं कि भारतीय समाज में ये 'सत्पुरुष' कौन हैं । एक तो इन 'सत्पुरुषों' का दरबार से संबंध टूट गया, दान-वक्षिणा मिलनी बंद हो गई,<sup>39</sup> ऊपर से उन पर जजिया भी लाद दिया गया । 'इतिहास-विधाता' की क्रूरता देखिए कि 'उस समय कुछ ऐसे मत पंथ भी चल पड़े' जिनके धर्माचार्य वेद शास्त्रों की निंदा करते थे और ब्राह्मणों की सर्वोच्चता अस्वीकार करते थे, 'बादहिं सूद्र दिवजन्ह सन हम तुम ते कहु घाटि । जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर आसि देखावहिं डाटि ॥' बल्लभाचार्य<sup>40</sup> की नज़र में सारे वेद विरोधी पंथ पाखंडपूर्ण प्रयत्न थे ('पाखंडैक प्रयत्नेषु') । ब्राह्मणों ने बहुत जल्दी ही इतिहास-विधाता की दृष्टि को अपने अनुकूल कर लिया । उनका राजदरबार में सम्मान होने लगा, कर हटा दिया गया, शाही खजाने तक पहुँच हो गई । उन्होंने 'पाखंड-पूर्ण प्रयत्नों' को नखदंत विहीन कर दिया । अबमें में ढालने वाली बात यह कि ब्राह्मणों ने अपने पक्ष में सरकारी आदेश भी ज़ारी करवा दिया । मौलाना शम्सुल उल्मा लिखते हैं, 'यह भी आज्ञा हुई कि बहुत छोटी जातियों के लोगों को विद्या न पढ़ाई जाए ; क्योंकि वे विद्या पढ़कर बहुत अनर्थ करते हैं ।'<sup>41</sup> बादशाह से उन्होंने यह भी सुनिश्चित करवाया कि, 'हिंदुओं के मुकदमों के निणयि के लिए ब्राह्मण नियुक्त

TH 85  
21 ACC-25

हों । उनके मामले-मुकदमे काजियों और मुफ्तियों के हाथ न पड़ें ।<sup>42</sup>  
ब्राह्मणों ने बादशाह को भारतीय समाज का पदानुक्रम भली-भांति  
समझा दिया । मुसलमानों को आज्ञा दी गई कि... यदि कोई कसाई  
के साथ बैठकर भोजन करे तो उसके हाथ काट लो और यदि उसके घरवालों  
में से कोई ऐसा करे तो उसकी उंगलियाँ काट लो ।<sup>43</sup>

चौरासी वैष्णव की वार्ता के अन्तर्गत राणा व्यास नामक  
वैष्णव के प्रसंग में एक क्षत्राणी के सती होने की घटना का उल्लेख है ।  
वार्ताकार ने राणा व्यास के माध्यम से सती प्रथा का खण्डन किया है ।  
राणा व्यास ने उस राजपूतनी को जलने से बचा लिया था, "राणा  
व्यास और जगन्नाथ जोसी सरस्वती में स्नान करते हुये ता समय एक  
राजपूतानी सती होयवे को आई तब राणा व्यास के पास जगन्नाथ जोसी  
हुतो तिनने पूछो जो सती होत है ताको प्रकार कहा तब राणा व्यास  
ने कह्यो जो प्रेत के संग वृथा ऐसो शरीर जरावत है जो राणा व्यास ने  
मूँड हिलाय के कह्यो जो वह राजपूतानी सती होन आई हुती ताने देख्यो  
तब वा राजपूतानी ने साथ के मनुष्यन से कह्यो जो हूँ तो न जलूँगी मोको  
सत् नाहीं है ताते मेरी हत्या चढेगी... तब वे लोग वा मृतक को जराय  
के वा स्त्री को गांव के बाहिर फोंपरी कर दीनी ... ता पाछे राणा  
व्यास न्हायने को आये तब वा स्त्री ने राणा व्यास सों आय के पूछो  
जो तुमने मूँड हिलाय के कहा बात कही ता बात के देखते हों न जरी...  
तब राणा व्यास ने कह्यो हम आपस में हंसते हुते जो यह ऐसी उत्तम  
देह पायकें नाहक प्रेत के साथ जरावत है ।<sup>44</sup> सती प्रथा के प्रति वल्लभ  
सम्प्रदाय का यह रवैया उसके वैचारिक लचीलेपन का द्योतक माना जा  
सकता है । लेकिन संभव है कि यह लचीलापन (स्त्री के प्रति यह संवेदन-  
शीलता) ब्राह्मणवादी संस्कारों में किसी मूलभूत बदलाव की वजह से  
न होकर बादशाह अकबर की तत्संबंधी नीतियों का परिणाम हो ।  
शायद समूचे भारतीय इतिहास में अकबर पहला राजा था जिसने स्त्रियों  
के प्रति मानवीय रवैया अपनाया था और तत्संबंधी शासनादेश जारी



THESIS  
Q. 22/3:8 (W)

TH- 8525

152 Po

किए थे । उसने हुक्म दिया कि कोई पुरुष एक स्त्री से अधिक के साथ  
 विवाह न करे । हाँ 'यदि पहली स्त्री बाँझ हो तो ही कोई हर्ज नहीं ।...  
 विधवा यदि चाहे तो विवाह कर ले ; उसे कोई न रोके । बहुत सी हिंदू  
 स्त्रियाँ बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाती हैं । ऐसी स्त्रियाँ और वे  
 जिनका पुरुष के साथ संसर्ग न हुआ हो और विधवा हो गई हों, सती  
 न हों । हिन्दू इस पर अटके । बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ । उनसे अकबर  
 ने कहा कि अच्छी बात है तो फिर रंहुए पुरुष भी स्त्री के साथ सती  
 हुआ करें ।<sup>45</sup> राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि अकबर ने 'सती को  
 रोकने के कानून को कड़ाई के साथ इस्तेमाल किया और कहा जो औरत  
 खुद सती नहीं होना चाहती उसे फाँड़कर जलाना जुर्म है ।'<sup>46</sup> राहुल  
 सांकृत्यायन अकबर के रवैये को स्पष्ट करते हुए एक घटना का जिक्र भी  
 करते हैं, 'राजा भगवानदास का भतीजा जयमल किसी ज़रूरी हुक्म को  
 लिए दौड़ा दौड़ करता आ रहा था, चौसा के पास लू से उसकी मृत्यु  
 हो गई । उसकी बीबी जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह की लड़की थी ।  
 उसने सती होने से इनकार कर दिया । उसका पुत्र (जिसका नाम भी उदय  
 सिंह था) और संबंधी कुल की नाक कटती देखकर उसे जलाने के लिए  
 उतारू थे । अंतःपुर में अकबर के पास बहुत तड़के यह खबर पहुंची । वह  
 तुरंत एक घोड़े पर चढ़ा और किसी को साथ चलने के लिए न कह दौड़ा ।  
 ऐन वक्त पर पहुंच गया और राजपूतनी सती होने से बच गई । पहले तो  
 जबरदस्ती करने वालों को उसने मौत की सजा देनी चाही, लेकिन पीछे  
 कैद की सजा कर दी ।'<sup>47</sup> अकबर का स्त्री दहन पर इतना सख्त रुख  
 देखते हुए किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय में सती प्रथा का समर्थन करने की  
 हिम्मत न रही होगी । बल्लभ सम्प्रदाय को तो बिल्कुल ही नहीं ।  
 जागीर प्रदान करने वाले बादशाह का कोप भाजन बनने को तैयार होना  
 होशियारी का काम न था । सती प्रथा का समर्थन न करना मजबूरी  
 ही थी । इसीलिए स्त्रियों के प्रति इनके दृष्टिकोण में कोई मूलभूत  
 अंतर नहीं आया । आगे के अध्यायों में हम देखेंगे कि किस तरह अन्य

सम्पत्तियों की तरह स्त्री भी एक वस्तु ही थी जिसे उसका स्वामी जब और जैसे चाहे इस्तेमाल कर सकता था ।

‘संतन को कहा सीकरी सों काम’ - अष्टछाप के कवि कुंभनदास का यह कथन समूचे भक्ति आंदोलन के बारे में आधार वाक्य का काम करता है । यह आम राय है कि भक्त कवि राजसत्ता से निस्पृह थे । उन्हें राजनीतिक परिवर्तनों से कुछ लेना-देना नहीं था । ‘कोउ नृप होय हमहिं का हानी’ उनका मूलमंत्र था और सत्ता-केन्द्रों से पूर्ण उदासीनता उनकी प्रकृति । डा० नामवर सिंह के शब्दों में, ‘राजसत्ता भक्तों के लिए सर्वथा उपेक्षा की वस्तु थी । उसके प्रति भक्तों के मन में न तो किसी प्रकार की भक्ति का भाव था, न विरोध का ।’<sup>48</sup> जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं थी । और, ऐसा मानना वस्तुतः उस नासमझी का (दलित-विमर्श का शब्द लेकर कहें तो साजिश का) शिकार होना है जिसमें सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन को एक सा मानने का आग्रह है । जैसा कि पहले कहा गया, मध्य काल में दो अलग-अलग भक्ति आन्दोलन थे जो अपनी संवेदना और रणनीति में एक दूसरे से भिन्न ही नहीं, विरोधी भी थे । नामवर जी का उक्त वाक्य निर्गुण भक्ति आन्दोलन के बारे में सही है । निर्गुण भक्तों के लिए राजसत्ता दोषम थी, प्राथमिक थी समाज-सत्ता । स्वयं नामवर जी इसे स्पष्ट करते हैं, ‘साधारण जनता के जिन दुखों से भक्त-कवि दुखी थे, उनका सीधा संबंध आगरा या दिल्ली के तख्त पर बैठे बादशाह से उतना न था, जितना अपने गांव के उस समाज से, जिसका नियमन जाति-धर्म के परंपरागत नियमों से होता था तथा जिसमें राजसत्ता के स्थानीय प्रतिनिधि गांव के मालिकों के सहयोग से दमनकारी भूमिका निभाते थे ।’<sup>49</sup> राजसत्ता से दूरी निर्गुण भक्त बनाए हुए थे सगुण भक्तों, खास कर पुष्टिमार्गीयों के लिए राजसत्ता उपेक्षा की वस्तु कदापि न थी । अत्यंत संगठित और विस्तृत सम्प्रदाय के रूप में पुष्टिमार्ग आगरा या दिल्ली के तख्त से निरपेक्ष हो ही नहीं सकता था । खुद कुंभनदास जिस मंदिर के कीर्तनियां थे, वह शासकीय अवरोधों/

सहयोगों के बीच बनकर खड़ा हुआ था । चौरासी वैष्णवों की वार्ता में कुंभनदास की वार्ता के अन्तर्गत इस मंदिर का प्रसंग लिखा गया है । श्रीनाथ जी का मंदिर बल्लभ सम्प्रदाय का मुख्यालय माना जा सकता है । बल्लभाचार्य ने गिरिराज पहाड़ी की कंदरा से एक भगवद् स्वरूप प्राप्त करके उसे 'गोवर्द्धननाथ' अथवा 'श्रीनाथ जी' के नाम से प्रसिद्ध किया । उनके प्रोत्साहन से ब्रज में श्रीनाथ जी के रूप में श्रीकृष्ण को बाल किशोर भावनात्मक सेवा-पूजा प्रचलित हुई थी । आचार्य जी ने गिरिराज पहाड़ी पर एक छोटा सा कच्चा मंदिर बनवाकर उसमें श्रीनाथ जी के स्वरूप को विराजमान कर दिया था ।<sup>50</sup> श्रीनाथ जी के कच्चे मंदिर को पक्का बनवाने के लिए अम्बाला का एक धनाढ्य पुरनमल खत्री बड़ा इच्छुक था । किन्तु सिकन्दर लोदी के आतंक के कारण उसे साहस नहीं हो रहा था । जब बल्लभाचार्य संवत् 1558 में ब्रज में आए तो उन्होंने मंदिर निर्माण की आवश्यक व्यवस्था करवाई ।<sup>51</sup> श्रीगोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि संवत् 1556 की वैशाख शुक्ल तृतीया को श्रीनाथ जी के मंदिर का कार्यारंभ हुआ था । उसमें एक लाख से अधिक रूपया लाया गया था किन्तु फिर भी मंदिर पूरा नहीं हो सका । वार्ता के अनुसार मंदिर पूर्ण न होने का कारण द्रव्याभाव था ।<sup>52</sup> बहुत संभव है कि शासकीय आतंक के चलते यह मंदिर न बन पाया हो । प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं, 'वास्तविक बात यह थी कि सिकन्दर लोदी के आदेश से या तो मंदिर का निर्माण कार्य रोक दिया गया था, अथवा बने हुए मंदिर को तोड़ दिया गया था ।'<sup>53</sup>

कुंभनदास की वार्ता में आया है, 'सो एक समय मलेक्षा को उपद्रव भयो सो यहां मानिक चंद पांढे सद्गु पांढे रामदास चौहान कुंभनदास सब मिलि के विचार किया जो यह मलेक्षा आयो है सो यह धर्म का द्वेषी है सो कहा कर्तव्य है तब सब ने कहा जो यामे कहा कर्तव्य का पूछौं अपनी विचार्यो कहा होत ताते श्रीनाथ जी को पूछा जो महाराज कहा करें तब श्रीनाथ जी ने आशा दीनी जो हम को यहां ते ले चलो हम यहां से उठेगे तब सबन ने पूछौ जो महाराज कहा पधारोगे तब आपने श्रीमुख

सों कह्यो जो तोड के घने में चली तब एक भेंसा मगायो तापर श्री गोवर्द्धन नाथ जी को बैठाये... सो घने में एक तालाब हुतो वहां रुखन को एक चौक है तहां बड रुख नीचे श्री नाथ जी विराजे... इतने में श्री गोवर्द्धन ते समाचार आयो जो वह मलेखा की फौज आई हुती सो पाही<sup>54</sup> फिर गई तब श्री गोवर्द्धन नाथ जी पर्वत ऊपर मंदिर में पधारे ।<sup>54</sup> ऐसे मंदिर के कीर्तनियां कुंभनदास को व्यक्तिगत तौर पर सीकरी से कोई काम न हो सकता था लेकिन सम्प्रदाय के सदस्य के रूप में राजसत्ता से उदासीन रह पाना उनके लिए संभव न था । सिकन्दर लोदी के बाद शासकीय माहौल बदला । 'द्रव्याभाव के कारण' बीच में रुके श्रीनाथ जी के मंदिर को पूरा करवाने के लिए 'राजसी लोगों' की तरफ से प्रस्ताव भी आया था, तब पुरनमल ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों नाम पायो पाछे मंदिर उठावन लाग्यो जब सब द्रव्य निबट्यो पीछे पुरनमल पूरब चाकरी को गये तब राजसी लोगन ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन से पूछे जो महाराज आज्ञा देउ तो हम मंदिर समरावे तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने श्रीनाथ जी सों पूछो जो महाराज ये राजसी लोग मंदिर समरावन कहत हैं सो समरावे तब श्री नाथ जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन से कह्यो जो पुरनमल आवेगो तब मंदिर समरावेगो तब राजसी लोगन सों श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने नाहीं कीन्हां ।<sup>55</sup> पुष्टिमार्ग के कई वैष्णव राजसत्ता में महत्वपूर्ण पदों पर थे, इसलिए राजसत्ता का रवैया इसके प्रति प्रायः सहयोग का रहा करता था, 'सो त्रिपुरदास एक तुरक की चाकरी करते, परगना बहुत कमायो जो कछु वस्तु आव तो सो पहले श्रीनाथ जी को पहुंचावते और सालन साक पहुंचावते ऐसे सदा सर्वदा करते ।'<sup>56</sup> इसी तरह गोपालदास वैष्णव की वार्ता में आया है कि वे एक मलेच्छ के यहां नौकरी करते थे और राजकीय धन वैष्णवों की सेवा में लगाते थे, और फेर एक मलेच्छ की चाकरी करने लगे और वा मलेच्छ को द्रव्य गोपाल दास वैष्णव में खर्च करते रहते जब वा मलेच्छ को लोगन ने कही याकुं चाकरी सूं काढ देवो ये नित्य कथा कीर्तन में द्रव्य खर्च डारे हैं तब मलेच्छ ने कही जो याके भाग्य सों मेरो द्रव्य दिन-दिन बढ़तो जाय है और ये



कलू संसार व्यवहार में खरचे नहीं है जासुं इनको कैसे काढ्यो जाय सो वे गोपालदास ऐसे कृपापात्र हते ।<sup>57</sup> पुष्टिमार्ग की तत्कालीन शासन व्यवस्था में गहरी फट का रोचक उदाहरण कृष्णादास अधिकारी की वार्ता में मिलता है जिसकी विधिवत चर्चा आगे की जाएगी । यहाँ सिर्फ इतना ही कि कृष्णादास श्रीनाथ जी की सेवा में लगे बंगाली ब्राह्मणों को निकाल बाहर करना चाहते थे । इन बंगाली ब्राह्मणों को चैतन्य सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त था । इस सम्प्रदाय के रूप सनातन बंगाली ब्राह्मणों के हितैषी थे । कृष्णादास ने योजना बनायी । गुसाईं कट्टलनाथ ने राजा टोडर मल और राजा बीरबल को (जो इस सम्प्रदाय के शासकीय पैरोकार थे) पत्र लिखा । एक दिन मौका देखकर कृष्णादास ने बंगाली ब्राह्मणों की फौपड़ियां जलवा दीं और श्रीनाथ जी की सेवा में लापरवाह होने का आरोप लगाकर उन्हें काम से निकाल दिया । बंगाली ब्राह्मण मथुरा के हाकिम के पास पहुँचे । हाकिम को ऊपर से हुकुम रहा होगा, इसलिए निर्णय कृष्णादास के पक्ष में हुआ ।<sup>58</sup> तब से श्रीनाथ जी की सेवा में गुजराती ब्राह्मण रहे जाने लगे । कृष्णादास अधिकारी खुद गुजरात के थे ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के प्रसंग में लोकाश्रय और राज्याश्रय की चर्चा होती है और बताया जाता है कि हिंदी जन सामान्य के बीच पल बढ़ कर बड़ी हुई है । ध्वनि यह निकलती है कि हिंदी का रचनाकार सत्ता का मुखापेक्षी कभी रहा ही नहीं । प्रायः आलोचक और साहित्येतिहासकार सत्ता-संबंधों का जिक्र आते ही इस तरह बिदकते हैं मानों सत्ता-संबद्धता से साहित्य (और साहित्य-कार) का सर्वथा अहित ही होता है । जबकि पहली नजर में ही यह तथ्य साफ-साफ दिखता है कि आधुनिक काल से पूर्व हिंदी साहित्य का अधिकांश राजाओं की कृत्रज्ञाया में रचा गया है । आदिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे, भक्ति काल के सूफी कवि जौनपुर की बादशाहत के संरक्षण में थे, सगुण भक्ति धारा के सबसे बड़े सम्प्रदाय की सत्ता-संबद्धता

के साक्ष्य हम देख ही रहे हैं, निर्गुणियों को छोड़ दिया जाए तो भक्ति काल के दूसरे कवियों का राज्याश्रय में न जाना उनका अपना चुनाव नहीं था, बल्कि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिस्थितियां ही कुछ ऐसी थीं। और, जैसे ही ये परिस्थितियां अनुकूल हुईं, लगभग सारे के सारे कवि दरबारी हो गए। साहित्य के इतिहास में रीतिकाल आ गया। जिन्हें हम रीतिमुक्त कवि कहते हैं और उन्हें दरबारीपन से जोड़कर नहीं देखते उन्होंने भी अपने जीवन का अधिकांश भाग दरबारों में ही काटा था। रीतिमुक्त धारा के महत्वपूर्ण कवि ठाकुर की तो घोषणा ही थी :  
 'ठाकुर सो कवि भाक्त मोहिं जो राजसभा में बहूपन पावे।' हिंदी साहित्य की विकास परंपरा के इस बड़े सच को सहजता से न स्वीकारने का ही परिणाम है कि आज तक रचनाकारों के सत्ता केन्द्रों से जुड़ाव की परिणतियों पर कोई व्यवस्थित अध्ययन नहीं हुआ है।

कहा जा सकता है कि कुंभनदास की उक्ति उनकी अपनी समझ और चुनाव का परिणाम है। उसे भक्तिकाल, यहां तक कि उनके अपने सम्प्रदाय की प्रतिनिधित्व करने वाली पंक्ति नहीं माना जा सकता। कुंभनदास की बात इस तर्क से सही ठहरती है कि उन्होंने दूसरे अष्टछापी कवियों की तरह देशाधिपति की प्रशंसा में गीत नहीं गाया। लेकिन, उन्होंने राजा के बजाए महाराज (संप्रदाय में बल्लभाचार्य के लिए इस संबोधन का इस्तेमाल होता था) का भरपूर स्तुति गान तो किया ही। सीकरी से कोई काम न होने के बावजूद बल्लभ सम्प्रदायी ग्रंथ बताते हैं कि अष्टछापी कवियों में से पांच कवियों से देशाधिपति अकबर की प्रत्यक्षा मुलाकात हुई थी। प्रभुदयाल मीतल का अनुमान है कि अकबर की कुंभनदास से भेंट संवत् 1638 के लगभग हुई थी। उस समय वे प्रायः 113 वर्ष के वृद्ध थे।<sup>60</sup> मूल चौरासी वार्ता में सूरदास की अकबर बादशाह से भेंट होने की बात लिखी गई है। 'अष्ट सखान की वार्ता' में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। इसमें लिखा है कि तानसेन द्वारा सूरदास के एक पद को सुनकर अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की। बादशाह ने अपने कुछ सेवकों को सूरदास की खोज में गोवर्धन भेजा किन्तु उन्हें

ज्ञात हुआ कि सुरदास श्रीनाथ जी के सेवार्थ मथुरा गए हुए हैं । अंत में मथुरा में ही सुरदास और अकबर की भेंट हुई । अकबर के कहने पर उन्होंने 'मन रे तू कर माधौ सौं प्रीत' नामक जिस उपदेशात्मक पद का गायन किया था, वह 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्रसिद्ध है । अकबर उनके गायन से बड़ा प्रसन्न हुआ । वार्ता में लिखा है कि जब अकबर ने अपना यशः वर्णन करने को कहा तो सूर ने यह पद गाया, 'नाहिं रह्यो मन में ठौर ।' यह भेंट सम्वत् 1623 में हुई थी ।<sup>61</sup> देशाधिपति का आग्रह ठुकराने की बात को इस साक्ष्यानी के साथ देखा जाना चाहिए कि वार्ताकार वैष्णवों के वार्ता प्रसंगों में ऐसे अक्सर तलाशता रहता है जिससे वैष्णव विशेष की अनन्यता जाहिर होती हो । क्वीत स्वामी राजा बीरबल के पुरोहित थे । एक बार वे बीरबल से 'बसोधी' (जज्मानी) लेने उनके शाही निवास पर गए ।<sup>62</sup> तब सवार के समें क्वीत स्वामी ने ये पद गाये, 'जे बसुदेव किये पूरणतप सोई फल फलित श्री बल्लभ देह' । ये पद सुनि के बीरबल बोले, जो में तो वैष्णव हूं परन्तु ये बात देशाधिपति सुनेंगे तो तुम कहा जवाब देओगे ।'<sup>62</sup> अकबर ने खुद को और ब्राह्मणों ने उसे प्रभु का अवतार घोषित किया हुआ था । भगवान के एक साथ दो अवतार कैसे हो सकते हैं ? शायद यही सोचकर बीरबल डरे होंगे । क्वीत स्वामी की वार्ता में आगे एक प्रसंग और है : एक दिन बीरबल देशाधिपति सों राजा लैके श्रीगोकुल में जन्माष्टमी के दर्शन कुं आयो पाछे वेष पल्लाय के देशाधिपति हूं क्वाने क्वाने आयो तब जन्माष्टमी के पालना के दर्शन करे मनुष्यन की भीड में देशाधिपति कुं श्रीगुसाईं जी बिना और कोई ने पहिचान्यो नहीं तब क्वीतस्वामी कीर्तन करते हते और श्रीगुसाईं जी श्रीनवनीत प्रियाजी कुं पालना भुलावते हते तब क्वीत स्वामी ने ये पद गायो --

प्रिय नवनीत पालनें भूले श्री विट्ठलनाथ भुलावे हो ॥

+ + +

क्वीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल निगम एक कर गाए हो ॥

ऐसे दर्शन क्वीत स्वामी कुं भये और देशाधिपती कुं हू ऐसे दर्शन भये और मनुष्यन कुं साधारण दर्शन भये तब देशाधिपती चले तब श्री गुसाईं जी ने गुप्त रीति सुं देशाधिपती कुं महाप्रसाद दिवाये तब देशाधिपती आगरे आये फेर दूसरे दिन बीरबलहूँ आये तब देशाधिपती ने बीरबल सुं पूछी जो कहा दर्शन किये तब बीरबल ने कही श्रीनवनीत प्रियाजी पालना भूलते हते और श्री गुसाईं जी भुलावते हते तब देशाधिपती ने कही ये बात भूठी है श्री गुसाईं जी पालना भूलते हते और श्रीनवनीत प्रिया जी भुलावते हते और क्वीतस्वामी तुम्हारे पुरोहित कीर्तन गावते ।<sup>63</sup> इस प्रसंग की प्रामाणिकता पर सदेह किया जा सकता है, लेकिन इतना मानना अस्वाभाविक न होगा कि जन्माष्टमी के त्यौहार पर बादशाह उपस्थित हुआ था और उसने क्वीतस्वामी का गायन सुना था । इसी तरह अकबर नंददास से मानसी गंगा के तट पर मिला था : तब पृथ्वीपती ने विचार कियो जो आपणों ब्रज में जानो और नंददास जी कुं मिलने तब पृथ्वीपती सकुटुम्ब ब्रज में आये गोवर्धन में डेरा किये और नंददास जी के पास बीरबल कुं पठाये और कही जो नंददास जी कुं पूछ आवो अब हम तुमकुं मिलवे आवें के तुम हमकुं मिलवे आवोगे ? तब नंददास जी ने कही हम परसुं के दिन मानसी गंगा स्नान करवे कुं आवेगे सो वहा पादशाह कुं मिले । ... फेर तीसरे दिन मानसी गंगा न्हायवे कुं गये उहां पृथ्वीपती कुं मिले ।<sup>64</sup> गोविंदस्वामी की वार्ता में आया है कि अकबर ने उनका गायन सुना था ।<sup>65</sup> दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में कहा गया है कि बीरबल ने बादशाह अकबर को गुसाईं जी से मिलवाया था, तब पादशाह श्री गोकुल आये बीरबल हूँ संग आये बीरबल आयके पादशाह के डेरा पर श्री गुसाईं जी कुं पधराय ले गये जब बादशाह ने रकांत में श्री गुसाईं जी सों पूछी जो साहेब कैसे मिले हं सो उपाय बताओ श्री गुसाईं जी ने लौकिक रीति सों उत्तर दियो, कही जैसे तुम हम कुं मिले ऐसे साहेब मिले हं तब पादशाह ने कही याको कारण समझावो, तब श्री गुसाईं जी ने कही हम हजारन उपाय करें तो तुम को मिलने कठिन

है और तुम बिचार्ये तो घड़ी हूँ न ली तुर्त हम कूँ मिल लिये... ये सुन के पादशाह बहुत प्रसन्न भये और श्रीगुसाई जी को दंडवत करी और किती करी जो कछु मेरो अंगिकार करौ तब श्री गुसाई जी ने कही जो हम कूँ गोपालपुर एक घंटा में पहुँच्यो जाय ऐसी अस्वारी होवै तो ठीक पादशाह ने ऐसो घोड़ो भेंट कर्यो जो एक घंटा में दशकोस जाय और घोड़ा के खरच में श्री गोकुल और गोपालपुर ये दो गाम दिये ।<sup>66</sup> हम अनुमान कर सकते हैं कि गुसाई विठ्ठलनाथ से मिलने की अकबर की मंशा यह रही होगी कि एक धर्म गुरु होने के नाते बादशाह के ईश्वर होने के संबंध में वे क्या सोचते हैं । गुसाई जी ने बड़ी चतुराई से जवाब दिया और अकबर के अकतारी होने की बात पुष्ट कर दी । बदले में उन्हें राजसी सम्मान मिला । पुष्टि मार्ग पर शोध करने वाले डा० रामकृष्ण शर्मा ने लिखा है, 'बादशाह ने श्री विठ्ठलनाथ जी को 'मानद न्यायाधीश' (आनरेरी मजिस्ट्रेट) की उपाधि से विभूषित किया था । न्यायाधीश का पद मिलने पर गुसाई जी के द्वारा जनता को बहुत लाभ मिला । अकबर द्वारा आयोजित धर्म परिषदों में श्री विठ्ठलनाथ जी स्वयं जाया करते थे । उनके सारगर्भित प्रवचनों से सम्राट् अकबर तथा बेगम हमीदा बानू बहुत प्रसन्न हुए थे । सम्राट ने गुसाई जी को उनके पद के अनुकूल घोड़े की सवारी, दमामा, हत्र, पंखा आदि के प्रयोग का अधिकार प्रदान किया था, जो उस युग का सर्वोच्च अधिकार था ।'<sup>67</sup> अकबर के द्वारा विठ्ठल नाथ के नाम समय-समय पर जारी फरमानों को पुष्टिमार्गीय मंदिरों में सुरक्षित रखा गया है । श्री के. एम. फावैरी ने इन फरमानों को संकलित कर 'इम्पीरियल फरमान्स' नाम से बम्बई से प्रकाशित करवाया था । इनमें से दो फरमानों का दीनदयालु गुप्त द्वारा लिप्यान्तर नीचे दिया जाता है :

- (1) चूंकि दुआगोय ला क्लाम विठ्ठलराय कसवे गोकुल में रहता है, इसलिए चाहिए कि खलायक पनाह के नौकरों में से व गैरों में से कोई भी दुआगोय ला क्लाम व उसके मुतलकीन व लवाहकीन के साथ किसी किसिम का मुजाहमत न करें और किसी भी वजह से कोई

चीज़ न मागि । छोड़ देवें कि दुआगोह अपने ठौर ठिकाने खातिर जमा से रहकर हमारे दौलत की बढ़ती बड़कबाल की तरक्की के वास्ते दुआ करता रहे । -

तहरीर 29 जमा दी उलसानी सन् 985 हिजरी मुताबिक सन् 1577 ईस्वी व संवत् 1634 विक्रमी ।

- (2) इस वक्त में हमने हुक्म फरमाया कि विट्ठलराय बिरहमिन जो बिला शुबह हमारा शुभचिंतक है, उसकी गायें जहाँ कहीं हों वे चरें । खालसा व जागीरदार कोई उनको तकलीफ न देवे, न रोके टोके व चरने से मुमानत न करे, छोड़ देवे कि उसकी गायें चरती रहें और वह आजादी से गोकुल में रहे । चाहिए कि हुक्म के मुताबिक तामील करें और कदामत रखें और हुक्म के खिलाफ न करें ।<sup>68</sup>

अकबर ने ऐसे फरमान सिर्फ विट्ठलनाथ के लिए ही नहीं जारी किए थे । उस समय के कई धर्माचार्यों के नाम अकबर के फरमान जारी हुए थे । 'धर्माचार्यों की धार्मिक स्वतंत्रता के प्रमाणों में ऐतिहासिक प्रमाणों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के यहाँ अकबर के लिए हुए कुछ सुरक्षित फरमान भी हैं ।'<sup>69</sup> जो लोग भक्ति आन्दोलन में इस्लामी शासन की नकारात्मक भूमिका ही देखते हैं उन्हें जानना चाहिए कि इस दौर में जितने धर्म-सम्प्रदाय फले-फूले उनके लिए राजसत्ता (विशेषकर अकबर का शासन काल) खाद पानी जुटाते हुए सकारात्मक भूमिका अदा कर रही थी । सगुण भक्ति आंदोलन इस्लामी राजसत्ता का सहारा पाकर ही इतना फैला ।

अकबर का 'अपनायत का व्यवहार' उसके दो उत्तराधिकारियों जहांगीर और शाहजहाँ के शासन के दौरान कमोवेश चलता रहा हालांकि, उसके पुत्र जहांगीर ने इस्लाम के विस्तार में रुचि लेना शुरू कर दिया था ।<sup>70</sup> जहांगीर के मित्र बीरसिंह बुन्देला ने मथुरा में एक भव्य मंदिर

का निर्माण करवाया था । जहांगीर के शासन के अंतिम दिनों में अकेले बनारस में सत्तर नये मंदिरों का निर्माण हुआ था ।<sup>71</sup> वह धर्म सभाओं में उपस्थित होकर विभिन्न सम्प्रदायों, मतों की बहस सुनता था ।<sup>72</sup> अब्दुरहीम खानखाना उसके दरबारियों में से थे ।

शाहजहाँ का भुकाव इस्लाम की तरफ ज्यादा था । यद्यपि वह एक हिंदू माँ का पुत्र था और उसके पिता खुद राजपूतनी माँ के बेटे थे, शाहजहाँ ने किसी हिन्दू राजकुमारी से शादी नहीं की थी । उसने इस आशय का आदेश जारी किया कि ऊँचे पदों पर सिर्फ मुसलमान ही नियुक्त होंगे । लेकिन इस आदेश को पूरी तरह अमली जामा नहीं पहनाया गया था ।<sup>73</sup> शाहजहाँ ने हिन्दुओं पर तीर्थ कर फिर से लगा दिया था जिसे बनारस के प्रसिद्ध विद्वान कवीन्द्राचार्य के आग्रह के बाद हटाया गया ।<sup>74</sup> उसने एक आदेश जारी करके पुराने मंदिरों की परम्पत और नए मंदिरों के निर्माण पर रोक लगा दी थी । साहित्य और कला के संरक्षण की दृष्टि से शाहजहाँ का काल उल्लेखनीय है । गुण और मात्रा दोनों में संस्कृत साहित्य की उन्नति हुई । प्रसिद्ध नैयायिक कमलाकर भट्ट ने इसी काल में 'निर्णय सिंधु' की रचना की थी । पंडित राज जगन्नाथ शाहजहाँ के दरबारी कवि थे । हिंदी के दो मशहूर कवि सूरदास और चिंतामणि भी शाहजहाँ के संरक्षण में थे । शाहजहाँ के अधीनस्थ राजाओं के दरबारों में कवियों को संरक्षण मिल रहा था ।

जैसा कि पहले कहा गया कि पुष्टिमागीय साहित्य में<sup>आर्य</sup> तीन मुस्लिम शासकों के नाम मिलते हैं - सिकन्दर लोदी, अकबर और औरंगजेब । औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता इतिहास प्रसिद्ध है । 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में उसे 'जुल्मी' कहा गया है, 'सो वा क़ात में द्रव्य रह्यो आयो फेर साठ वर्ष पीछे औरंगजेब बादशाह जुल्मी के समय में म्लेच्छ लोग लूटवे कुं आये तब श्री गोकुल में सुं सब लोग भाग गये और मंदिर सब खाली होय गये कोई मनुष्य गाम में रह्यो नहीं तब विन म्लेच्छन ने वे क़ात खोदी सो नवलक्ष

रूपयान को द्रव्य निकस्यो तब गाम में जितने मंदिर होते सब मंदिरन को क्षात खुदाय डारी ।<sup>75</sup> पुष्टिमागीय वैष्णवों ने औरंगजेब के भय से हवेलीनुमा मंदिर बनवाना शुरू किया । ये मंदिर सामान्य घरों जैसे होते थे जिन्हें पहचान पाना कठिन था ।

औरंगजेब द्वारा मथुरा में मंदिरों के ढहाए जाने से आतंकित बल्लभ सम्प्रदायी श्रीनाथ जी के मंदिर के मुख्य पीठाधिकारी दामोदर लाल ने वहां से किसी सुरक्षित जगह जाने में भलाई समझी । एक रात दामोदर लाल ठाकुर जी के स्वरूप के साथ जोधपुर रवाना हो गए । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह उस समय राजकीय दौरे पर थे । उनके अधीनस्थों में दामोदरलाल को शरण देकर बादशाह का कोपभाजन बनने का साहस न था । दामोदरलाल ने मेवाड़ के सिसौदिया राजा महाराणा राजसिंह से पनाह मांगी । महाराणा ने उनका स्वागत किया । भव्य समारोह के बीच श्रीनाथ जी के स्वरूप को सिहार में 10 मार्च 1672 को पधराया गया ।<sup>76</sup> इस घटना से मेवाड़ वैष्णवों का प्रमुख केन्द्र बन गया । सिहार नामक वह छोटा सा गांव आज एक बड़े और समृद्ध कस्बे के रूप में है । इसका नाम सिहार से बदलकर नाथद्वारा हो गया ।

इसी तरह वृंदावन से ठाकुर जी के सेव्य स्वरूप को उदयपुर राज्य के अंतर्गत कांकरौली में पधराया गया ।<sup>77</sup> कांकरौली नामक अल्फात जगह इसी वजह से महत्वपूर्ण हो गई । औरंगजेब ने अनजाने ही बल्लभ सम्प्रदाय के भौगोलिक क्षेत्र का विस्तार कर दिया ।

गुसाईं विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद भी पुष्टिमार्ग का मुगल राज-सत्ता से मधुर संबंध बना रहा । शासकों की तरफ से गुसाईं जी के वंशजों को रियायतें मिलती रहीं । इस दौरान बादशाहों ने कई फरमान जारी किए जो विट्ठलनाथ के नाम से हैं पर जिनमें 'नसलनदरनसल' या 'नसलन बाद नसल' लिखा गया है । इनमें से कुछ फरमान नीचे दिए जाते हैं -



तरजुमा फरमान बालशाय अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

इस मुबारिक वक्त में फरमान जारी हुआ कि गुसाईं विट्ठलराय साकिन गोकुल मौजे जतीपुरा मुत्तसिल व परगने गोवर्द्धन में जमींदारों को रुपया देकर खरीदकर मकानात व बागात, व गायों के खिड़क व मन्दिर गोवर्द्धन नाथ के कारखाने तैयार करा कर रहता है, इसलिए हुक्म जारी हुआ कि ऊपर लिखे मौजे को गुसाईं मज़कूर के कब्जे में नसलनदर नसल माफ़ व बागुज़ाशत छोड़ा गया । इस मौजूदा व आइन्दा होने वाला हाकिम आमिल, मुहिम्मों के मुत्सद्दी छोड़ी जागीरदार व ज़मींदार इस बड़े हुक्म की तामील कर मौजे में नसलन बाद नसल रहने दें और वजाहत व कुल अवारिज़ात व ख़रदरख़ती वहां के बाक्त मुज़ाहम न हो कर ऐतराज न करें और हर साल नया फरमान व परवाना न मागें व इसके खिलाफ़ न करें ताके, मारफत आगाह यानी ईश्वर को पहचानने वाला गुसाईं बादशाही महरबानियों से मशकूर होकर इस सल्तनत के हमेशा क़याम की दुआ करता रहे । तारीख 9 खुरदाद माह इलाही सन् 68 जलूसी, मुताविक सन् 1594 ई० व संवत् 1651 विक्रमी ।

तरजुमा फरमान अतिये अब्बुल गुज़फ़र शाहबुद्दीन मोहम्मद  
साहिब क़िरान सानी शाहजहां बादशाह गाजी ।

परगने सिहार के मौजूदा व आइन्दा होने वाले मुत्सद्दियों को मालूम हो कि इस वक्त मालूम हुआ है कि गुसाईं साकिन गोकुल विट्ठल राय टिकेत गोबरधननाथ मौजे जतीपुरा उर्फ गोपालपुर मुत्तसिल गोबरधन में जमींदारों को रुपया देकर जमीन खरीद करके मकानात व गायों के खिड़क व बागात, व ठाकुर गोबरधननाथ के कारखाने जात तैयार कराकर वहां रहता है । लिहाज़ा हुक्म शादिर फरमाया गया कि मौजे मज़कूर ज़मीन ठाकुर द्वारे के खर्च वास्ते हुज़ूर में से माफ़ और बागुज़ाशत की

गई । चाहिये कि हाकिम आमिल व जागीरदार लोग मौजूदा व आयन्दा होने वाले, इस हुक्म की तामील कर मजकूर के कब्जे में 'नसलनदरनसलन' छोड़े और इसमें ज़रा भी अदला बदली न करें । मौज़े मजकूर की इत्तल माल व जहांत व इस्तराजात पेशकश सरकार दहलीमी, मुकद्दमी, सद्दही, कानूंगोई व कुल तकालीफ़ दीवानी व मतालबात सुल्तानी, मौज़े मजकूर बाबत मुजाहमत न करें । और इस बारे में नया फ़रमान व परवाना न मांगें और हुक्म के खिलाफ़ न करें । तहरीर ता० 17 मेहर माह इलाही सन् 6 जुलूसी, मुताबिक सन् 1633 ई० व संवत् 1690 विक्रमी ।<sup>78</sup>

फ़रमान अतिये अबुल मुजफ़र शहाबुद्दीन मोहम्मदसाहब क़िरान  
-----  
सानी शाहजहाँ बादशाह गाज़ी  
-----

इस वक्त फ़रमान आलीशान जारी हुआ कि मौज़े गोकुल परगने महाबन ठाकुर द्वारे के खर्च के वास्ते क़दीम से गुसाईं विट्ठलराय के पातों को माफ़ है, लिहाजा हुक्म फ़रमाया जाता है कि मुहिम्मों के मुत्सद्दी और जागीरदार लोग मौजूदा और आयन्दा होने वाले इस हुक्म की पूरी तौर पर तामील कर मौज़े मजकूर को ठाकुरद्वारे के खर्च वास्ते बागुजार रखें और मजकूर के नसलन बाद नसल माफ़ रखें इसमें ज़रा भी रद्दोबदल न करें और कुल अवारिज़ात व सायर इस्तराजात व कुल बवज़ूहात व सरदरख्ती व कुल तकालीफ़ दीवानी से माफ़ और आज़ाद समझ कर हर साल नया फ़रमान व परवाना न मांगें कि गुसाईं मजकूर जो क़दीम से इस सल्तनत का दुआगो है खुशहाली के साथ फारिगुलबाल होकर हमेशा इस सल्तनत के कयाम तरक्की की दुआ करता रहे - तहरीर तारीख 17 मेहर इलाही सन् 6 जुलूसी - (तदनुसार सन् 1633 ई०, सं० 1690 वि०)

### फरमान अतिये मोहम्मद दारा शिकोह बिन शाहजहाँ बादशाह गाज़ी

---

काबिल इनायत व अहसान मुकरमत खां को मालूम होवे कि बिट्ठल राय वल्द दामोदर साकिन गोकुल व गोपालपुर कि इस सल्तनत के कदीमी दुआगीयों में से हं - इस वक्त हमारे हुजुर में आया और उसने हुसन अमल की तारीफ की अब हुजुर पुरनूर से रुखसत होकर अपने वतन में आता है, इसलिह हुक्म सादिर फरमाया जाता है कि अगर किसी काम व मुहिम में तुमसे मदद चाहें तो हिसाबी अमूर में कोशिश व मदद करोगे - अहदी को न झोड़ोगे कि हिसाब के खिलाफ उससे व उसके भाइयों से मोतरिज न होवे ताके खातिर जमा से अपने वतन में आबाद रहकर इस सल्तनत के हक में हमेशा दुआ करता रहे - तारीख 27 जमादीउल अव्वल सन् 1057<sup>79</sup> हिजरी - (तदनुसार सन् 1647 ईस्वी व संवत् 1705 विक्रमी) ।

इन साक्ष्यों की रोशनी में कहा जा सकता है कि मुग़ल शासन-सत्ता से पुष्टिमार्ग को बराबर संरक्षण व सहयोग मिलता रहा और इसके बदले वल्लभ संप्रदाय शासकों का 'दुआगीये' रहकर उनका समर्थन, हित-चिंतन करता रहा । इसमें उनके मलेच्छ या विधर्मी होने के कारण पैदा होने वाली चिढ़, दूरी या घृणा की कोई बात आड़े नहीं आई ।

शासन-सत्ता से पुष्टि-मार्ग के संबंध का विवेचन करने के पश्चात् अगले अध्याय में हम मध्यकालीन अन्य धर्म संप्रदायों से वल्लभ संप्रदाय के संबंधों की आवश्यक क्लानबीन करेंगे ।

## संदर्भ

1. अष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय - डा० दीनदयालु गुप्त,  
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सन्  
1970, पृ० 30 पर उद्धृत ।
2. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास, दूसरा भाग, प्रभुदयाल मीतल,  
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1974, पृ० 217
3. वही, पृ० 220
4. चौरासी वैष्णव की वार्ता, लक्ष्मी वैकटेश्वर स्टीम प्रेस,  
बम्बई, संस्करण 1986, पृ० 74
5. श्रीगोवर्धननाथ जी के प्राक्त्य की वार्ता, पृ० 10-11
6. वही, पृ० 11
7. ब्रज के धर्म सम्प्रदाय, मीतल, पृ० 221
8. हिस्ट्री आफ मेडिकल इंडिया, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० 467-68
9. मीतल, पृ० 221
10. वही
11. कांकरोली का इतिहास, कंठमणि शास्त्री,  
विद्या विभाग, कांकरोली, पृ० 64
12. मीतल, पृ० 222
13. वही
14. रिलिजियस पालिसी आफ द मुगल इम्पर्स, श्रीराम शर्मा,  
मुंशीराम मनोहरलाल प्रा० लि०, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण,  
1988, पृ० 1-7
15. वही, पृ० 6
16. वही, पृ० 9
17. वही, पृ० 9
18. वही, पृ० 10
19. भाव सिंधु - श्री गोकुलनाथ जी । प्रकाशक - लल्लुभाई कृगनलाल  
देसाइ 'श्री भक्ति ग्रंथ माला' कार्यालय, अहमदाबाद, प्रथमावृत्ति  
संवत् 1978, पृ० 278-281

20. रिलिजियस पालिसी आफ द मुगल इम्पर्स, श्रीराम शर्मा,  
मुंशीराम मनोहरलाल प्रा० लि०, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण,  
1988, पृ० 10
21. वही, पृ० 11
22. वही, पृ० 11
23. वही, पृ० 12
24. दूसरी परंपरा की खोज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन,  
नई दिल्ली, 1983, पृ० 73
25. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी,  
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1993, पृ० 42-43
26. सूरदास, आ० रामचन्द्र शुक्ल, प्रथम संस्करण, 2000 वि०,  
पृ० 117
27. अक्षर पर्व(मासिक), संपादक ललित सुरजन, अंक 2, अगस्त 1999,  
पृ० 24
28. परंपरा का मूल्यांकन, डा० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन,  
नई दिल्ली, पृ० 45-95
29. दूसरी परंपरा की खोज, डा० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन,  
नई दिल्ली, 1983, पृ० 84-86
30. अष्टकूप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त,  
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, दिव० सं० सन् 1970, पृ० 35
31. परमानंद पद संग्रह से, वही, पृ० 36
32. रामचरित मानस, उत्तर कांड, दोहा संख्या - 100 ख,  
गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण
33. दो सौ बावन वैष्णवों की वाता, वाता संख्या 135, 147  
और 244
34. मध्यकालीन भारत, सतीश चन्द्र, एन सी ई आर टी, नई दिल्ली  
तथा श्रीराम शर्मा, पृ०
35. महाप्रभु वल्लभाचार्य का भारत भ्रमण और चौरासी बैठकें -  
डा० भवर लाल द्विवेदी, चौबीस खंभा गृह उपयोग द्वारा  
प्रकाशित, उज्जैन, द्वितीय संस्करण 1994 ।

36. अकबर दरबार - शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद'  
(दरबारे अकबरी का रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुवाद), नागरी  
प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नवीन संस्करण संवत् 2024  
विक्रमी, पृ० 99
37. वही, पृ० 133
38. वही, पृ० 134
39. यह पद बंध आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का है ।
40. मानस, उत्तर कांड, दोहा संख्या 99, गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण
41. अकबरी दरबार , पृ० 130
42. वही, पृ० 130
43. वही, पृ० 131
44. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० 142-43
45. अकबरी दरबार, पृ० 130
46. अकबर - राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, नई दिल्ली, 1991,  
पृ० 230
47. वही, पृ० 230
48. दूसरी परंपरा की खोज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई  
दिल्ली, 1982, पृ० 56
49. वही, पृ० 56
50. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, प्रभुदयाल मीतल, नेशनल पब्लिशिंग  
हाउस, दिल्ली, 1974, पृ० 223
51. वही
52. श्रीगोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० 19
53. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, मीतल, पृ० 224
54. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० 292
55. वही, पृ० 106
56. वही, पृ० 101
57. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृ० 79-80

58. चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अन्तर्गत कृष्णदास अधिकारी की वार्ता, पृ० 314-20
59. मध्यकालीन कविता को पढ़ना पढ़ाना - विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, दिल्ली, 1999 । मिश्र जी यों तो इस चर्चा से बचते हैं, लेकिन भूमिका में वे तुलसी के माध्यम से बताते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास 'नर के मनसबदार' बिल्कुल नहीं होना चाहते थे । हमें लगता है कि तुलसी के इस दोहे की आखिरी पंक्ति में आए 'अब' शब्द पर गौर करना चाहिए :  
'तुलसी अब का होहि नर के मनसबदार' ।
60. 'अष्टहाप परिचय', प्रभु दयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस मथुरा, संवत् 2006, पृ० 102
61. वही, पृ० 139
62. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृ० 23
63. वही, पृ० 23-24
64. वही, पृ० 462
65. वही, पृ० 14
66. वही, पृ० 132-33
67. अष्टहापेतर पुष्टिमार्गीय कवि : सिद्धान्त और साहित्य, डा० रामकृष्ण शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1991, पृ० 23
68. अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय, भाग 1, दीनदयालु गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, 1970 ई०, पृ० 32 से उद्धृत । ये फ़ारमान 'हीरक जंजीर' ग्रंथ, साहित्य मंडल, नाथद्वारा, सन् 1997 में भी प्रकाशित हैं, पृ० 98-104
69. वही, पृ० 32
70. दि रिलिजियस पात्रिस्ती... श्रीराम शर्मा, पृ० 62
71. वही, पृ० 62
72. वही, पृ० 70

73. वही, पृ० 82
74. वही, पृ० 86
75. दो सौ बावन... पृ० 400
76. श्रीराम शर्मा, पृ० 134
77. वही
78. अष्टकूप और वल्लभ संप्रदाय - डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० 79
79. 'हीरक-जयन्ती ग्रंथ', साहित्य मंडल, नाथद्वारा, सन् 1997 ई०,  
पृ० 101-3

-----



## अध्याय - दो

-----

### मध्यकाल के प्रमुख सम्प्रदाय और पुष्टि मार्ग

बल्लभ सम्प्रदाय को जिस प्रकार अपने संरक्षण और विकास के लिए शासन सत्ता से संपर्क साधना पड़ा, उसी प्रकार अपने प्रसार के लिए तत्कालीन धर्म-संप्रदायों के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाना पड़ा। पुष्टिमार्ग में अधिक से अधिक लोग दीक्षित हों, इसके लिए ज़रूरी था कि विद्वानों के बीच प्रतिष्ठा तथा जनसामान्य के बीच व्यापक लोक-प्रियता अर्जित की जाए। पुष्टिमार्गी आचार्यों ने यह दायित्व भली-भाँति निभाया। यही वजह थी कि बल्लभ मत अपने समय का संभवतः सब से बड़ा संप्रदाय बन सका। पुष्टिमार्गी आचार्यों ने चार स्तरों पर सफल कोशिश की - पहला, उन्होंने अपने दार्शनिक मतवाद शुद्धाद्वैतवाद की श्रेष्ठता प्रमाणित की, दूसरा, दूसरे संप्रदायों की तुलना में पुष्टिमार्ग को अधिकाधिक जनग्राह्य बनाते हुए सभी जातियों, वर्गों, धर्मों के लोगों को आकर्षित किया, तीसरा, ऐसी व्यवस्था की कि एक बार इस सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने के बाद कोई दूसरे संप्रदाय की ओर मुखातिब न हो सके। इसे 'पूर्ण समर्पण' कहा गया। अन्य संप्रदायों को उपेक्षणीय, हीनतर सिद्ध किया गया। चौथा, राज्य सत्ता को अपने अनुकूल कर या खुद को राज्य सत्ता के अनुकूल बना कर शासकीय संरक्षण प्राप्त किया। इस प्रकार बल्लभ संप्रदाय अन्य संप्रदायों की तुलना में ज्यादा प्रभावी रहा, अधिक विस्तार पा सका।

मध्यकालीन वैष्णव संप्रदायों पर विचार करते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है कि, 'जिन आचार्यों ने भुक्ति और स्मृति ग्रन्थों के आधार

पर वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान दक्षिणी भारत से आकर उत्तरी भारत में किया था, वे और उनके चलाए सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं —

1. श्री रामानुजाचार्य और उनका विशिष्टाद्वैतवादी श्रीसंप्रदाय ।  
समय - सन् 1037-1137 ई० ।
2. श्री विष्णु स्वामी तथा उनका शुद्धाद्वैतवादी रुद्र संप्रदाय ।
3. श्री निम्बाकचार्य तथा उनका द्वैताद्वैतवादी निम्बार्क संप्रदाय ।  
समय - 1162 ई०
4. श्री मध्वाचार्य और उनका द्वैतवादी माध्व संप्रदाय । समय 1197-1276 ई० ।

उक्त चारों आचार्यों ने तथा इनके अनुयायी अन्य वैष्णव आचार्यों ने वैष्णव भक्ति और अपने तात्त्विक सिद्धान्तवाद की स्थापना के साथ शंकराचार्य के मायावाद तथा विवर्तवाद का भी खण्डन किया । उक्त चार आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर जो पृथक् संप्रदाय ईसा की 14 वीं शताब्दी से लेकर 16 वीं शताब्दी के अंत तक बने, उनमें से मुख्य वैष्णव संप्रदाय निम्नलिखित हैं —

1. श्री रामनंदजी का रामनंदी संप्रदाय (विशिष्टाद्वैतवादी)।
2. श्री चैतन्य महाप्रभु का चैतन्य संप्रदाय (गौडीय संप्रदाय), (अचिन्त्य भेदाभेदवादी) ।
3. श्री वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग (शुद्धाद्वैतवादी) ।
4. राधावल्लभीय संप्रदाय ।
5. हरिदासी संप्रदाय ।

ब्रजप्रांत में इन पांच भक्ति संप्रदायों में से अंतिम चार का ही अष्टकाल के समय में प्रचार हुआ था और इन्हीं की विद्यमानता का प्रमाण उस समय के ब्रज साहित्य से मिलता है ।

पुष्टिमार्गी ग्रंथों से पता चलता है कि इस संप्रदाय को तीन तरह के मतों, संप्रदायों, वादों से टकराना पड़ा । पहली कोटि में पारंपरिक

संप्रदाय थे । दूसरी कोटि में उस समय के बौद्धिक आतंक का पर्याय शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन था । तथा, तीसरी कोटि में बल्लभ मत के समकालीन वैष्णव संप्रदाय थे । पहली कोटि के अंतर्गत सनातनी हिंदू (जिन्हें बल्लभ संप्रदायी मयादिमार्गी/वेदमार्गी कहते हैं) शैव मत और शाक्त संप्रदाय रखे जा सकते हैं तथा तीसरी कोटि के अन्तर्गत चैतन्य संप्रदाय और रामानंदी संप्रदाय हैं । बल्लभ संप्रदायी ग्रंथों में न तो निर्गुण मत पंथों के संदर्भ मिलते हैं, न ही हरिदासी तथा राधावल्लभीय संप्रदायों के । बल्लभ संप्रदाय उन्हीं मतों की नोटिस लेता है जिन्होंने प्रस्थान त्रयी पर अपना भाष्य प्रस्तुत किया हो । हरिदासी तथा राधावल्लभ संप्रदाय वैष्णव परंपरा में तो हैं, लेकिन वे प्रस्थान त्रयी पर अपना कोई दार्शनिक मतवाद नहीं विकसित करते।

पुष्टिमार्गी ग्रंथों में अन्य संप्रदायों के उल्लेख खास अवसरों पर ही मिलते हैं । ग्रंथकारों की सर्वत्र एक सी मंशा झलकती है - पुष्टिमार्ग की श्रेष्ठता प्रदर्शित करना । और, यह विशेषता सिर्फ बल्लभ संप्रदाय की नहीं थी । उसके समकालीन अन्य वैष्णव संप्रदाय भी संहन-मंडन में प्रवृत्त थे । इनमें आपसी वाद विवाद सिर्फ वैचारिक-दार्शनिक स्तर पर नहीं होते थे । कई बार शारीरिक बल का भी सहारा लिया जाता था । वैष्णव संप्रदायों के आपसी रिश्ते इतने कटु थे कि उनमें मेल-मिलाप, खान-पान, वैवाहिक संबंध आसानी से नहीं होता था । उन्नीसवीं शताब्दी में आकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन झगड़ों को हानिकारक बताते हुए एका की अपील की थी, "यद्यपि अनेक आचार्यों ने इसी आशा से मत प्रवृत्त किया कि इसमें सब मनुष्य समानता लाभ करें और परस्पर खानपानादि से लोगों में ऐक्य बढ़े और किसी जाति, वर्ण, देश का मनुष्य कहीं न हो, वैष्णव पंक्ति में आ सके, किन्तु उन लोगों की यह उदार इच्छा भली भांति पूरी नहीं हुई, क्योंकि स्मार्त मत की और ब्राह्मणों की विशेष हानि के कारण इस मत के लोगों ने उस समुन्नत भाव से उन्नति को रोक दिया जिससे अब वैष्णवों में हुआ -

कृत सबसे बढ़ गया । ... वैष्णवातिरिक्त और किसी का स्पर्श बचाते वहां तक एक बात थी किन्तु अब तो वैष्णवों में ही ऐसा उपद्रव फैला है कि एक संप्रदाय के वैष्णव दूसरे संप्रदाय वाले को अपने मंदिर में और अपने खान-पान में नहीं लेते और 'सात कनौजियां नौ चूल्हे' वाली मसल हो गई है ।<sup>2</sup> भारतेन्दु वैष्णव संप्रदायों में हुआकृत की जिस प्रवृत्ति को (उन्नीसवीं शताब्दी का) परवर्ती बदलाव मानते हैं और उसे उनकी 'अवनति' कहते हैं, वह प्रवृत्ति इन संप्रदायों के शुरुआती गठन से ही जुड़ी हुई है । बल्लभ तथा गौडीय - दो सबसे बड़े संप्रदायों में<sup>3</sup> संप्रदाय बाह्य लोगों को पाखंडी कहने का चलन था । एक संप्रदाय दूसरे संप्रदायों को अपने से ओछा साबित करने का अवसर चूकता नहीं था । सांप्रदायिक ग्रंथों में ऐसे उदाहरण चुन-चुनकर रखे गए हैं जिन्होंने उनकी सर्वोपरिता प्रमाणित होती हो ।

### पुष्टि मार्ग और मर्यादा मार्ग

---

पुष्टि मार्ग को अपने विकास-क्रम में सबसे पहले जिस मत से खुद को अलग बताना पड़ा, वह मर्यादा मार्ग था । मर्यादा मार्ग ब्राह्मणों का पारंपरिक मार्ग था । इसमें वेदोक्त कर्म ही वैध था । पुष्टि मार्ग मर्यादा मार्ग को सर्वथा नकारता नहीं, लेकिन इसे भक्ति मार्ग के लिए अनुकूल नहीं मानता । बल्लभ संप्रदाय में भक्ति दो प्रकार की मानी गई है - शीतला भक्ति और उष्णा भक्ति ।<sup>4</sup> शीतला भक्ति में मर्यादा होती है । भाव की तन्मय दाहकता उसमें नहीं होती । नारद आदि भक्तों में शीतला भक्ति है, गोपी जनों में उष्णा भक्ति । मर्यादा मार्ग से अपने को अलगाने के लिए बल्लभ मत में ब्रजगोपिकाओं के तीन भेद किए गए -

1. सामान्या (ब्रजांगना - प्रवाह)
2. अनन्य पूर्वा (गोपी - मर्यादा)
3. अन्यपूर्वा (गोपांगना - पुष्टि)

प्रथम प्रकार की ब्रजांगना वे थीं जो कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव रखती थीं । इनमें यशोदा आदि आती हैं । ये भक्ति का आदर्श नहीं हो सकतीं । दूसरे प्रकार की गोपियां ब्रज कुमारिकाएं थीं । जो कृष्ण को अपना पति मानकर उपासना करती थीं । पत्नी भाव युक्त ये गोपियां मयादा मार्ग का अनुसरण करने के कारण भक्ति का आदर्श नहीं हो सकतीं ।<sup>६</sup> अन्य पूर्वा वे गोपिकाएं थीं, जो विवाहिता थीं और जिन्होंने भगवान के प्रति आत्म निवेदन 'जार भाव' से किया था । बल्लभ सिद्धांत का भक्ति आदर्श और भगवत प्रेम की अनन्यता, सर्वसमर्पण अथवा सर्वतो-भावेन आत्मनिवेदन का लोक वेद से परे का आदर्श इन्हीं में पूरा पूरा घटित होता है । यही वे गोपिकाएं हैं जिनमें 'दारागार पुत्राप्त-वित्तादि' का निखिल विनियोग प्रभु के चरणों में तुलसीदल के साथ हो जाता है और साधक अथवा भक्त का स्व समाप्त हो जाता है ।<sup>५</sup> अष्ट-छापी कवियों ने इन्हीं गोपिकाओं को अपना आदर्श माना है । ये गोपिकाएं लोक, वेद और कुल की लज्जा की जरा भी चिंता नहीं करतीं । मयादा के बंधन इन्हें बांध नहीं पाते । इन्होंने अपना सर्वस्व कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया है । परमानंददास अपने एक पद में कहते हैं —

मोहन मोहिनी पठि मैली ।

देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली ॥

काके मात तात अरु भ्राता काको पति हे नवेली ।

काकी लोक लाज डर कुल व्रत को भ्रमति बन अकेली ॥

परमानंद स्वामी मनमोहन सुति मयादा पैली ।<sup>६</sup>

उन्हीं का दूसरा पद है -

ये हरि रस ओपी गोप तियन तें प्यारी

+ + +

निरमत्सर ते संतत आही चूड़ामणि गोपी ।

निरमल प्रेम प्रवाह सकल मयादा लोपी ।

जो ऐसे मरजाद मैटि मोहन गुन गावै ।

क्यों नहिं परमानंद प्रेम भगति सुख पावे ।।<sup>7</sup>

सूरदास का मशहूर पद है --

जबहरि मुरली अधर धरी ।

गृह व्योहार तजे आरज पथ चलत न सक करी ।।

चैतन्य संप्रदाय में इसी तरह भक्ति के दो भेद किए गए थे - वैधी और रागानुगा । यह बात गौरतलब है कि कालान्तर में रागानुगा भक्ति के बदले वैधी भक्ति ज्यादा महत्व पाती गई । यह प्रक्रिया चैतन्य संप्रदाय में ही नहीं बल्कि संप्रदाय में भी घटित हुई । 'जारभाव' को आदर्श बनाए रखते हुए भी राधा को स्वकीया के रूप में चित्रित किया गया । कदाचित् मर्यादामार्गी समाज का दबाव काम कर गया ।

बल्लभ संप्रदायी आचार्य इस तरफ विशेष सावधान रहते थे कि उनके मार्ग को मर्यादा मार्ग का थोड़ा बदला हुआ रूप ही न मान लिया जाए । सांप्रदायिक ग्रंथों में कई बार इस जिज्ञासा का समाधान किया गया है । 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में पुरुषोत्तम दास की वार्ता के अन्तर्गत आया है कि, 'एक दिन पुरुषोत्तम दास ने श्री गुसाईं जी सों पूछो जो मर्यादा मार्ग और पुष्टि मार्ग में भेद कहा तब श्री गुसाईं जी ने आज्ञा करी मर्यादा मार्ग में साधन और क्रिया और कर्म बल और कर्म के फल की इच्छा और साधन की मुख्यता जाको नाम मर्यादा मार्ग है और पुष्टि मार्ग में स्नेह पूर्वक कृष्ण सेवा मुख्य है और भगवदीय को सत्संग और केवल भगवदनुग्रह को बल और केवल निःसाधन-पणों और भगवद्धर्म मुख्य... सौ पुष्टि मार्ग कहिए ।'<sup>8</sup>

वार्ता साहित्य से पता चलता है कि स्मार्तों और पुष्टि-मार्गीयों में हमेशा अनबन रहती थी और वे एक दूसरे को पीड़ित करने के उपाय ढूँढ़ा करते थे । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि पद्मरावल ने अडेल में बल्लभाचार्य का सेवकत्व ग्रहण किया था । पद्मरावल ने महाप्रभु को सूचना दी थी कि उन्हें स्मार्त मतानुयायी तंग किया करते हैं :- श्री आचार्य जी महाप्रभुन से (पद्मरावल ने) बीनती कीनी जो

महाराज हों तो अति मूर्ख हों जह हों कछु जानत नाहीं और मेरी जाति के ब्राह्मण महाकर्म जह है स्मार्त है सो मोको दुख देत है । श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने अपने चरणार्बिंद को चन्दन और चरणामृत दीनो और कह्यो जो तोको सब सिद्धांत स्फुरेगो सो चरणामृत तीनों सो उतने में ही सब सिद्धांत स्फुर्द भयो पाछे देश उज्जैन में आए पाछे बड़े-बड़े ब्राह्मण प्रतिवृत्ति पूछन लागे तब जितनेन ने पूछो तिनकुं प्रति उत्तर दैके सब बिदा किये ।<sup>9</sup> एक समय श्री गुसाईं जी उज्जैन पधारे सो कृष्ण भट्ट जी के घर ठेरा किए और उहां के ब्राह्मण सब मिलिके श्री गुसाईं जी के पास आये प्रश्न कियो जो तुम्हारे सेवक कृष्णभट्ट जी वेदोक्त कर्म नहीं करे हैं और अष्ट प्रहर सेवा करे हैं तब विनकुं श्रीगुसाईं जी ने उत्तर दियो --

मत्कर्म कुर्वतां पुंसां कर्मलोपो भवेद्यदि ।

तत्कर्मति प्रकुर्वन्ति त्रिशत्कोटयो महर्षयः ॥

‘और कहे भोर भये जानिये’ तब ये सुनके ब्राह्मण बोले जो भोर भये कैसे जान्यों जायगो तब गुसाईं जी ने कहि जहां रात्र होवे है तहां दिन के पदार्थ सूफे नहीं है जब तुम्हारे अंतःकरण में उजारो होयगो और माया रूपी रात्र मिटेगी तब देखोगे ।<sup>10</sup> मर्यादामार्गियों से पुष्टिमार्गी इस अर्थ में भी अलग थे कि न वे यज्ञ करते थे, न ही पुराण भागवत बांच कर आजीविका चलाते थे । वल्भ्याचार्य ने आजीविका के लिए भागवत को माध्यम बनाने से स्पष्टतः मना कर रखा था --

“ पठनीयप्रयत्नसर्वहितुविवर्जितम् ।

वृक्षेनैवयुजीत प्राणीः कंष्ठगतैरपि ॥

तदभावेतथैवस्यात्तथानिर्वाहमाचरेत् ॥

तब पद्मनाभदास ने जल की अंजली भरि के संकल्प कियो जो अबते कथा - कहिबे को वृत्त न कहंगो... तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने श्रीमुखते कह्यो जो श्री भागवत वृत्तार्थ न कहनो ।<sup>11</sup> इसी तरह संप्रदाय में भिक्षा मांग कर जीवन-निर्वाह करने को भी अच्छा नहीं माना जाता था ।<sup>12</sup>

यद्यपि महाप्रभु बल्लभाचार्य का अवतार उनके पितरों द्वारा 100 सोमयज्ञ करने के फलस्वरूप हुआ था तथापि आचार्य जी ने अपने मार्ग में यज्ञ को प्रोत्साहन नहीं दिया था। यज्ञ वस्तुतः मयादिमार्गियों की पहचान थी। यज्ञ वेदोक्त विधि से ही संपन्न हो सकता था जबकि पुष्टि मार्ग की प्रेमलक्षणा भक्ति वैदिक निषेधों की परवाह नहीं करती थी। आचार्य की वंश-परंपरा में गुसाईं विट्ठलनाथ के चौथे पुत्र गोकुलनाथ ने एक बार यज्ञ करने का विचार किया था। उन्होंने अपने बड़े भाई गिरिधरजी से अनुमति मांगी। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में आया है कि उन्हें कान्हवाई ने यज्ञ करने से मना कर दिया था। कान्हवाई अष्टकापी कवि गोविन्द स्वामी की बहन थीं और उन्हें मार्ग के सिद्धांतों की जानकारी थी, 'एक दिन गोकुलनाथ जी ने श्री गिरिधर जी कुं यज्ञ करिवे कुं पूछा जो हमारी यज्ञ करिवे की इच्छा है तब कान्हवाई बोलीं जो यज्ञ रूप श्री गोवर्धन नाथ जी तुम्हारे माथे विराजे हैं इनके सैवे सौ सब यज्ञ होय जायेंगे।'<sup>13</sup> गोविन्दस्वामी ने जब गुसाईं विट्ठलनाथ का पहली बार दर्शन किया था, उस वक्त वे ठकुरानी घाट पर संध्या-तर्पण कर रहे थे। संध्या-तर्पण मयादिमार्गियों की रीति है। गोविन्दस्वामी यह देखकर असमंजस में पड़ गए। उन्होंने गुसाईं जी से पूछा, 'जो आप तो कपट रूप दिखावत हो साक्षात् पूरुषात्मा पुरुषोत्तम रूप होयके वेदोक्त कर्म करत हो सो हम जैसेन कुं मोह होयहै जब श्री गुसाईं जी ने आज्ञा करी जो भक्ति मार्ग है सो फूल को वृत्त है और कर्म मार्ग है सो कांटन की बार है ॥ तासूं कर्ममार्ग की बार बिना भक्तिमार्ग, जो फूल को वृत्त वाकी रक्षा न होय ॥'<sup>14</sup> जिस प्रकार फूल की सुरक्षा के लिए बाड़ लगाने की ज़रूरत पड़ती है, उसी तरह भक्ति मार्ग को कर्म मार्ग के आवरण से ढांप कर रखना पड़ता है। लेकिन यह दायित्व सिर्फ आचार्यों/गुसाईयों का है। सामान्य वैष्णव सेवक को वेदोक्त कर्म करने की सलाह नहीं दी गई है। वेदोक्त कर्मों के प्रति वैष्णवों की व्यापक उदासीनता से कदाचित्त यह अर्थ न निकाला जाए कि पुष्टि मार्ग वेद निर्मूलक है, वाताकार ने एकाध जगहों पर यह आशंका खारिज की है - 'वे माधवदास बड़े पंडित होते



और अन्यमार्गीय हते और वैष्णव कुं टीलवा कहते एक समय गुसाईं जी वडनगर पधारे तब पंडितन की सभा करी सब पंडितन में बड़े माधवदास हते सो वे माधवदास सब पंडितनु कुं लेके सभा में आये तब साकार निराकार को वाद भयो तब श्री गुसाईं जी ने साकार ब्रह्म को प्रतिपादन कियो और सभा में बहौत विवाद भयो माधवदास के मन में जो हतो पुष्टिमार्ग वेद निर्मूलक है सो सदैह निक्स गयो तब माधवदास वाही समय श्री गुसाईं जी के सेवक भये ।<sup>15</sup> उद्धरण से जाहिर है कि पुष्टि मार्ग को वेद परंपरा में स्थापित किए बिना न तो विश्वसनीयता अर्जित की जा सकती थी और न ही वेद विश्वासी ब्राह्मणों को पुष्टि मार्ग बनाया जा सकता था ।

### पुष्टिमार्ग और रामभक्ति शाखा

पुष्टिमार्ग ब्रजक्षेत्र में फैला, रामभक्तिशाखा अवधक्षेत्र में । इसलिए, इन दोनों में प्रत्यक्ष टकराव के अवसर प्रायः नहीं आए । दूसरी बात, रामानंदी संप्रदाय की व्याप्ति उतनी नहीं थी जितनी चैतन्य, बल्लभ जैसे संप्रदायों की । रामानंदी संप्रदाय का सांगठनिक ढांचा भी अपेक्षाकृत छोटा रहा । इस संप्रदाय में कवियों, सिद्धान्तकारों की संख्या भी बहुत कम रही, सांप्रदायिक ग्रंथों की रचना भी तुलनात्मक रूप से ज्यादा नहीं हुई। कुल मिलाकर बल्लभ संप्रदाय के मुकाबले रामानंदी संप्रदाय ऊना ही ठहरता है । इसी कारण पुष्टिमार्गीयों ने इस संप्रदाय को प्रतिद्वन्द्वी भाव से नहीं देखा ।

बल्लभ संप्रदायी ग्रंथों में रामभक्ति धारा के दो-तीन संदर्भ मिलते हैं । इनमें एक रोचक उदाहरण 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में आया है । दिल्लीवासी एक पुष्टिमार्गी वैष्णव राम का माहात्म्य सुन कर अयोध्या चला आया, तब वे श्री गुसाईं जी की आज्ञा मांग के श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कुं गये श्री रामचन्द्र जी के दर्शन किये पर वाके मन

में अभाव आयो जो श्रीनाथ जी जैसो सुख इहां नहीं है सो श्री रामचंद्र जी की आडी पीठ फिरिके ठाडो रह्यो जब वाकुं कोढ निकस्यो तब वाने श्रीराम चन्द्र जी सों कही जो श्रीनाथ जी कुं छौडिके तुमारे पास आयो हुं सो मैने बडो अपराध कियो है कोढ सु अपराध की निवृत्ति नाहीं होय है मेरी रोम रोम में कीडा पडने चाहिए जब मेरो अपराध निवृत्त होयगो ऐसे अनन्यता के कवन सुनिके श्री रामचंद्र जी हसैं और आज्ञा करी जो जाओ श्रीनाथ जी के दर्शन करौ ।<sup>16</sup> यह उदाहरण संप्रदाय बाह्य अध्यताओं के लिए भले ही रोचक हो पर अपने अभीष्ट पाठकों पर दृष्टत भरा प्रभाव छोड़ने वाला है । श्रीनाथ जी के अतिरिक्त किसी अन्य स्वरूप में श्रद्धा की इच्छा का मतलब है कोढ़ी होना । ऐसे दृष्टान्त पढ़कर अयोध्या की तरफ कदम बढ़ाने का साहस शायद ही किसी पुष्टि-मार्गी सेवक को हो । संप्रदाय में आने के बाद अनन्यता का कठोरत निभाना अनिवार्य है ।

वार्ताकार ने एक वैष्णव के प्रसंग में दिलचस्प समस्या उठाई है - अगर संयोगवश, पुष्टिमार्ग में श्रद्धा रखने वाली कन्या का विवाह किसी रामोपासक से हो जाए तो ! उनकी पूरी जिंदगी भगड़ा करते हुए गुजरेगी - ऐसे वा वैष्णव की बेटी श्रीकृष्णचंद्र की अनन्य भक्त हती सो वे बाई जब पति के घर गईं जब वाको पति श्रीरामचन्द्र जी को उपासी हतो सो देख के वह बाई पति सुं भाषण करती नहीं एक दिन वाके पति ने पूछी जो तुमारे श्रीकृष्ण चंद्र कहा करते हैं वा बाई ने कही जो बाल लीला और दान लीला और रास लीला और चौर लीला मान लीला जन्म लीला वन लीला विहार लीला सब लीला जितनी हैं सो एक कालावच्छिन्न करते हैं जब वाके पति ने कही जो हमारे श्रीरामचंद्र जी राज लीला करते हैं ... ऐसे करते जिनको आखो जन्म भगडत गयो और नित्य श्रीठाकुर जी भगडा चुकावत रहे जन्मसूधी विनकुं संसार व्यवहार याद आयो नहीं सो वे बाई वैष्णव की बेटी श्री गुसाईं जी की ऐसी कृपापात्र भववदीय हती ।<sup>17</sup> संदेश स्पष्ट है किसी वैष्णव को भूलकर भी रामोपासक (या किसी भी अन्य मार्गीय) के साथ वैवाहिक संबंध

नहीं बनाना चाहिए । वाताकार ने वैष्णवी की प्रशंसा की है कि उस ने रामोपासक पति से कभी बात नहीं की, हमेशा भगड़ा किया और अन्य मागीय के स्पर्श से बचने के प्रयास में कभी पत्नी-धर्म नहीं निभाया।

रामभक्ति धारा अपने नायक के चरित्र के कारण मयादामार्ग से अभिन्न हो जाती है । वल्लभ संप्रदाय में मयादा मार्ग पर जो आरोप हैं उन्हें रामभक्तिधारा पर भी घटित होते माना जा सकता है । इस मयादा मार्ग के केन्द्रीय व्यक्तित्व तुलसीदास हैं । नंददास की वार्ता में तुलसीदास का उल्लेख है और उन्हें नंददास का भाई बताया गया है । विद्वानों में इस कथन को लेकर विवाद है । शुक्ल जी नंददास को तुलसी का भाई नहीं मानते ।<sup>18</sup> मिश्रबंधुओं ने नंददास को तुलसी का गुरु भाई माना है । केशी माधव दास रचित 'मूल गुसाईं' चरित्र में नंददास को तुलसी का गुरुभाई ही बताया गया है ।<sup>19</sup> डा० दीनदयाल गुप्त नंददास को तुलसी का भाई बताते हैं ।<sup>20</sup> पुष्टिमार्ग के अधिकारी विद्वान प्रभुदयाल मीतल ने विभिन्न स्रोतों का परीक्षण करके नंददास को तुलसी का चचेरा भाई प्रमाणित किया है ।<sup>21</sup> वार्ता साहित्य की प्राचीन अवधि की सभी प्रतियों में इसी बात की पुष्टि की गई है । नंददास तुलसी के चचेरे छोटे भाई थे । वे शुरू से ही रसिक मिजाज के थे । वे एक अत्यंत रूपकती छात्राणी पर आसक्त थे । उसी का पीछा करते-करते गुसाईं किट्ठलनाथ के पास पहुंच गए । किट्ठल के सान्निध्य से उनकी बुद्धि निर्मल हो गई । वे पुष्टिमार्ग के सेवक हो गए । तुलसी को जब इस बात का पता चला तो वे बहुत दुखी हो गए । अपने अनुज को सही रास्ते पर लाने के लिए उन्होंने एक नसीहत भरी चिट्ठी नंददास के पास भेजी । चिट्ठी में उन्होंने लिखा, 'जो पतिव्रता धर्म छोड़ के अब तैने व्यभिचार धर्म कियो । सो तैने आहो काम न कियो । अब तू आवे तो तौको फेरि पतिव्रता को धर्म बताऊं ।'<sup>22</sup> मयादामार्ग तुलसी के लिए पुष्टिमार्ग व्यभिचार मार्ग का पर्याय था । वे नंददास को इस व्यभिचार धर्म से उबारना चाहते थे । लेकिन, नंददास ने अग्रज की आज्ञा मानने की बजाए उन्हें बहुत चुभता हुआ

उत्तर लिखा । इस उत्तर को रामानंदी संप्रदाय को वल्लभ संप्रदाय द्वारा दिया जानेवाला प्रतिनिधि उत्तर माना जाना चाहिए - 'मेरी विवाह प्रथम तो श्रीरामचंद्र जी के साथ भयो હતો, ता पाछे बीच में श्रीकृष्ण आय पोहोचे, सो आइके अचक ले गए । जो - जैसे कोई लौकिक में व्याह करि ले जाइ, और कोई जोरावर लूटि लेइ । सो तैसे ही श्रीरामचंद्र जी में बल होतो तो मोको श्रीकृष्ण कैसे ले जाते ? और श्री रामचंद्र जी तो एक पत्नीव्रत हैं सो दूसरी पत्नी कूं कैसे सभारेंगे ? एक पत्नी हूं बरोबर सभारि न सके, सो राका हरि के ले गयो और श्रीकृष्ण तो अनंत अबलान के स्वामी हैं और इनकी पत्नी भये पाछे कोई प्रकार को भय रहे नाही है, एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नीन कूं सुख देत हैं जासों मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं ।'<sup>23</sup> वाताकार आगे लिखता है कि नंददास फिर कभी तुलसी के पास नहीं गए । अपने अनुज से मिलने तुलसी को गोकुल आना पड़ा । तब तुलसीदास गोविंद कुंड पे आए । नंददास ने तुलसीदास को दूरि तें आवत देखि के मुख फेरिके श्री गोवर्धन नाथ जी की ओर देखन लागे ।<sup>24</sup> तुलसी भी अपनी धुन के पक्के थे । उन्होंने गोवर्धननाथ जी को सिर नहीं नवाया । तब नंददास जानि गये, जो ये श्रीरामचंद्रजी बिना और दूसरे को नहीं नमे हैं । नंददास ने मन में विचार कियो जो - यहां और श्रीगोकुल में इनको श्रीरामचंद्र जी के दर्शन कराऊं, तब ये श्रीकृष्ण को प्रभाव जानेगे । पाछे नंददास ने श्री गोवर्धननाथ जी से विनती करी :

कहा कहों ह्वि आज की, भले बने हो नाथ ।

तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लो हाथ ॥

यह बात सुनि के श्रीनाथ जी को श्रीगुसांई जी की कानि ते बिचार भयो, जो श्री गुसांई जी के सेवक कहै सो हमको मान्यो चाहिये ।<sup>25</sup>

नंददास के साथ तुलसीदास गुसांई विठ्ठलनाथ के पास आए । नंददास ने श्रीगुसांई जी के दर्शन करि साष्टांग दंडवत करी और तुलसीदास ने दंडवत करी नाही । नंददास को स्पष्टीकरण देना पड़ा । उन्होंने गुसांई जी से कहा - 'ये मेरे भाई तुलसीदास हैं, सो श्रीरामचंद्र जी के बिना और को नहीं नमे हैं ।'<sup>26</sup> इतना विवरण यह बताने के लिए

पर्याप्त है कि इन दो वैष्णव संप्रदायों के बीच किस तरह का अनमनीय रिश्ता था ।

### बल्लभ संप्रदाय और शैव मत

मध्यकाल के सभी संप्रदाय एक खास अर्थ में समन्वयवादी हैं । अपने इष्ट देव के अतिरिक्त अन्य देवों के प्रति भी सम्मान प्रकट करने की छूट ये अपने अनुयायियों को देते हैं । शर्त सिर्फ इतनी है कि दूसरे देवताओं को इष्ट देव का उपासक माना जाए । शिव और शैव मत का उल्लेख वार्ता साहित्य में कई प्रसंगों में आया है । इनमें प्रायः शिव के प्रति पूजा भाव है, लेकिन सर्वत्र शिव कृष्ण के अनन्य भक्त के रूप में प्रदर्शित किए गए हैं । इस तरह के दूसरे पुष्टिमागियों के समकक्ष ही ठहरते हैं । शिव — भक्त की चरम उपलब्धि यह मानी गई है कि जब भी उसका विवेक जाग्रत हो वह कृष्ण की शरण में आ जाए । शिव भी अपने भक्तों को यह उपदेश देते हुए दिखाए गए हैं ।

मध्यकाल में बनारस उत्तरभारतीय शैवोपासकों का एक प्रमुख केन्द्र था । यहाँ के विश्वनाथ मंदिर में धार्मिक, सांप्रदायिक भगड़ों का निपटारा हुआ करता था । माना जाता है कि रामचरित मानस की सर्वोपरिता इसी मंदिर के देवता ने प्रमाणित की थी । चौरासी वैष्णवों की वार्ता में इस मंदिर का एकाधिक बार जिक्र हुआ है । सर्वाधिक दिलचस्प प्रसंग पुरुषोत्तम दास क्षत्री की वार्ता का है । पुरुषोत्तमदास क्षत्री बनारस में रहते थे । महाप्रभु बल्लभाचार्य की आज्ञानुसार वे नाम देने, सेवक बनाने के अधिकारी थे, 'ताते सेठ पुरुषोत्तमदास नाम देते और अपने घर श्री मदनमोहन जी की सेवा करते पर कबहुं विश्वेश्वरनाथ महादेव जी के दर्शन को न जाते ऐसे बहुत दिन बीते तब एक दिन विश्वेश्वरनाथ महादेव जी ने सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो सेठ जी तुम हमसों गांव को नातो तो राखौ कबहुं हमको प्रसाद तो दिया करौ ऐसे स्वप्न में कही

तब सवारै सेठ पुरुषोत्तमदास उठि कै सेवा सों पहुँच के बाहर आये तब वस्त्र पहर के बीडा दौय प्रसादी लेके डबरा प्रसाद को लेकर विश्वेश्वरनाथ महादेवजी के मंदिर को चले तब गांव के लोग आश्चर्य भये जो सेठ पुरुषोत्तमदास कबहुँ दर्शन को न आवते सो आज क्यों आये सो सब लोग साध आये । सेठ पुरुषोत्तमदास ने देवालय में जाय के विश्वेश्वर नाथ महादेव जी के आगे बीडा दौय धरि प्रसाद को उतरा धरि श्री कृष्ण स्मरण करिके उठि चले तब बड़े बड़े पंडित ब्राह्मण हुते तिनने सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो सेठ दंडोत नमस्कार कछु न कीनो श्रीकृष्ण स्मरण कहि के उठि चले सो तो तुमको उचित नाही तब सेठ पुरुषोत्तम दास ने उन ब्राह्मणन सों कह्यो जो तुम महादेव जी को पूछि लीजियो तुमसों महादेव जी कहेंगे पाछे उन ब्राह्मणन में एक महादेवजी को बड़ो कृपापात्र भगवदीय हुता तासों महादेव जी ने स्वप्न में कह्यो जो हमने इनसों महाप्रसाद मांग्यो हौ सो देन आये हैं हमारो इनको व्योहार जे श्रीकृष्ण को है ताते तुम इनसों कछु मति कहौ पाछे सेठ पुरुषोत्तमदास बड़े उत्सव को प्रसाद कबहुँ कबहुँ ले जाते तब एक दिन महादेवजी ने काल भैरव सों कह्यो जो सेठ पुरुषोत्तमदास वैष्णवन के घर ते अवेरो सवेरो आवत है ताते तू इनके घर को चौकी पहरा नित्य देत रहियो सों काल भैरव नित्य इनके घर को चौकी पहरा देता सो एक दिन सेठ पुरुषोत्तम दास वैष्णवन के घर ते अवारे आवत है सो सेठ पुरुषोत्तम दास घर के द्वार आये तब फिरि के देखें तां काल भैरव एक ठौर ठाढो है तब सेठ ने वासो पूछो जो तू कौन है तब वह बोलो जो हूं काल भैरव हों मोको महादेव जी ने आज्ञा दीनी है ताते तुमारे घर को चौकी पहरा देत हों तब सेठ पुरुषोत्तम दास खिरकी देकें भीतर गये ।।<sup>27</sup>

इसी वार्ता के एक अन्य प्रसंग में लिखा है कि दक्षिण देश का एक शैव ब्राह्मण महादेव जी का बड़ा कृपापात्र था । उसे महादेव जी साक्षात् दर्शन दिया करते थे । सो एक समे जन्माष्टमी को उत्सव आयो सो विश्वेश्वरनाथ महादेव जी सेठ पुरुषोत्तमदास के घर गये जन्माष्टमी को उत्सव देखन को सो वा ब्राह्मण ने जन्माष्टमी के उत्सव के दिन दर्शन न पायो और नवमी के दिन दुपहर लों जब सेठ पुरुषोत्तम दास

के घर ते महादेव जी विदा होय के आये तब वा ब्राह्मण ने महादेव  
 जी को दर्शन पायो तब वा ब्राह्मण ने महादेव जी सो पूछो जो कालि  
 और आज हम दर्शन दुपहर लौं नाहीं पायो सो काहे तो तब वा ब्राह्मण  
 सो महादेव जी ने कह्यो जो हम कालि सेठ पुरुषोत्तमदास के घर  
 उत्सव देखन गए सो अब ही विदा होय के आवत हौं तब वा ब्राह्मण  
 ने कही जो सेठ पुरुषोत्तमदास कौन हैं तिनके घर तुम उत्सव देखन  
 कौ जात हौ तब महादेव जी ने कह्यो जो बड़े भगवद् भक्त हैं तब वा  
 ब्राह्मण ने कह्यो जो हो हूं भगवद् भक्त करो तब महादेव जी ने कह्यो  
 जो सेठ पुरुषोत्तमदास के पास तू जायके नाम ले आउ तब वा ब्राह्मण  
 ने कही जो तुमही मो को नाम देउ तब महादेव जी ने कही जो ये तो  
 तोको नाम देउंगो सही परि मेरे दियो नाम तोको फलेगो नाहीं ताते  
 सेठ पुरुषोत्तम दास के पास नाम ले आउ वे तोको नाम देखी तब वह  
 ब्राह्मण सेठ पुरुषोत्तम दास के पास नाम लेन गयो सो आय के भीतर खबर  
 करवाई जो एक ब्राह्मण आयो है तब सेठ पुरुषोत्तम दास ने कही जो  
 बैठारो माथो खाली करन आयो होयगो तब सेठ पुरुषोत्तमदास सेवा  
 सो पहुंचि के बाहर आये तब वा ब्राह्मण ने दंडौत कीनी तब सेठ पुरुषोत्तम  
 दास ने कही जो ऐसो अनुचित क्यों करत हो हम चात्री तुम ब्राह्मण ऐसे  
 यों न घटे हैं तब वा ब्राह्मण ने सेठ पुरुषोत्तमदास सो कही जो हमको  
 नाम देउ तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कह्यो जो हूं तो नाम नाहीं देउंगो  
 बहुरि ब्राह्मण ने बहुत आग्रह कीनों परि पुरुषोत्तमदास ने नाम न  
 दीनों तब वह ब्राह्मण महादेव जी के पास आयो तब कह्यो जो सेठ  
 पुरुषोत्तम दास नाम नाहीं देत तब महादेव जी ने कह्यो जो तू फेरि जा  
 हमारो नाम लीजियो जो मोको श्रीमहादेव जी ने पठायो है तब वह  
 ब्राह्मण फेरि सेठ पुरुषोत्तमदास के पास आयो और कह्यो जो मोको  
 महादेवजी ने पठायो है ताते मोको नामदेउ तब सेठ पुरुषोत्तमदास  
 ने वा ब्राह्मण को नाम दीयो नाम सुनायके हाथ जोरि के श्रीकृष्ण  
 स्मरण कह्यो तब वा ब्राह्मण ने कह्यो जो अब मोको प्रनाम क्यों करत  
 हौ तब सेठ पुरुषोत्तम दास ने जो अब तुम भगवद भक्त भये मेरे तुम

बंदनीय हों तुमारे और हमारे बंदनीय श्री आचार्य जी महाप्रभू हैं मैं तो श्री आचार्य जी महाप्रभू की कृपा ते नाम देत हों पाके वह ब्राह्मण श्री आचार्य जी महाप्रभू के पास अहेल आयी तब श्री आचार्य जी महाप्रभू के पास नाम करवायो ... ।<sup>28</sup> इस प्रसंग से चार-पांच बातें स्पष्ट होती हैं :

1. महादेव जी की दृष्टि में वैष्णव ही श्रेष्ठ है । भगवदभक्ति ही काम्य है ।
2. महादेव जी अपने कृपा पात्रों को पुष्टिमार्गीय बनाना चाहते हैं ।
3. किसी शैव को पुष्टिमार्ग में दीक्षित करने से पहले उसकी परीक्षा लेनी चाहिए । उसके बार-बार आग्रह करने और आस्था प्रमाणित करने के बाद ही नाम देना चाहिए ।
4. अन्य मार्गीय ब्राह्मण होकर भी प्रणाम्य नहीं है । एक बार संप्रदाय में दीक्षित हो जाए तो वर्णक्रम के अनुसार सम्मान का अधिकारी हो जाता है ।
5. महाप्रभू के महत्वपूर्ण सेवक नाम दे सकते हैं, लेकिन अंततः नाम समर्पण करवाने का अधिकार आचार्य जी का है ।

‘समन्वयवादी’ रामभक्त तुलसीदास शिव को अधिक महत्व देते दिखाई पड़ते हैं । शिव की निंदा या निरादर करने वाला नरक का अधिकारी होता है ।<sup>29</sup> शिव पूजनीय हैं, वंदनीय हैं । शिव की इस महिमा का कारण क्या है ? तुलसी ने विधाता से इसका रहस्योद्घाटन कराया है --

तब बोले विधि गिरा सुहाई ।  
जान महेस राम प्रभुताई ।।<sup>30</sup>

महेश की महिमा का बखान करने वाले तुलसीदास शैव मतावलंबियों को मानस में जगह देने से भरसक बचे हैं । उत्तर कांड में आकर उन्होंने



शैव मत का एक प्रतिनिधि कलियुग वर्णन के प्रसंग में उपस्थित किया है । तुलसी की सहिष्णुता और समन्वयवाद की चर्चा में इस प्रसंग को याद रखना चाहिए । काग भुसुंडि अपने विभिन्न जन्मों के बारे में मायाग्रस्त गरुड़ को बता रहे हैं । अपने एक जन्म में कागभुसुंडि शैव थे । शैव थे क्योंकि वे शूद्र थे :

तेहिं कलियुग कौसलपुर जाई ।  
जन्मत भयउं सूद्र तनु पाई ॥  
सिव सेवक मन क्रम अरुबानी ।  
आन देव निंदक अभिमानी ॥  
धन मद मत्त परम वाचाला ।  
उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला ॥  
बिप्र एक वैदिक सिव पूजा ।  
-----  
करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥  
संभु मंत्र मोहि दिक्जवर दीन्हा ।  
सुभ उपदेस विविध विधि कीन्हा ॥

में खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।  
हरिजन दिक्ज देखे जरऊं करउं विष्णु कर द्रोह ॥  
हर कहुं हरि सेवक गुरु कहेऊ । सुनि लगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥  
अधम जाति में बिद्या पाये । भयउं जथा अहि दूध पियाये ॥  
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । .... 31 ....

एक तो शूद्र ऊपर से शैव । तुलसी का रोष देखते ही बनता है । उदारता और समन्वय वृत्ति सिर्फ रामभक्त के पास हो सकती है । तुलसी अंततः 'एक तो कोला दुजे नीम चढ़ा' इस शैव को भगवान शिव से शाप दिलवाते हैं - 'जौ नहिं दंड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा ॥ बैठि रहसि अजगइ इव पापी । सर्य होहि खलमल ----- मति व्यापी ॥ महा विटप कोटर महुं जाई । रहु अधमाधम अध गति

पाई ॥<sup>32</sup> शूद्र शैव के शाप का मोचन इस शर्त पर होता है कि  
 आगे जन्म में वह रामभक्त होगा । तुलसी के शिव वैदिक शिव हैं । वे  
 'श्रुति मार्ग' की रक्षा करते हैं । सम्प्रदायगत घोर कट्टरता मध्यकाल  
 की केन्द्रीय विशेषताओं में गिनी जा सकती है । समन्वयवाद कहने भर  
 को है । बल्लभ संप्रदायी ग्रंथों में जहां भी शैव मत का उल्लेख है, उसे  
 कमतर या महत्वहीन ही बताया गया है । एक राजा ने शिव की बड़ी  
 तपस्या की । राजा की कामना पुत्र प्राप्ति की थी । पुत्र के लिए उस  
 ने चार बार महारुद्र यज्ञ किया । महादेव जी प्रसन्न हुए । वे श्री  
 ठाकुर जी के पास<sup>कुं</sup> विनती की । ठाकुर जी ने कहा कि इस राजा  
 के भाग्य में सात जन्मों तक पुत्र नहीं है । शिव भक्त को निराश होना  
 पड़ा । कालान्तर में एक विरक्त वैष्णव ने राजा पर कृपा की । चार  
 पुत्र होने का वरदान दे दिया ।<sup>33</sup> फेर भगवदिच्छा तें वा राजा की  
 चार स्त्रीन कुं गर्भ रह्यो और दस महीना बीते राजा के चार बेटा भये  
 जब राजा ने वा वैष्णव ब्राह्मण कुं बुलाय के कही जो तुम कौन से धर्म  
 प्रमाण में चले हो और कौन देव की उपासना करे हो... फेर गोसाईं  
 जी कृपा करके श्रीगोकुल तें पधारे और वा राजा कुं दर्शन दिये और वा  
 राजा कुं साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये और वे राजा श्री गुसाईं  
 जी को सेवक भयो और अपने सर्व परिवार और कुटुम्ब सबकुं श्री गुसाईं  
 जी के सेवक कराये ।<sup>33</sup> आहत महादेव जी ठाकुर जी के पास पहुँचे ।  
 उन्हें दुखद आश्चर्य की सूचना दी । ठाकुर जी ने कहा, 'मेरे जो अनन्य  
 भक्त हैं विन के मैं अधीन हूँ और वे चाहें सों कर सकें और जिनने मोकुं  
 तन मन प्राण समर्पण कियो है विनकुं कौन सों अर्थ बाकी रह जाय है...  
 वैष्णव त्रिगुणातीत हैं और काल के वश नहीं हैं और कोई के वश नहीं  
 है जासुं तुम शंका छोड़ि के जाओ ।'<sup>34</sup> लौटकर शिव ने अपने अनुयायियों  
 को श्री गुसाईं जी के शरण में जाने की सलाह दी । इसी तरह एक दूसरी  
 कथा में वर्णित है कि एक मृत शैव की जलती चिता से उठा हुआ धुआं  
 आकाश मार्ग में गतिमान एक विमान से ढूँढ़ गया । परिणामस्वरूप विमान

में बैठे हुए देवता धरती पर आ पड़े । देवताओं ने कहा कि जिसने अश्वमेध यज्ञ किया हो यदि वह अपना फल दे तो विमान वापस स्वर्ग जा सकता है । सारे ब्राह्मण इकट्ठे हुए । किसी ने हवन किया, किसी ने वेदपाठ, विमान टस से मस न हुआ । एक वैष्णवी जल लेकर आ रही थी । भीड़ देखकर उसने पूछताछ की । देवताओं का दुख दूर करने के लिए जल का क्लींटा विमान पर मारा । विमान वापस स्वर्ग चला गया । ब्राह्मणों ने उस वैष्णवी के चरण पकड़ लिए । वैष्णवी ने उनकी शंका का समाधान किया : द्वादश गुण युक्त कोई ब्राह्मण यदि पद्मनाभ श्री टाकुर जी के चरण कमल से बहिर्मुख है तो उससे वह चाँडाल श्रेष्ठ है जिसने अपना तन, मन और वाणी भगवान को अर्पित कर दिया है :

विप्रादिवर्षादुणायुतारविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्  
मन्ये तदर्पित मनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति सकुलं न तुभूरिमानः ।।

मथुरा में एक वैष्णव छात्री थे, भगवद्वाता में निपुण । पुष्टि मार्ग के ग्रंथों का भावार्थ सुनने उनके यहाँ रोज भीड़ जुटती । वैष्णव भुने चने का भोग लाते और उसे प्रसाद रूप में वैष्णवों में बाँट देते । श्री महादेव जी वैष्णव का रूप धर कर कथा सुनने रोज पहुँचा करते । उस वैष्णव मंडली में एक धनाढ्य सेठ ने आना शुरू किया । वे चना-प्रसाद लेकर फेंक दिया करते । किसी को इस कृत्य की मनक न लाती । सो जब चना वह सेठ डार देतो हतो तब महादेव जी बीन लेते । तब एक दिन छात्री वैष्णव ने महादेव जी कुं चना बीनते देखे पाँके वा श्रेष्ठ कुं मंडली में आवे की नहीं कही ।<sup>36</sup> वाता ग्रंथों में महादेव जी जहाँ-तहाँ वैष्णव रूप रखकर अपना जीवन कृतार्थ करते दिखाए गए हैं । महादेव जी के भक्त जब भी किसी वैष्णव की बराबरी करने की कोशिश करते हैं, उन्हें मुंह की खानी पड़ती है । दो ब्राह्मण थे - एक वैष्णव दूसरा शैव । शैव ब्राह्मण राजा का प्रिय पात्र था । राजा निःसंतान था । शैव ने बहुतेरी कोशिश की, राजा को संतान लाभ नहीं हो पाया । वैष्णव ब्राह्मण

ने कहा कि तुम्हें एक के बजाए चार पुत्र हो सकते हैं बशर्ते तुम वचन दो कि वैष्णव धर्म ग्रहण कर लोगे । राजा का मनोरथ पूरा हुआ । वह परिजनों सहित गुसाईं जी का सेवक बना ।<sup>37</sup>

गुसाईं जी के सेवक दो बैलगाड़ियों में सामान भरकर आगरा मंडी से गोपालपुर<sup>38</sup> आ रहे थे । रास्ते में एक भैरव मंदिर के सामने गाड़ियां रुक गईं । गाड़ीवान ने बताया कि इस मंदिर में दो नारियल चढ़ाने पर ही गाड़ी चल सकेगी । इस मंदिर की यही परंपरा है । तब वा वैष्णव ने भैरव के मंदिर में जायके कही तेनें गाड़ा क्यों अटकाय है गाड़ा चलने दे नहीं तो गाड़ान के बैल के ठेकाणो तोकुं जोड़ुंगो तब भैरव उठके हाथ जोड के ठाढो भयो और कही जो मेरी सामर्थ्य तुमारे गाड़ा अटकावे की नहीं है परंतु तुमारे दर्शन की अभिलाषा मोकुं हती और श्रीनाथ जी के प्रसाद की अभिलाषा है जासुं इहां गाड़ा ठाढे राखे हैं नहीं तो श्रीनाथ जी के गाड़ा तीन लोक में अटकावे को समर्थ कोई नहीं है तब वा वैष्णव ने श्रीनाथ जी को प्रसाद गांठडी मे सुं काढ के भैरव कुं दियो फेर भैरव गाड़ा की धुरी में बैठ के एक घंटा में गोपालपुर गाड़ा पहींचाय दिये तब वे गाड़ा के मनुष्यन ने ऐसो जाण्यो विनने नारियल दिये होयगी ये बात श्रीगुसाईं जी ने सुनी । तब गुसाईं जी ने आज्ञा करी जो भैरव कुं नारियल दियो होय तो ये सब सामग्री ली गई तब वा वैष्णव ने ... वीनती करी जो महाराज भैरव ने महाप्रसाद मांग्यो और मेने दियो नारियल दिये नहीं है और गाड़ा में जोड के भैरव कुं लायो हुं सो अबी वह भैरव बाहर ठाढो है श्रीनाथ जी के मुंगला के दर्शन करके जायगो ये सुन के श्री गुसाईं जी बहोत प्रसन्न भये ।।

इन तमाम उदाहरणों से पता चलता है कि रामानंदी संप्रदाय से कहीं ज्यादा शैव मत से पुष्टि मार्ग का वास्ता पड़ता था । गुसाईं जी इन प्रसंगों में हुआकूत का ख्याल रखते दिखाई पड़ते हैं ।

## बल्लभ मत और शाक्त परंपरा

---

अपने जनाधार का विस्तार करने के लिए बल्लभ संप्रदाय को पारंपरिक मतपंथों से टकराना अनिवार्य था । इन पारंपरिक मतवादों में प्रमुख दो ही थे - शैव और शाक्त परंपरा । मध्यकाल वैष्णव संप्रदायों का काल था लेकिन शैव और शाक्त मतावलंबियों की संख्या भी कम नहीं थी । शैव और शाक्त परंपराएं अपने दार्शनिक प्रस्थानों के लिए उतनी लोकप्रिय नहीं थीं जितनी साधना-पद्धति के कारण । इस वक्त विद्वान ब्राह्मण नए-नए मतवादों में उलझे हुए थे लेकिन सामान्य जनता अब भी बहुतायत में इन्हीं परंपराओं में विश्वास करती थी । उसका मानस बहुदेववादी था । उसने अलग-अलग परंपराओं के बीच सामंजस्य बेटा लिया था । वैष्णव, शैव और शाक्त परंपराओं को एक साथ स्वीकारने, इनमें एक साथ जीने में उसे कोई हिचक, दुविधा नहीं होती थी । बल्लभ मत का प्रस्ताव एक नई बात थी । श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य थे और पुष्टिमार्ग ही केवल सच्चा मार्ग था । एक बार यह मत स्वीकार कर लेने पर विचलन की कोई गुंजाइश नहीं बचती थी । आश्रय बदला नहीं जा सकता था । अन्याश्रय होने पर कठोर दंड का प्रावधान किया गया । इसे हम अगले अध्याय में देखेंगे । फिलहाल, इन पारंपरिक मतों में विश्वास करने वाली जनता को अपने संप्रदाय में दीक्षित करने के लिए बल्लभ संप्रदाय ने पूरी कोशिश की । दूसरे देवी-देवताओं को श्रीकृष्ण के सेवक-सेविकाओं के रूप में चित्रित किया गया । पुष्टि मार्ग की स्वीकृति बढ़ाने के लिए कई तरह के प्रलोभनों ('इंसेंटिव्स') का विधान किया गया । पुष्टि मार्ग के वैष्णव दूसरे मतों की तरफ आकर्षित न हों, इसका पक्का इंतज़ाम हुआ । इन कारणों से बल्लभ संप्रदाय बढ़ता गया, मजबूत होता गया । इस विस्तार के और भी कई महत्वपूर्ण कारण थे जिनकी चर्चा प्रस्तुत शोध में यथावसर की जाएगी ।

ऐसा कहा गया, बल्लभ मत में श्रीकृष्ण के समकक्ष दूसरा कोई देवी या देवता नहीं हो सकता था । दूसरे देवी देवताओं में आस्था रखने वाले पुष्टि मार्ग में अपनी जगह न बना लें, इस और विशेष सतर्कता बरती गई । पहले श्रीनाथ जी की सेवा का जिम्मा बंगाली ब्राह्मण संभालते थे । बल्लभ संप्रदाय के कोई अवधूत दास थे । ये ब्रज मंडल में घूमते रहते थे और कृष्णदास अधिकारी को तरह-तरह की खबरें पहुंचाया करते थे । इन्होंने कृष्णदास को सूचना दी कि जब बंगाली श्रीनाथ जी को भोग धरते सो उनकी चुटिया में देवी को छोटो सो स्वरूप हुतो सो साम्हे बैठावते जब भोग सरावते वा देवी को अपनी चुटिया में धर लेते ।<sup>39</sup> कृष्णदास अधिकारी ने अवधूतदास की सलाह पर बंगाली ब्राह्मणों को निकाल बाहर करने की पूरी कार्य-योजना तैयार की । गुसाईं श्री विट्ठलनाथ को सूचना दे दी गई । कार्य-योजना के मुताबिक गुसाईं जी ने राजा टोडरमल और बीरबल के नाम दो अलग-अलग पत्र लिखे । ऐसा सरकारी बंदोबस्त करने के लिए ज़रूरी था । तब कृष्णदास अधिकारी श्रीनाथ जी द्वार आये सो वे बंगाली सब रुद्रकुंड ऊपर रहते सो उहां उनकी फौंपरी हुती सो कृष्णदास ने जराय दीनी तब सोर भयी तब बंगाली सेवा छोड के पर्वत के नीचे आये तब कृष्णदास ने पर्वत ऊपर अपने मनुष्य पठाय दीये तब बंगाली देखें तो कृष्णदास ने फौंपरी में आग लाय दीनी है तब सब बंगाली कृष्णदास सो लरन लागे तब कृष्णदास ने दवे-दवे चार-चार लाठी सबन के दीनी तब वे बंगाली तहां ते भाजे ।<sup>40</sup> बंगालियों ने रूप सनातन से सहायता मांगी । लेकिन रूप सनातन कुछ न कर सके । थक हार कर वे मथुरा के हाकिम के पास पहुंचे । सरकारी पक्ष को पहले ही तैयार कर लिया गया था ताते उन बंगालीन ने श्री गोवर्द्धन रहिवो छोड दीयी ।<sup>41</sup> कृष्णदास अधिकारी पूरी तरह सफल रहे ।

एक वैष्णव और साक्षात् देवी के बीच तुलना के लिए यह प्रसंग देखें : सो वे गणेश व्यास कुं श्रीनाथ जी सानुभाव हते वे गणेश व्यास एक दिन श्रीनाथ जी के लिए सामग्री लावते हते तब रस्ता में बरसात पड्यो

सो गाम बाहेर देवी के मंदिर में आयके डेरा कियो तब लोगन ने कही जो मनुष्य रात इहां रहे ताकुं ये देवी तो साय जाय है । तब गणेश व्यास ने देवी का मंदिर धोयके देवी के कान में अष्टाक्षर मंत्र सुनायो और आप उहां सोय रहे तब वा देवी ने गाम के राजा कुं स्वप्न में कह्यो जो अब मैं वैष्णव भई हूं तुम दो बकरा मोकुं नित्य पठावत हो सो मत पठियो और तुम सब वैष्णव होय जाओ नहिं तो सबकुं दुःख देखंगी ।<sup>42</sup> अष्टाक्षर मंत्र के असर से देवी ने न सिर्फ धर्म बदला वे पुष्टि मार्ग की प्रचारक भी हो गईं । इसी तरह की घटना आगरा निवासी ब्राह्मण दंपति की है । ब्राह्मण दंपति ने देवी का मंत्र सिद्ध कर रखा था । देवी रोज आधी रात को दर्शन देने पहुंचतीं । एक रात जब देवी पहुंचीं तो उन्होंने पाया कि पांच वैष्णव उस ब्राह्मण के दरवाजे पर सो रहे हैं । देवी उन्हें लाघ कर जायं तो कैसे । गरमी का मौसम था, 'देवी प्रसन्न होयके अपने बड़े भाग्य मान के विन वैष्णव कुं पंखा करन लागिं ... और वे ब्राह्मण तो देवी के दर्शन के लिए बहोत आतुर हतो सो दोनों स्त्री पुरुष बहोत प्रार्थना करन लो और स्तुती करन लो और आवाहन करन लो तोहुं देवी आईं नहीं ।'<sup>43</sup> सारी रात पंखा करती रहीं । जब वे वैष्णव उठकर चले गए तभी देवी अंदर आ सकीं । वजह जानकर ब्राह्मण दंपति ने वैष्णवों के दर्शन की इच्छा प्रकट की । देवी ने कहा, 'जो मैं तुमारे ऊपर प्रसन्न भई हूं और तुमारी सांचो भाव मेरे में है जासु मैं तुमकुं कहूँ जो तुम दोउ जने वा वैष्णव के पास जायके श्री गुसाईं जी के शरण जाओ ।'<sup>44</sup> कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई वैष्णव प्रलोभनवश देवी भक्त हो जाए । तब उसका हथ्र क्या होगा - यह दशनि के लिए वाताकार ने एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है - 'सो वे दोनों जने श्रीगुसाईं जी के सेवक भये और श्रीठाकुर जी पधराय के सेवा करन लागे । एक दिन स्त्री परोसी के घर गईं वाके घर वैभव बहुत देख्यो सो वाकुं पूछी तुमारे घर वैभव कैसे भयो तब वाने कही हम देवी की पूजा करे हैं यातें भयो है फेर वा परोसन ने कही तुम देवी की पूजा करौ तो तुमारे घर वैभव बढ जाय ।'<sup>45</sup> वैष्णव की स्त्री का मन बहक

गया । वह देवी की मूर्ति अपने घर ले आई । पति से देवी की पूजा का सामान लाने को कहा । पति बाजार गया । एक पंसारी की दुकान से सामान खरीदा । पतिभ्रष्ट वैष्णव से गुलती होनी ही थी । उसने पंसारी की रुपयों की कोथली (फोला) उठा लिया । पंसारी उसे पकड़ कर हाकिम के पास ले गया, 'उहां के हाकिम ने ये न्याय कर्यो याकुं गधा पर बैठाये के गाम में फेरना तब वाकुं गधा के ऊपर बैठाये के गाम में फेर्यो तब वैष्णव के मन में आई भनि अन्याश्य कर्यो जब ये फल भयो तब घर में जायके तत्काल देवी को स्वरूप पावो पड़ोसी के घर धराय दियो फेर चित्त लाय के श्रीठाकुर जी की सेवा करन लो तब वाकुं मन में ऐसी निश्चय भयो वैष्णव कुं अन्याश्य न करनो अन्याश्य तें अनिष्ट होवै हे ।'<sup>46</sup>

जिस तरह महादेव जी वैष्णव वार्ता में रुचि रखते दिखाये गए हैं उसी तरह देवी भी भगवद्वाता सुनने पहुंचती रहती हैं । गुजरात का एक बनिया वैष्णव हुआ । उसके यहां भगवद्वाता सुनने गांव की देवी आया करतीं । एक दिन बहुत बारिश हुई । घर आए तमाम वैष्णवों को भोजन कराना था । सोई में जलाने के लिए सूखी लकड़ी न थी । देवी ने कहा कि इतनी रात गए लकड़ी कहाँ ढूँढ़ोगे मेरे मंदिर का एक कपाट ले जाओ । वैष्णवों को महाप्रसाद मिलना चाहिए । यह रहस्य बनिया वैष्णव के पड़ोसी ब्राह्मण को ज्ञात हुआ । देवी मंदिर का कपाट उठाने वह भी पहुंचा । जैसे ही उसने दरवाजा हुआ, उससे चिपट गया । पत्नी बनाने आयी, वह भी चिपट गई । दोनों रात भर रोते रहे । देवी जी ने कहा कि एक तो तुम मेरे नए कपाट लावाओ, दूसरे उस वैष्णव बनिया के घर पर्याप्त मात्रा में सूखी लकड़ी पहुंचाओ । विवश ब्राह्मण ने वचन दिया । घर आकर उसने बनिया से पूछा, 'जो देवी तुमारो कह्यो माने हैं याको कारण कहो तब वा बनिया ने कही जो वैष्णव धर्म ऐसी ही है तब वा ब्राह्मण ने कही हमकुं वैष्णव करो ।'<sup>47</sup> शैवों से ज्यादा देवी-भक्तों को संप्रदाय में शामिल करने की बल्लभ मार्गियों की कोशिश रही । संभवतः शाक्तों की संख्या अधिक थी और पुष्टिमार्गियों का उनसे साबका भी



अपेक्षाकृत ज्यादा पढ़ा । एक देवी पूजक राजा को भावदभक्त बनाने की घटना 'राजा जोतसिंह की वार्ता' में वर्णित है, 'सो वे राजा के पुरोहित को बेटा बड़ो पंडित हतो... और श्रीगुसाईं जी के सेवक हतो ... एक दिन राजा के पास गयो तब राजा रासाई देवी की पूजा करतो हतो तब वा पुरोहित ने राजा सुं कही जो ऐसी देवी तो हजारन पंढरपुर में जल भरे हैं तब वा राजा ने कही मोकुं दिखाय दे फेर वे राजा और पुरोहित को बेटा पंढरपुर में आये श्रीविठ्ठलनाथ जी के दर्शन किए ओर वैभव कहु देख्यो नाही तब वा पुरोहित सुं कही जो मेरी देवी को वैभव जितनी है यासुं बीसमो भाग श्री विठ्ठलनाथ जी को नहीं है तुम मोकुं काहे कुंलाये हो तब वा पुरोहित ने श्री गुसाईं जी की कृपा तें वा राजा जोतसिंह कुं दिव्यदृष्टी दीनी तब श्री विठ्ठलनाथ जी के सब वैभव के दर्शन होवे लगे... राजा देख के विस्मित होय गयो और पुरोहित के बेटा के पावन पर्यो फेर पुरोहित वा राजा को हाथ पकड़ के दूसरी आड़ी ले गयो उहां देखे तो हजारन स्त्री जल भरके आवे हैं और उन स्त्रीन सुं पाहे वा राजा की रासाई देवी जल भर के आवती हती... राजा ने देवी सुं पूछ्यो जो ये कहा है सो वा देवी ने कही मैं तो सेवा करुहुं ... तब वे राजा हाथ जोड के पुरोहित सुं कह्यो जो मोकुं सेवककरो तब पुरोहित ने कही जो मैं अहेल में श्रीगुसाईं जी को सेवक भयो हुं... तुमहुं श्रीगुसाईंजी के शरण जाओ तब राजा पुरोहित कुं संग लैके अहेल जायके श्री गुसाईं जी को सेवक भयो ।।' <sup>48</sup> पुष्टि मार्ग का साधारण सेवक भी अन्य मार्गियों को, भले ही वह राजा क्यों न हो, जरा भी महत्व देता दिखाया नहीं गया है । एक शाक्त राजा ने देवी मंदिर बनाने के लिए प्रजाजनों पर कर लगाया । दो पटेल भाई इन करदाताओं में थे । वे दोनों गुसाईं जी के सेवक थे । दोनों भाईन ने विचार कियो जो अपना द्रव्य तो श्री ठाकुर जी को है सो कैसे दियो जाय ।' <sup>49</sup> उधर राजा के कोप से बचना ज़रूरी भी था, 'फेर दोनों भाइन ने ऐसो विचार कियो या देवी कुं कूवा में डार देनी तब रात कुं आयके वा देवी कुं कूवा में पटक आये और घर में आय के सूते तब वो देवी राजा की हाती पर जायके चढ़ी जो कूवा में पड़ी हुं सो तु मोकुं काढ और वे वैष्णव

पटेल दौय भाई तेरे गाम में रहे विनकुं दो रुपैया दंड कर्यो है सो छोड़ देत तब राजा चौक उठ्यो वार्ड समय वे दोनों पटेल कुं बुलाय के दंड माफ कर्यो और देवी कुं कूवा में सुं कढाई सो दोनों पटेलन को श्रीठाकुरजी ऊपर से विश्वास हतो सो देवी कुं तुच्छ गणी और देवी विनकुं कहु पराभव न कर सकी ।<sup>50</sup> बल्लभ मत के अनुसार अन्य मार्गि विशेष कर शाक्त मतानुयायी मूलतः मनुष्य नहीं होते । एक बार कुछ वैष्णव एक शाक्त मतावलम्बी के दरवाजे पर रात में आकर रुके । देवी जी को रात में अपने उपासक से मिलना था, लेकिन वैष्णवों को देखकर वे घर के अंदर जाने का साहस न कर सकीं । जब वैष्णव चले गए तभी वे अपने भक्त दम्पति से मिलीं । उन्होंने वैष्णव धर्म की महिमा बताई और तुरंत वैष्णवों से मिलने की सलाह दी । वैष्णव गांव के बाहर निकल चुके थे । देवी पूजक ब्राह्मण के अनुरोध पर उन्होंने दस पंद्रह दिन बाद मिलने का आश्वासन दिया । वैष्णवों ने देवी के लिए एक उपरना भेंट किया । शाक्त ब्राह्मण अपने घर आया । देवयोग से उपरना उठ के वा ब्राह्मण के माथे ऊपर जाय पहुँचो तब वाकी लुगई वा ब्राह्मण कुं कुतिया जैसी दीसवे ली तब वो ब्राह्मण बोल्या तु कुतिया क्युं होय गई हे वे स्त्री ने विचार कर्यो जो याको कहा भयो हे ये बावरो तो नहीं भयो हे तब वा ब्राह्मण ने माथे सो उपरना उतार लियो फेर वे स्त्री कुं वाकुं मनुष्य जैसी दीसवे ली... तब वा लुगई ने उपरना ओढ़ के देख्यो तब वा ब्राह्मण वाकुं गधा जैसो दिस्स्यो... तब ब्राह्मण उपरना ओढ़ के बजार में चल्यो सो कोई गधा कोई कुत्ता कोई घोड़ा कोई ऊँट ऐसे अनेक प्रकार के पशु दीसें परन्तु मनुष्य कोई न दीसें... फिर एक दुकान पर दो जने मनुष्य देखे तब विनकुं जायके पूछि जो तुम कौन से धरम में हो विनने कहि हम वैष्णव हैं और श्री गुसाईं जी के सेवक हैं ।<sup>51</sup>

### शंकर का अद्वैतवाद और बल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद

दार्शनिक क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने के लिए बल्लभाचार्य को अद्वैतवाद से झूझना पड़ा। बल्लभाचार्य ही नहीं, भक्ति मार्ग के अन्य दार्शनिक आचार्यों ने मायावाद के खंडन में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। रामानुज, मध्व, विष्णु स्वामी, निम्बार्क आदि आचार्यों ने प्रस्थान त्रयी पर अपना भाष्य शंकरभाष्य के विरोध में लिखा। इन आचार्यों का दार्शनिक अस्तित्व काफी कुछ शंकराचार्य के विरोध पर टिका है।

बल्लभाचार्य ने तीन बार विस्तृत यात्राएं की थीं। संप्रदाय में ये 'पृथ्वी-प्रदक्षिणाएं' कहलाती हैं। संप्रदायिक ग्रंथों से सूचना मिलती है कि उन्होंने प्रत्येक यात्रा में मायावादियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया।

मायावादियों से हुए शास्त्रार्थ का विवरण देना यहां संभव नहीं।<sup>52</sup> वैसे भी यह दर्शनशास्त्र का विषय है। अत्यंत सरलीकृत रूप में कहा जा सकता है कि मायावादी ब्रह्म को निराकार और निर्धर्मक जगत को मिथ्या मानते हैं, बल्लभ के मत में ब्रह्म साकार है और जगत इस साकार ब्रह्म की लीला-स्थली है। 'ब्रह्म से ही समस्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति है। अतः विद्यमान समस्त जड़ चैतन्य पदार्थ ब्रह्मरूप ही है। सदंश से जगत की उत्पत्ति है और चिदंश से जीव की उत्पत्ति है। समस्त पदार्थों का ब्रह्म ने अपनी रमण क्रीड़ा के लिए निर्माण किया है। अतः ब्रह्मरूप होते हुए भी, इनमें विविधता दृश्यमान होती है। जगत का निर्माण ब्रह्म ने लीलास्थल के लिए किया और भगवदंश से उत्पन्न होने के कारण श्री आचार्य जी ने जगत् का सत्यरूप निरूपण किया। जीव भगवान का अंश है।'<sup>53</sup>

बल्लभाचार्य अपने शुरुआती दौर में सर्वाधिक चुनौती शंकरमत-वादियों से महसूस करते थे। 'बल्लभ दिग्विजय' नामक ग्रंथ से सूचना मिलती है कि बनारस में रहकर मायावादियों का विरोध आसान काम

नहीं था । शास्त्रार्थ में शारीरिक क्षति की आशंका सदा बनी रहती थी । इसी कारण बल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट ने अपने पुत्र को ऐसे पंडितों से वाद-विवाद करने से मना कर दिया, 'जब कुटिल दुरा-ग्रही द्वेषभाव करके आवें सो बितंडावाद करें तिनके संग वाद-प्रतिवाद के विषे' रोष क्लेश बहुत होय ताते लक्ष्मणभट्ट जी भयभीत होय के श्री महाप्रभुन ते कह्यो तुम बालक हो, प्रतिदिन को ब्रह्म क्लेश आहो नहीं ताते तुम वाद-प्रतिवाद कोई सो सर्वथा मत करो ।'<sup>54</sup> पिता की आज्ञा मान बल्लभाचार्य ने प्रत्यक्ष वाद करना छोड़ दिया । लेकिन, वे प्रतिदिन एक श्लोक लिखते और उसे अपने सेवक कृष्णादास मेघन के द्वारा उसे विश्वनाथ मंदिर पर लगवा देते । एक महीने में उन्होंने तीस पत्रों की रचना की जो बाद में 'पत्रावलंबन' नामक ग्रंथ के रूप में समादृत हुआ । इन पत्रों में उन्होंने मायावाद, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, श्रौत स्मार्त सब का खंडन किया । अंत के दो श्लोक द्रष्टव्य हैं --

८ तच्च कृष्ण प्रसादेन      मायावादीनिराकृतः ।

अवेदिको महादेवस्तत्र साक्षी न संशयः      ॥

†      †

डिंडिस्तुवादिताद्वारि विश्वेशस्य मया त्रहि ।

विद्वदिभः सर्वथा श्राव्यं तेहि सन्मार्गिरक्षा काः ॥

'श्री महाप्रभु जी कहे हैं श्रीकृष्ण भगवान के प्रसाद करके हमने अवेदिक नाम वेद बाह्य जो मायावाद से निराकरण कियो वेदबाह्य के विषे साक्षी श्रीमहादेव जी हैं या में संशय कोई न जानो काहें ते जो महादेव जी ने भावदाशा ते वेद बाह्य मायावाद प्रवर्त कियो हे पुराणादिक में कथा प्रसिद्ध हे ताते वेदवेत्ता महात्मा जनन की यह अनुमति हे जो वेद बाह्य मत खण्डन करनी और जो जन वेदवेत्ता नहीं सो या बात को नहीं माने तिनकी उपेक्षा नाम त्याग हमहूँ करी हैं । ... हमने श्री विश्वनाथ के मंदिर के द्वार पर पत्र लाया है सो यह डोंडो शब्द घोष कियो हे सो या घोष को पंडित जनन ने सर्वथा श्रवण करनी पंडित जन जो हैं

सो वेदमार्ग के रक्षक हैं ताते डोडो घोष हमने कियो है ॥<sup>55</sup> वल्लभ  
दिग्विजय में उल्लिखित है कि इन पत्रों से मायावादी पंडित बहुत कुपित  
हुए । वे मरने-मारने पर उतार हो गए ।<sup>56</sup> यह वृत्तान्त लक्ष्मण भट्ट जी  
ने सुन्यो तातें मन में भयभीत होय के विचार कियो इहां के लोग आतताई  
हैं । पुत्र सो कह्यो मानें नहीं वाद को छठ छोड़ नहीं ताते अब अपने देश  
चलनो काशी के शिष्ट लोगन ते अनुमति संपत्ति करके काशी ते सकल समाज  
सहित सुखपूर्वक लक्ष्मण भट्ट जी ने यात्रा करी सो महाप्रभुन को भी यही<sup>56</sup>  
गरिष्ट अभिष्ट हती ।

बल्लभाचार्य अपनी तीनों विस्तृत यात्राओं में मायावादियों को  
पराजित करते रहे । उनकी पहली यात्रा सं० 1546 में शुरू हुई थी । उस  
समय उनकी आयु केवल 12 वर्ष की थी ।<sup>57</sup> यह यात्रा सात वर्ष में पूरी  
हुई । विद्यानगर के शास्त्रार्थ में उन्होंने शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन करते  
हुए मायावाद का खण्डन किया । इसी यात्रा के दौरान सं० 1550 की  
श्रावण शुक्ल एकादशी को उन्होंने गोकुल के ठकुरानी घाट पर श्रीमद्-  
भागवत का साप्ताहिक पारायण किया । उसी समय से उन्होंने अपने  
शिष्यों को 'ब्रह्म संबंध मंत्र' की दीक्षा देना प्रारंभ किया ।<sup>58</sup>

द्वितीय यात्रा सं० 1554 में शुरू हुई । इस यात्रा में उन्होंने प्रेम  
लक्षणा भक्ति का व्यापक प्रचार किया । यह यात्रा 1558 वि० में  
पूरी हुई । उनकी तृतीय यात्रा (संवत् 1558-1566) मत प्रचार की दृष्टि  
से बहुत महत्वपूर्ण है । दक्षिण देशीय महाराज नृसिंह वर्मा के सेनापति  
राजा कृष्णदेव राय ने विद्यानगर में एक विशाल पंडित सभा का आयोजन  
किया था, इसमें विविध संप्रदायों के विद्वान अपने सिद्धान्तों की श्रेष्ठता  
प्रमाणित कर रहे थे । रामानुज संप्रदाय में श्री हनुमंताचार्य, माध्व  
संप्रदाय में श्री व्यास तीर्थ, निम्बार्क संप्रदाय में केशव भट्ट कश्मीरी वैष्णव  
संप्रदायों के प्रतिनिधि थे । अवैष्णवों के प्रमुख वक्ता शंकर मतानुयायी  
विद्यातीर्थ थे ।<sup>59</sup> दोनों पक्षों में प्रबल वाद-विवाद हुआ । अंत में

वैष्णव पक्ष गिरने लगा । बल्लभाचार्य भी उस शास्त्रार्थ का समाचार सुनकर वहाँ गए । उन्होंने वैष्णव पक्ष के समर्थन में ऐसा प्रकांड पांडित्य प्रदर्शित किया कि गिरता हुआ वैष्णव पक्ष प्रबल हो गया और अद्वैत-वादियों तथा अवैष्णवों को पराजय उठानी पड़ी ।<sup>60</sup> वैष्णवों की विजय का श्रेष्ठ बल्लभाचार्य को मिला ।

अब तक बल्लभ का कोई दार्शनिक संप्रदाय नहीं था । इस विजय से उन्हें आचार्य की पदवी मिलनी थी, इसके लिए उनका किसी संप्रदाय से जुड़ा होना ज़रूरी था । बल्लभ के सामने दो विकल्प थे या तो वे किसी नए संप्रदाय की घोषणा करें या परंपरागत संप्रदायों से किसी एक का चुनाव करें । 'पद्मपुराण' में संसारी जीवों के उद्धार के लिए चार संप्रदायों - श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनकादि का उल्लेख है :

संप्रदाय विहीनाये मंत्रास्ते निष्फला मताः ।

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः संप्रदायिनः ॥

श्री ब्रह्म रुद्र सनका वैष्णवा द्वातिपावनाः ।

चत्वारस्ते क्लृप्ताभ्याः संप्रदाय प्रवर्तकाः ॥<sup>61</sup>

बल्लभाचार्य की विद्वत्ता से प्रभावित होकर माध्य संप्रदाय के आचार्य व्यास तीर्थ उनको अपने संप्रदाय का आचार्य बनाना चाहते थे । विष्णु स्वामी संप्रदाय की गद्दी उस समय खाली थी । बल्लभाचार्य को यही स्वीकार्य लगा, 'जो हमको भगवदाज्ञा है विष्णु स्वामी संप्रदाय संप्रति उच्छिन्न सदृश्य है आचार्य के अभाव करके, ताको प्रकाश करना'।<sup>62</sup> 'राजा कृष्णदेव राय ने शास्त्रार्थ में विजयी होने के कारण बल्लभाचार्य जी का कनकाभिषेक किया और विभिन्न वैष्णवाचार्यों ने उनको विष्णु स्वामी संप्रदाय का आचार्य घोषित करते हुए 'आचार्य चक्र ब्रह्ममणि जगद्गुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु' की उपाधि से सम्मानित किया । तभी से वे लोक में 'श्री आचार्य जी महाप्रभु' के नाम से विख्यात हुए ।'<sup>63</sup> श्री आचार्य जी महाप्रभु के कनकाभिषेक का समय प्रभुदयाल मीतल ने

संवत् 1565 निर्धारित किया है ।<sup>64</sup>

पुष्टिमार्ग के संस्कृत ग्रंथों में ही शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन मिलता है । सामान्य वैष्णवों के पठनार्थ ब्रजभाषा ग्रंथ है इनमें इस विवाद को शामिल करने की उपयोगिता नहीं समझी गई । अपने पिता बल्लभाचार्य का स्वल्प निरूपित करने के उद्देश्य से विठ्ठलनाथ ने 'सर्वोत्तम स्तोत्र' की रचना की थी । कुल 35 श्लोकों वाले इस स्तोत्र में बल्लभाचार्य का दो बार इस तरह निरूपण है :

(क) मायावाद निराकर्ता सर्ववादि निरासकृतम् । (श्लोक संख्या 9)

(ख) मायावादस्य तूलाग्निः ब्रह्मवाद निरूपकः (श्लोक संख्या 31)<sup>65</sup>

(आचार्य जी मायावादी तूल के लिए अग्नि स्वरूप हैं ।)

बल्लभ मत शंकर वैदान्त/मायावाद को वेदविरोधी मानता है । मायावाद के प्रति उसका रवैया सासा कठोर है । कैसे, अद्वैतवादियों के प्रति समन्वयवादी तुलसीदास भी नरम रुख नहीं रखते । जिस गाली-गलौज की भाषा में वे निर्गुण मत तथा शैव मत को याद करते हैं, उसी तरह शंकर मत को भी :

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।

कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ।

तेह अभेदवादी ग्यानी नर । देखा में चरित्र कलि जुगकर ॥

आपु गए अरु तिन्हहुं घालहिं । जे कहुं सत मारग प्रतिपालहिं ।

कल्प-कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दुषाहिं श्रुतिकरि तरका ॥<sup>66</sup>

अद्वैतवादियों से बहुतों का विरोध था लेकिन जितना भयंकर शाप तुलसी ने उन्हें दिया है, वैसी हिम्मत किसी और ने नहीं दिखाई ।

वार्ता साहित्य में मायावाद का (संभवतः) एकमात्र उल्लेख 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में है, 'बहुरबद्रिकाश्रम ते आगे पधारे

जहाँ जीव की गम्य नाहीं है तहाँ वेदव्यास जी को स्थान है... तब वेद व्यास जी साम्ह आये सो श्री आचार्य जी महाप्रभुन को अपने धाम में ले आये पाछे वेदव्यास जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों कह्यो जो तुमने श्रीभागवत जी की टीका कीनी है सो मोको सुनावो तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने जुगल गीत के अध्याय को एक श्लोक कह्यो ॥ या श्लोक को व्याख्यान कह्यो सो तीन दिन में सम्पूर्ण भयो तब वेदव्यास जी ने बिनती करी जो मैं या भागवत के व्याख्यान की अब धारना करि सकत नाहीं अब क्षमा करौ पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने वेदव्यास जी सों कह्यो जो तुम वेदांत के ऐसे सूत्र कहा कीये जो मायावाद पर अर्थ लाग्यो तब व्यास जी ने कह्यो जो मैं कहा कहां मोको आशा ही ऐसी हुती जो ऐसे अर्थ करियों तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने कही जो मैं ब्रह्मवाद पर अर्थ किया है सो व्यास जी को सुनायो सो व्यास जी सुनकर बहुत प्रसन्न भये ॥<sup>67</sup>

व्यास रचित ब्रह्म सूत्रों पर चैतन्य संप्रदाय के अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ 'चैतन्य चरितामृत' में विचार किया गया है। वहाँ भी चिन्ता के केन्द्र में व्यास सूत्रों में शांकर भाष्य ही है। बल्लभ चैतन्य दोनों संप्रदायों की एक ही चिन्ता उल्लेखनीय है, 'उपनिषदों में जो अर्थ वर्णित है, उन्हीं को व्यास ने अपने सूत्रों में कहा है। परन्तु लोग उन मुख्यार्थों को छोड़कर गौणार्थ की कल्पना करते हैं और अभिधा को छोड़ कर लक्षणा लेते हैं। इस कारण सूत्रों का महत्व नष्ट हो जाता है -

मुख्यार्थ छाड़िया कर गौणार्थ कल्पना ।

अभिधावृत्ति छाड़िकर शब्देर लक्षणा ॥

(चै० च०, मध्यलीला, परिच्छेद-6)

जीवों के निस्तार के लिए व्यास ने वेदान्त सूत्रों की रचना की थी परन्तु उन सूत्रों का मायावादी भाष्य अत्यंत विनाशकारी है। परिणामवाद तो व्यास सूत्रों के अनुकूल है परन्तु कल्पना करके विवर्तवाद



स्थापित किया जाता है :

जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास ।  
 मायावादी भाष्य शुनि ले ह्य सर्वनाश॥  
 परिणामवाद व्यासेर सूत्रेर सम्मत ।  
 किवर्तवाद स्थापिया कै कल्पना करिया ॥ (वही)

वेदान्त सूत्रों का इस प्रकार भाष्य आखिर शंकराचार्य ने किया ही क्यों ? चैतन्य देव कहते हैं कि इसमें उनका दोष नहीं है । उन्हें ईश्वर ने ही आज्ञा दी थी जिससे उन्होंने कल्पना करके नास्तिक शास्त्र बनाये -

आचार्येर दोष नाहि ईश्वर आज्ञा हेल ।  
 अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल ॥<sup>68</sup>

### पुष्टिमार्ग और चैतन्य संप्रदाय

कृष्ण चैतन्य (सन् 1485-1533 ई०) तथा बल्लभाचार्य (सन् 1478-1530 ई०) समकालीन थे । बल्लभाचार्य ने अपना मत विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर विकसित किया था, चैतन्य मत का विकास माध्व संप्रदाय के अंतर्गत हुआ । इसीलिए इसे 'माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय' भी कहते हैं । माध्वाचार्य के बाद द्वैतवाद के अन्यतम प्रचारक चैतन्यदेव ही हुए हैं । द्वैतवाद का विकसित रूप चैतन्य सिद्धान्त है । इसमें दार्शनिकता की अपेक्षा उपासना और भक्ति भावना प्रधान है ।

चैतन्य सिद्धान्त की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न श्लोक में व्यक्त हुई है :

आराध्यो भगवान् ब्रजेश्वरस्तदाय वृंदावन -  
 रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवगेण या कल्पिता ।

श्रीमद्भागवतं प्रणामणमलं प्रेमा पुमर्थो महान -

श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रा ग्रहो ना परः ॥

(भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य हैं और उनका धाम वृंदावन है । उनकी आराधना का आदर्श ब्रजगोपियों की उपासना है । श्रीमद्भागवत प्रमाण ग्रंथ है और प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है ।)<sup>69</sup>

प्रस्तुत श्लोक का मिलान बल्लभ संप्रदाय के इस श्लोक से करना प्रासंगिक है :

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेकोदेवोदेवकीपुत्रएव

मन्त्रोप्येकः तस्यनामानियानि कर्माप्येकंतस्यदेवस्यसेवा ।<sup>70</sup>

शंकराचार्य का सर्वाधिक विरोध करने वाले माध्व संप्रदाय में विष्णु को सर्वप्रमुख देवता माना गया था । इस संप्रदाय में विष्णु के सभी अवतार समान महत्त्व रखते हैं । भक्त अपने मनोनुकूल एकाधिक अवतारों की पूजा-अर्चना कर सकता है । यह प्रश्न विचारणीय है कि बल्लभ और चैतन्य-दोनों भक्ति संप्रदायों का आत्यंतिक बल 'एक' पर क्यों है ।

प्रायः सभी वैष्णवाचार्यों ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए दार्शनिक ग्रंथ लिखे । चैतन्य महाप्रभु ने इस परंपरा का निर्वहण नहीं किया । चैतन्य मत के दार्शनिक सूत्रों का प्रणयन तथा प्रचार वृंदावन के कृष्ण गोस्वामियों ने किया : सनातन, रूप, गोपालभट्ट, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट तथा जीव गोस्वामी । प्रमुख रचनाओं में सनातन गोस्वामी रचित 'हरिभक्ति विलास', 'वृहत् भागवतामृत', रूपगोस्वामी रचित 'भक्ति-रसामृत-सिंधु', 'उज्ज्वल नीलमणि', 'लघु भागवतामृत' आदि परिगणित हैं ।

पुष्टि संप्रदायी ग्रंथों से पता चलता है कि गौरांग प्रभु और महाप्रभु बल्लभाचार्य एक दूसरे को भली भाँति जानते ही न थे, उनमें एकाधिक बार मेल मिलाप एवं संवाद भी हुआ था ।<sup>71</sup> 'बल्लभ दिग्विजय' के अनुसार एक बार जब बल्लभाचार्य यात्रा कर रहे थे, तब उनकी भेंट

पुरुषोत्तम क्षेत्र जगदीश धाम (जगन्नाथ पुरी) में कृष्ण चैतन्य से हुई थी, 'तहाँ मारग में श्रीकृष्ण चैतन्य तें मिलाप भयो इनते आप को स्नेह बहुत हुतो तातें स्नेह रीतते श्रीकृष्ण चैतन्य ने हास्य प्रसंग में कह्यो आप को मार्ग तो पुष्टि है सेवक दुर्बल क्यों हैं ताको उत्तर आपने दियो हमारे मार्ग में यह बात विरुद्ध धर्माश्रय बोधक है फिर मार्ग हमारे विप्रयोग ताप क्लेश ते पुष्ट है ताते हमारे मार्ग में जो आवै है सो दुर्बल होय जाय है और तुमने अपने मार्ग में रस प्रगट राख्यो है ताते रसाभास है हमारे मार्ग में रस गुप्त है, ताते भक्तन को संयोग में भी विप्रयोग रहे हैं ... फिर कृष्ण चैतन्य जी ने कह्यो हमने अपने मार्ग में तो प्रतिदिन एक लक्ष भगन्नाम को आग्रह राख्यो है तापे आपने कह्यो हमारे तो स्नेह आग्रह है जो एक क्षण भी भगन्नाम को विस्मृति होय तो तत्क्षण आसुरावेश होय ।।' <sup>72</sup> महाप्रभु बल्लभ की जगन्नाथ जी से वार्ता में भी श्रीकृष्ण चैतन्य का प्रसंग आया है, 'श्री जगदीश ने कह्यो तुमने जो सेवामार्ग प्रगट कियो सो हमको बहुत प्रिय है अब अपने वंश द्वारा सेवामार्ग को प्रचार-विस्तार करो सो सुनके आपने तथास्तु कह्यो फिर जगदीश ने कह्यो कृष्ण प्रेमावृत ग्रंथ जो तुमने प्रगट कियो है ताके जिज्ञासु हमारे भक्त कृष्ण चैतन्य हैं ताको उत्तर आपने दियो इनते हमारी भी मित्रता है ग्रंथ अवश्य देंगे ।।' <sup>73</sup>

अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में कृष्ण चैतन्य जगन्नाथपुरी में ही रहने लगे थे । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में उल्लेख है कि वे बल्लभाचार्य के कुशल-क्षेम के बारे में लोगों से पूछा करते थे । प्रभुदयाल जलोटा आचार्य जी महाप्रभु के आत्मीय सेवक थे । वे भगवत्सेवा में तल्लीन रहने के कारण प्रायः घर से बाहर नहीं निकलते थे । एक बार रूप सनातन आदि चैतन्य संप्रदायियों ने बल्लभाचार्य से पूछा, 'यह वैष्णव कौन है तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो ये हमारे सेवक हैं तब रूपसनातन ने कह्यो जो ऐसे दुर्लभ क्यों रहत हैं तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो मैं इन को बहुत बरजै जो तुम या मार्ग में मति परो परि इन मेरो कह्यो न

मान्यो ताको फल यह भोगत है ... पाछे कितनेक दिन में रूपसनातन के साथ को एक वैष्णव श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को गयो तहां कृष्ण-चैतन्य मिले तब कृष्ण चैतन्य ने महाप्रभुन के कुशल समाचार पूछे और कह्यो जो नीके हैं कहा मिले कहा करत पाये हुते तब वा वैष्णव ने कृष्ण चैतन्य सो कह्यो ... श्री आचार्य जी महाप्रभुन के दर्शन को रूप सनातन हूं गर हुते श्री आचार्य जी महाप्रभुन सो रूप सनातन ने और वैष्णवन की बात पूछी जो ये ऐसे दुर्लभ क्यों रहत हैं तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कही जो में इनको बहुत बरजे परि इन मेरो कह्यो न मान्यो ताको फल ये भोगत है सो यह बात सुनि के कृष्ण चैतन्य को मूच्छा आई... पाछे सावधान भये, तब फेरि पूछी जो तुमने कहा बात कही तब वा वैष्णव ने फेरि कह्यो जो श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने कह्यो जो या मार्ग में मति परो तब कृष्ण चैतन्य को फेरि मूच्छा आई सो दोय मुहूर्त लों रही पाछे फेरि सावधान भये ऐसे तीन बार पूछी सो तीनों बार मूच्छा आई ... जो यह बात ऐसी है जो केवल विरही होय सो जाने रूप सनातन कहा जाने ।।<sup>74</sup> इस प्रसंग का एक निहितार्थ यह है कि बल्लभाचार्य के सेवक न सिर्फ प्रेम लक्षणा भक्ति जानते हैं, उसमें डूबे भी रहते हैं जबकि कृष्ण चैतन्य के सबसे महत्वपूर्ण सेवक अपने गुरु के 'भाववेश्वादे'<sup>75</sup> को समझते तक नहीं ।

जगन्नाथ पुरी के पास दो घनिष्ठ मित्र रहते थे - सुंदरदास और माधोदास । सुंदरदास बल्लभाचार्य के सेवक थे माधोदास चैतन्य महाप्रभु के । दोनों मित्र अपने-अपने स्वामी आचार्यों की बढाई करते रहते । एक दिन बल्लभाचार्य सुंदरदास के घर पधारे, उहां रसोई करिके श्रीठाकुर जी को भोग समप्यो पाछे भोग सरायो ... तब माधोदास ने सुंदरदास से कही जो तेरे गुरु के हाथ ते श्रीठाकुर जी आरोगे नाहीं और में श्री ठाकुर जी को आरोगावत हों सो एकहू ग्रास रहत नाहीं ।<sup>76</sup> यह बात सुंदरदास ने महाप्रभु को बताई । महाप्रभु ने कहा कि मैं माधोदास के घर जाकर सुद ही देखूंगा । अगले दिन भोग के समय बल्लभाचार्य माधोदास के मंदिर गए । पता चला कि एक प्रेत है जो रोज आकर सारा भोजन

सा जाता है । महाप्रभु के डर से उस दिन वह प्रेत नहीं आया । माधोदास ने जाकर देखा तो थाली ज्यों की त्यों भरी रखी है । तब माधोदास ने कह्यो जो तुम्हारे आगे मेरे ठाकुर जी आरोगे नाहीं ऐसे सामान्य वचन बहुत बोले परि श्री आचार्य जी महाप्रभु आप चुप करि रहे कछु बोले नाहीं तब माधोदास रात्रि में सोयी तब श्री ठाकुर जी के अनुचर आये सो बहुत मार्यो और साट ते औधो पटक मार्यो तब माधोदास ने उनसों कह्यो जो तुम मोकी काहे को मारत हो तब जगन्नाथ राय जी ने कह्यो जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों ऐसी सामान्य वचन क्यों बोली मैं तेरे यहां कब आरोगत हों ।।<sup>77</sup> जैसा कि होना था अगले दिन माधोदास ने जाकर बल्लभाचार्य से क्षमा मांगी और उनका सेवकत्व ग्रहण किया ।

चैतन्य संप्रदायी सेवकों को बल्लभ संप्रदाय में लाने की कोशिशें लगातार चलती रहती थीं । हो सकता है, ऐसी कोशिशें चैतन्य संप्रदायियों की तरफ से भी होती रही हों । 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' में एक प्रसंग है : 'सो सगुणदास रूप सनातन के सेवक हते और ब्रज में फिरते हते और श्री गोकुलजी गये और श्री गुसाईं जी ठकुरानी घाट पर विराजते हते तब सगुणदास ने दर्शन किए सो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये तब श्री गुसाईं जी बोले सगुणदास आगे आवो तब सगुणदास ने अपने मन में विचार्यो मोकुं कोई दिन आपने देख्यो नहीं और जान गये हैं जासुं ये साक्षात् नंद कुमार हैं इनकी शरणा जाउं तो ठीक तब सगुणदास ने विनती करी महाराज मोकुं शरणा लेउ तब गुसाईं जी ने आज्ञा करी न्हाय आवो... तब श्री गुसाईं जी ने कृपा करके नाम निवेदन कराये ।।' <sup>78</sup>

#### ब्रज के अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदाय

---

ब्रज में इन संप्रदायों के अलावा मध्यकाल में कुछ अन्य संप्रदाय भी बने । इन संप्रदायों में राधावल्लभ संप्रदाय और हरिदासी संप्रदाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं । बल्लभ संप्रदायी ग्रंथों में इन संप्रदायों का कोई

नहीं मिलता । संभवतः इन्होंने बल्लभ मत के सामने किसी प्रकार की कोई चुनौती नहीं पेश की थी । मथुरा में इन संप्रदायों की गद्दियाँ आज भी चल रही हैं ।

राधावल्लभ और हरिदासी संप्रदायों के प्रवर्तकों ने अपना दार्शनिक मतवाद नहीं विकसित किया । उन्होंने केवल साधन मोक्ष अथवा भक्ति और पूजा विधि पर ही अधिक जोर दिया, दार्शनिक सिद्धान्त पक्ष में उन्होंने सकेत मात्र ही किया था, यहाँ तक कि उनके समकालीन अनुयायी भक्तों ने भी इस विषय में बहुत ही थोड़ा लिखा । इसलिए ऐसे संप्रदायों के विषय में यह निश्चय पूर्वक कहना कि ये अपने आरंभिक काल में अमुक वेदान्त (दार्शनिकवाद) के अनुयायी थे, कठिन है ।<sup>79</sup> यहाँ इन संप्रदायों के बारे में अत्यंत संक्षेप में लिखा जा रहा है :

### राधावल्लभ संप्रदाय

राधावल्लभ संप्रदाय को कुछ विद्वान निम्बार्क मत की वृंदावनी शाखा मानते हैं और कुछ चैतन्य मत का । लेकिन संप्रदाय की साधना पद्धति इसे एक स्वतंत्र संप्रदाय मानने के लिए बाध्य करती है ।<sup>80</sup> इस संप्रदाय के प्रणेता हितहरिवंश जी थे । ये श्रीकृष्ण की मुरली के अवतार माने जाते हैं । इनका जन्म सं० 1559 विक्रमी में हुआ था । एक बार जब वे वृंदावन को आ रहे थे तो एक ब्राह्मण ने इनको अपनी दो कन्याएँ और एक कृष्ण मूर्ति दी । इन्होंने वृंदावन में आकर इस राधावल्लभ की मूर्ति की स्थापना की और एक मंदिर बनवाया । यहीं ये अपने आराध्य देव राधावल्लभ की भक्ति और पूजा करने लगे । संवत् 1591 वि० में इस मंदिर का प्रथम 'पट महोत्सव' हुआ और कुछ समय बाद इन्होंने अपनी चलाई हुई कृष्ण भक्ति का प्रचार करना आरंभ किया ।

हितहरिवंश के समकालीन नाभादास ने इनकी साधना पद्धति को दुरुह बताया है । नाभादास का कहना है कि जो इनके शिष्य होकर मार्ग

के अनुगामी बन जायं वे भले ही जान लें।<sup>81</sup> हितहरिवंश ने कर्म और ज्ञान के साधनों का खण्डन कर प्रेम भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने राधाकृष्ण की युगल उपासना का उपदेश दिया किन्तु प्रधानता राधा की है। 'हरिते प्रथम पूजियत राधा' आराध्या से मधुर संबंध रखनेवाले कृष्ण उन्हें प्रिय थे। राधा कृष्ण की आराध्या हैं और प्रेम स्वरूपा हैं। उनके प्रेम में पड़कर श्याम सुंदर चारों ओर से झूटने सिमट गए हैं कि सृष्टि रचना और पालन की बात तो दूर वे नारद आदि भक्तों की भी भूल गए हैं।<sup>82</sup>

संप्रदाय में 'तत्सुख सुखित्व भाव' को बड़ा महत्त्व दिया गया है।<sup>83</sup> राधा अर्थात् स्वामिनीजू जो कुछ करती हैं वह कृष्ण को सुख पहुंचाने हेतु तथा जो कुछ कृष्ण करते हैं वह सदैव राधा को सुख पहुंचाने हेतु होता है। श्रीकृष्ण राधा के साथ विहार में रत रहते हैं। उनका यह विहार नित्य है, अनंत है। वे नित्य किशोर हैं। राधा न स्वकीया हैं, न परकीया। हितहरिवंश जी के अनुसार स्वकीया में मिलन है विरह नहीं। उधर परकीया में विरह है पर मिलन का पूर्ण सुख नहीं इसलिए प्रेम के साम्राज्य में राधा स्वकीया हैं और परकीया भी।

राधावल्लभ संप्रदाय सहचरी भाव को साधक के लिए ज़रूरी ठहराता है। राधाकृष्ण की निकुंज लीला में केवल सहचरीगण को ही प्रवेश करने का अधिकार है। भक्त को राधाकृष्ण का नैकट्य प्राप्त करने के लिए सहचरी बनना पड़ता है। हितहरिवंश जी ने रास को अत्यंत महत्त्व दिया है। इस रासलीला के लिए राधावल्लभ संप्रदाय किसी गोलोक की कल्पना नहीं करता, वह तो साक्षात् वृंदावन में होती है।

हितहरिवंश के लिखे हुए दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं - 'राधासुधानिधि', 'हितचौरासी' या 'चौरासी पद'। पहला संस्कृत में, दूसरा ग्रंथ ब्रज भाषा में है। इनमें हितजी की युगल उपासना तथा राधा उपासना का भाव पल्लवित होता है। हितजी के प्रिय शिष्य व्यासदेव थे। ब्रजभाषा में प्रकाशित इनकी एकमात्र कृति 'व्यासवाणी' में 700 पदों का संग्रह है।

व्यास जी के बाद ध्रुवदास जी राधावल्लभ मत के विशेष प्रचारक हुए । ध्रुवदास जी द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 40 से अधिक है । इनमें 'वृंदावन सत', 'सिंगार सत', 'रस रत्नावली', 'नैह मंजरी', 'रहस्य मंजरी' प्रमुख हैं ।

हरिवंशी संप्रदाय वस्तुतः रस संप्रदाय है । साधक प्रेमाभूत मूर्ति श्री राधा तथा लालजी के नित्य मिलन के अक्षर पर तन्मय भाव से उन की सुचारु सेवा में लगा रहता है । यही उसके जीवन का चरम लक्ष्य है । उसकी समस्त सांसारिक पहचान नगण्य हो जाती है । व्यास जी अपने एक पद में कहते हैं :

रसिक अनन्य हमारी जाति ।

कुलदेवी राधा बरसानो खैरो बृजवासिन सों पाति ॥

गौत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा-सिखंडि हरिमंदिर भाल।

हरिगुन नाम वेद धुनि सुनियत, मूज पखावज कुसकर ताल ॥<sup>84</sup>

### हरिदासी अथवा सखी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास हैं । ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय के सिद्धान्तों का अनुसरण कर अपना संप्रदाय चलाया किन्तु इन दोनों संप्रदायों में बड़ा मौलिक भेद है । इसमें सखीभाव<sup>85</sup> से उपासना करने का विधान है जो निम्बार्क संप्रदाय में गृहीत नहीं होता । स्वामी जी की परंपरा के शिष्य भगवत रसिक ने साफ तौर पर लिखा है कि उनका संप्रदाय किसी और संप्रदाय से संबद्ध नहीं है - नहि विशिष्टाद्वैत हरि, नहि हरिद्वैताद्वैत, बधि नही मतवाद में ईश्वर इच्छा द्वैत । 'भक्तमाल' में नाभादास ने हरिदास जी और उनकी उपासना पद्धति के बारे में लिखा है, 'स्वामी हरिदास जी 'रसिक' नाम की छाप से प्रसिद्ध हुए । इन्होंने आसधीर जी के नाम को प्रकाशित किया । आपकी प्रेम पद्धति का नियम राधाकृष्ण युगल पूजा का था । ये कुंजविहारी कृष्ण का नाम सदैव जपा करते थे । राधाकृष्ण के आनंद विहार का अवलोकन



सदा सखी भाव से किया करते थे और इसी भाव से युगल कैल के रस को लूटा करते थे । गान विद्या में ये गंधर्व थे और अपने गान से, सखी की तरह सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को तुष्ट किया करते थे । भगवान का उत्तम भोग लगाते थे और उसे बंदर और मोरों को खिलाया करते थे । ये इतने प्रसिद्ध और उच्च कोटि के महात्मा थे कि दर्शनों के लिए राजा लोग भी इनके द्वार पर खड़े रहते थे ।<sup>86</sup>

हरिदासी संप्रदाय में कृष्ण को नित्य विहारी माना जाता है । नित्य विहारी का महत्व ब्रह्म से भी अधिक है । भक्तों की दृष्टि में ब्रह्म नित्य विहारी की आभा मात्र है । इन कृष्ण का जन्म कभी नहीं हुआ और न इनकी बाललीलाएं ही गोकुल में दृष्टिगोचर हुईं । मथुरा और द्वारिका से इन्हें कोई काम नहीं । रसोपासनावाले ऐश्वर्य रूप के प्रति आकर्षित नहीं होते । वे वृंदावन में माधुर्य भाव में ही दिन-रात डूबे रहते हैं ।

स्वामी हरिदास को संप्रदाय में ललित सखी का अवतार माना जाता है । उनकी शिष्य परंपरा में आगे चलकर उन्हें प्रिया प्रियतम के समान माना गया । संप्रदाय के रसिक भक्तों ने स्वामी हरिदास को राधाकृष्ण से भी बढ़कर उपास्य माना । कहा गया कि स्वामी हरिदास जी का भजन करने से ही नित्य विहार की प्राप्ति और प्रिया प्रियतम की प्रीति की प्राप्ति होती है । यहां तक कहा गया कि लाख बार 'हरि' 'हरि' जपने से लाड़िली उतनी प्रसन्न नहीं होती जितनी एक बार हरिदास नाम उच्चारण करने से प्रसन्न होती है । जो हरिदास जी का भजन करते हैं उन्हें वे स्वयं वृंदावन का वास प्रदान करती हैं ।<sup>87</sup>

हरिदास जी तथा उनके संप्रदाय के अन्य आचार्यों ने ब्रजभाषा में ही रचना की है । स्वामी हरिदास के छोटे-छोटे दो ग्रंथ हैं - 'साधारण सिद्धांत', 'रस के पद' । इस संप्रदाय के प्रसिद्ध कवियों में श्री विहारिनीदास, भक्त रसिक तथा ललित किशोरी मुख्य हैं ।

इन संप्रदायों पर विहंगम दृष्टि डालने से यह तथ्य सामने आता है कि संप्रदायों के आचार्य अंततः अवतार मान लिए जाते हैं। कालान्तर में संप्रदाय के लिए वे ही इष्ट हो जाते हैं। इस बदलाव से संप्रदाय की मनोरचना बहुत गहरे में प्रभावित होती है। संप्रदाय का उसके अनुयायियों से रिश्ता बदल जाता है। समर्पण और भक्ति मूल इष्टदेव के प्रति न होकर संप्रदाय की गद्दी पर बैठे आचार्य के लिए हो जाती है। संप्रदाय का संगठनात्मक ढांचा लचीला नहीं रह जाता है।

प्रस्तुत अध्याय में हमने बल्लभ संप्रदाय का अन्य संप्रदायों से संबंधों की खानबीन की है। इस खानबीन से बल्लभ संप्रदाय के (आंतरिक) सत्ता तंत्र का कुछ खुलासा होता है। संप्रदाय अपने 'सेवकों' से क्या अपेक्षाएं रखता है, 'अन्याश्रय' का क्या हश्र होता है, 'पूर्ण समर्पण' के क्या फलितार्थ हैं, आदर्श वैष्णव की अवधारणा क्या है और शूद्र-स्त्री की संप्रदाय में क्या स्थिति है<sup>88</sup> जैसे मुद्दों को ध्यान में रखते हुए इस सत्ता तंत्र को समझने की कुछ और कोशिश की जास्ती।

#### संदर्भ

1. अष्टकाप और बल्लभ संप्रदाय, भाग 1, दीनदयालु गुप्त, पृ० 40
2. हीरक जयंती ग्रंथ, साहित्य मंडल नाथद्वारा में संकलित भारतेन्दु का लेख 'वैष्णवता और भारतवर्ष', प्रधान संपादक भगवती प्रसाद देवपुरा, 1997, पृ० 169। इस लेख में भारतेन्दु ने वैष्णव मत को भारत का सबसे प्राचीन और प्रकृत मत बताया है। इसी में वे बल्लभ संप्रदायी गुसाईयों की आचरण भ्रष्टता की चर्चा करते हैं।
3. 16वीं सदी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, रत्नकुमारी, भारती साहित्य मंदिर, नई दिल्ली, 1956, पृ० 26।

लेखिका ने बताया है कि जो ब्राह्मण गौरांग देव को नहीं मानते थे उन्हें चैतन्य भागवतकार वृंदावनदास ने राक्षस तक कह दिया है ।

4. कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय, गौवर्धननाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, संवत् 2020, पृ० 145
5. वही, पृ० 141
6. परमानंद सागर, पद संख्या 374
7. वही, पद संख्या 203
8. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, पृ० 369
9. चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृ० 123
10. दो सौ बावन...., पृ० 54
11. चौरासी वैष्णव ...., पृ० 31
12. वही, पृ० 32
13. दो सौ बावन...., पृ० 19
14. वही, पृ० 3
15. वही, पृ० 397
16. वही, पृ० 122
17. वही, पृ० 178
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ० रामचन्द्र शुक्ल,
19. अष्टहाप परिचय, मीतल प्रभुदयाल, मथुरा, सं० 2006, पृ० 304
20. अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1970, पृ० 256
21. अष्टहाप परिचय, मीतल, पृ० 304-305
22. प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, अष्टहाप, संपादक पौ० कण्ठमणि शास्त्री, कांकरोली, संवत् 2009, पृ० 566
23. वही, पृ० 567-68
24. वही, पृ० 574

25. वही, पृ० 578-79
26. वही, पृ० 579
27. चौरासी वैष्णवन..., पृ० 49-51
28. वही, पृ० 51-53
29. संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।  
सो नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महं बास ॥

मानस, लंका कांड, दोहा संख्या 2

30. उत्तर कांड, दोहा संख्या 60 के अन्तर्गत
31. वही, दोहा संख्या 96-106
32. वही, दोहा 107
33. दो सो बावन..., पृ० 184-85
34. वही, पृ० 186
35. वही, पृ० 189
36. वही, पृ० 231
37. वही, पृ० 404
38. वही, पृ० 376
39. चौरासी वैष्णवन..., पृ० 315
40. वही, पृ० 317-18
41. वही, पृ० 319
42. दो सो बावन..., पृ० 110
43. वही, पृ० 157
44. वही, पृ० 158
45. वही, पृ० 227
46. वही, पृ० 228
47. वही, पृ० 263-64
48. वही, पृ० 281-82
49. वही, पृ० 324
50. वही, पृ० 325
51. वही, पृ० 173-74

52. मायावाद का खंडन करके बल्लभाचार्य ने किस प्रकार अपने ब्रह्मवाद की स्थापना की, उस ब्रह्मवाद का दार्शनिक स्वरूप क्या था इसकी विस्तृत जानकारी बल्लभाचार्य के संस्कृत ग्रंथों, विद्वत्सनाथ के 'विद्वन्महने', 'निर्णय ग्रंथ' तथा संप्रदाय के विद्वान श्री यदुनाथ जी कृत 'बल्लभ दिग्विजय' आदि ग्रंथों में प्राप्त होती है। आधुनिक कृतियों में सुरेन्द्र नाथ दासगुप्त लिखित 'भारतीय दर्शन का इतिहास' भाग-4 उक्त दार्शनिक विवाद को समझने में विशेष सहायक है।
53. श्री सर्वोत्तम स्तोत्र-सचित्र-व्याख्या (हिंदी संस्करण), प्रकाशक विद्या विभाग कांकरोली, राजस्थान, 2054 वि०, पृ० 102
54. श्रीबल्लभ दिग्विजय - श्री यदुनाथ जी, भाषानुवाद बाबू सीता राम वर्मा, चंद्रप्रभा यंत्रालय, बनारस, तीसरा संस्करण 1887, पृ० 23
55. वही, पृ० 24-25
56. वही, पृ० 25
57. अष्टहाप परिचय - प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, संवत् 2006, पृ० 7
58. वही
59. वही, पृ० 5 तथा बल्लभ दिग्विजय, पृ० 27
60. वही, पृ० 5 - मायावादियों की पराजय को 'बल्लभ दिग्विजय' में इस तरह याद किया गया है :

उत्थाय हृदिवि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथः।

बाल वैधव्य दग्धानां कुलस्त्रीणां कुवाविव ॥

दोहा अनुवाद

जिमि सुमनोरथ निधन उर उपजहिं अरु बिनसात।

सिसु विधवाकुल वधुन कुव उठत आप ढर जात ॥

व० दि०, पृ० 37

61. बल्लभ दिग्विजय, पृ० 28

62. वही, पृ० 39
63. अष्टकाप परिचय, पृ० 6
64. वही, पृ० 7
65. श्री सर्वोत्तम स्तोत्र, पृ० 10 व 101
66. मानस, उत्तर कांड, 99-100
67. चौरासी वैष्णवन, पृ० 9-10
68. 16वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णाव कवि, तुलनात्मक अध्ययन, रत्नकुमारी, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, संस्करण 1956, पृ० 167
69. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा, 1962, पृ० 110
70. बल्लभ दिग्विजय, पृ० 90
71. अष्टकाप एवं बल्लभ संप्रदाय, भाग-एक, दीनदयाल गुप्त, पृ० 56
72. बल्लभ दिग्विजय, पृ० 86-87
73. वही, पृ० 88
74. चौरासी वैष्णवन, पृ० 91-92
75. 'भाववेश्वादे' नामक यह पद सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त से ग्रहीत है - 'भारतीय दर्शन का इतिहास', भाग 4, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1989, पृ० 339
76. चौरासी वैष्णवन, पृ० 238
77. वही, पृ० 239
78. दो सौ बावन..., पृ० 355
79. अष्टकाप और बल्लभ संप्रदाय - दीनदयाल गुप्त, पृ० 57
80. वैष्णाव संप्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - आ० बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा, वाराणसी, संस्करण 1978 ई०, पृ० 376  
इस संप्रदाय पर विस्तृत अध्ययन के लिए देखें -- 'राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धांत और साहित्य' - विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण स० 2014 वि०

81. हितहरिवंश के बारे में 'भक्तमाल' में लिखा है :  
 श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत् कोउ जानि है ।  
 श्रीराधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी ।  
 कुंज कैलि दंपति तहां की करत बवासी ।  
 सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी ।  
 विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी ।  
 श्रीव्यास सुवन पथ अनुसरे सोह भले पहिचानि है ।  
 श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत् कोउ जानि है ।  
 (अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत, पृ० 65)
82. हिंदी साहित्य में कृष्ण - डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, राजश्री  
 प्रकाशन मथुरा, संस्करण सन् 1965 ई०, पृ० 83
83. वही, पृ० 94
84. वैष्णव संप्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - आ० बलदेव  
 उपाध्याय, पृ० 384
85. राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य - विजयेन्द्र स्नातक,  
 पृ० 51
86. अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय - दीनदयालु गुप्त, पृ० 68
87. हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, पृ० 91
88. वल्लभाचार्य को संप्रदाय में 'स्त्री शूद्राद्युद्धृति क्षमः' (स्त्री,  
 शूद्र और जीवमात्र का उद्धार करने में सक्षम) कहा गया है ।

## अध्याय-तीन

---

### पुष्टिमार्ग का आंतरिक सत्तातंत्र

---

कोई भी महत्वाकांक्षी संप्रदाय अपने प्रचार-प्रसार के लिए तीन स्तरों पर सक्रिय होता है - (क) शासन-सत्ता के साथ संबंध (ख) अन्य संप्रदायों के प्रति निश्चित दृष्टिकोण तथा (ग) अपने अनुयायियों के प्रति रवैया । प्रथम दो स्तरों पर बल्लभ संप्रदाय की सक्रियता का विवेचन किया जा चुका है । प्रस्तुत अध्याय में हम सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीसरे स्तर का अध्ययन करेंगे ।

पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने को 'ब्रह्मसंबंध' कहा जाता है । ब्रह्म संबंध होने के बाद ही कोई व्यक्ति वैष्णव कहलाने का अधिकारी होता है । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के वैष्णव पुष्टिमार्ग के आदर्श वैष्णव हैं और सामान्य वैष्णवों से अपेक्षा की जाती है कि वे इनका अनुकरण करेंगे । ये आदर्श वैष्णव अपनी निष्ठा, अनन्यता के आधार पर चुने गए हैं । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में महाप्रभु बल्लभाचार्य के सेवक हैं और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में गुसाईं विठ्ठलनाथ के । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के सारे वैष्णवों को 'भगवदीय' कहा गया है जबकि 'दो सौ बावन' के सभी वैष्णव 'गुसाईंजी के कृपापात्र' हैं । 'भगवदीय' वे हैं जिनसे ठाकुर जी कोई दुराव-रूपाव नहीं रखते । ठाकुर जी महा प्रभु जी के सेवकों के साथ हंसते-खेलते हैं । इन 'भगवदीय' वैष्णवों को 'तादृशी' वैष्णव कहा जाता है । बल्लभाचार्य ने जीवों को तीन भागों में बांटा - प्रवाहजीव, मयादाजीव तथा पुष्टिजीव । प्रवाहजीव वे हैं जो सांसारिकता में पूरी तरह लिप्त रहते हैं । मयादाजीव वेदशास्त्र के



अनुसार जीवनयापन करते हैं। जो जीव पूरी तरह से भगवदनुग्रह पर निर्भर रहते हैं, वही पुष्टि जीव हैं। पुष्टिजीव वास्तव में देवीजीव हैं। ये देवीजीव किन्हीं कारणों से भटके हुए होते हैं। महाप्रभु जी ने इन्हीं के उद्धार के लिए पुष्टि संप्रदाय प्रकट किया है। जब अष्टाक्षर मंत्र के द्वारा इन देवी जीवों को 'मार्ग' में शामिल कर लिया जाता है तो ठाकुरजी इनसे पुनः 'सानुभाव' जताने लगते हैं। पुष्टिजीव भी तीन तरह के माने गए हैं - प्रवाह पुष्टि, शुद्ध पुष्टि तथा पुष्टिपुष्टि। जिस वैष्णव की सेवा भावना सर्वोच्च कोटि की होती है, वही पुष्टि-पुष्टि जीव होता है। संप्रदाय के पदानुक्रम में आचार्य जी के सेवक गुसाईं जी के सेवकों से ऊपर हैं। ठाकुर जी बल्लभाचार्य के सेवकों से ही सानुभाव जताते हैं। गुसाईं जी के सेवक बहुत कम अवसरों पर ही ठाकुर जी से साक्षात् कर पाते हैं।

### उत्तम वैष्णव के लक्षण

यों तो वाताग्रंथों के सभी वैष्णव आदर्श माने गए हैं किन्तु कुछ वैष्णवों पर वाताकार ने ज्यादा बल दिया है। इनके जीवन-प्रसंगों को विशेष तौर पर रेखांकित करते हुए अन्य वैष्णवों को (उनका) अनुकरण करने की सलाह दी गई है।

पुष्टि मार्ग में जिस भाव को केन्द्रीय महत्त्व मिला, वह विप्रयोग भाव है। वैष्णव को निरंतर विरहाकुलता का अनुभव करना चाहिए। वियोग दशा में आर्त्त भाव क्रमशः बढ़ता है। आर्त्त-भाव वैष्णव को 'तदीय' बना देता है। आर्त्त-भाव की प्रकृति बनी रहे, इसके लिए आवश्यक है कि वैष्णव में दास्य-भाव का पुष्ट आधार हो। दास्य भाव से अनन्यता आती है। दास्य भाव वैष्णव को विचलन से बचाता है। दास्य-भाव का आदर्श पतिव्रता में देखा जा सकता है, इसलिए पतिव्रता-भाव पुष्ट मार्गी वैष्णवों का आधार भाव है - "जैसे पतिव्रता को धर्म है, ऐसे वैष्णवन को पतिव्रता की न्याईं टेक रखनी।" "वैष्णवन को

अपनी टेक पतिव्रता की सी राखनी । अपने श्रीप्रभु जी कुं हृदय में राखें ताकुं वैष्णव कहिये । ज्यों स्त्री को अपनो धनी होवे सो होवे और लौकिक स्वार्थ में हुं अपने खसम कुं छोड़ि के और को भजन नहीं करे जो कोउ कहु कहे ताको गारी देन लो । जासों एक जन्म को संबध है और इहां तो अनेक जन्म के धनी हैं तो इन ऊपर घणो स्नेह क्यों न राखिये<sup>2</sup>। वैष्णव को चाहिए कि वह खुद को दासी समझे । इस तर्क से दूसरे वैष्णवों को सखी भाव से देखना कर्त्तव्य है ।<sup>3</sup> पुष्टि मार्ग के व्याख्याता हरिराय कहते हैं कि स्वामिनी जी वियोग दशा में बैचन होती थीं । वही दशा वैष्णवों के लिए विहित है -

८ भावनीयं सदा चित्तं स्वामिनीजल्पितं मुहुः ।  
ताप क्लेशैरयं मार्गं श्रीमदाचार्यं निरूपितः ॥

बारंबार चित्त में श्रीस्वामिनी जी के कवन (विप्रयोग दशा के - हा नाथ । हा प्रिय । हा रमण । कहाँ हो ? हा महाभुज । आपकी दीन दासी मैं हूँ इत्यादि) भावनीय हैं, काहे ते जो यह मार्ग विरह ताप के क्लेश सहित श्रीमदाचार्य ने निरूपण कीयो है ॥<sup>4</sup>

एक पुष्टिमार्गी की वैष्णवता जांचने के समान गुण धर्म वाले यही चार प्रतिमान हैं -- वियोग-भाव, आर्त्त-भाव, दास्य-भाव और पतिव्रता-भाव । इनमें से किसी भी एक भाव का अनुभावन शेष भावों की उपस्थिति से ही संभव हो सकता है ।

ब्रह्म संबंध की <sup>स्वरूप</sup> नाम समर्पण कहा जाता है । नाम-समर्पण के बाद ही व्यक्ति में ठाकुर जी के स्वरूप की सेवा की अर्हता आती है । नाम समर्पण पूर्ण समर्पण का वाचक है । पूर्ण समर्पण श्रीठाकुर जी के प्रति होता है । नाम समर्पण के बाद सिद्धान्ततः वैष्णव का सब कुछ ठाकुर जी का हो जाता है । चूंकि ठाकुर जी के प्रकट रूप महाप्रभु बल्लभाचार्य हैं, इसलिए व्यवहार में पूर्ण समर्पण इन्हीं के प्रति होता है :

यः स्वमाहात्म्य बोधाय प्रादुर्भाक्त्वा-स्वयम् ।  
प्रभुः श्रीवल्लभाचार्यस्तित्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥

जो प्रभु (अपने भक्तन को) अपना माहात्म्य जतायवे के लिए आप श्री वल्लभाचार्य जी को प्रकट करत भये तिनकी स्मृति सदा करनी ॥<sup>5</sup> पूर्ण-समर्पण की स्वाभाविक परिणति दासत्व में व्यक्त होती है । पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तकार कहते हैं कि दासत्व-धर्म जीव का सहज स्वभाव है, उसका मूल धर्म है इसलिए उसे स्वतंत्रता की मांग नहीं करनी चाहिए :

‘दासत्वेऽप्यस्ति भेदो हि मयादापुष्टि भेदतः ।

अतो न जीव स्वातंत्र्यं दासत्वाद्धि निसर्गतः ॥

दास भाव में दोय रीति है एक मयादा और एक पुष्टि दासत्व धर्म जीव में स्वभावतः है ताते जीव स्वतंत्र नाहीं है दासत्व धर्म तें प्रभु को संबंधी होत है तातें दासत्व धर्म सबसे अधिक है ॥<sup>6</sup> जिस तरह दास अपने स्वामी के प्रति एकनिष्ठ रहता है उसी तरह दासरूप वैष्णव को श्री वल्लभाचार्य की कृपा दृष्टि पर ही अवलंबित रहना चाहिए । वैष्णव की एकमात्र कामना होनी चाहिए :

‘नैतस्मिन् समये कोऽपि सहायो मम कर्तते ।

बिना श्रीवल्लभाचार्य चरणानुहाश्रयात् ॥

यह समय में श्रीवल्लभाचार्य जी के चरणारविंद के आश्रय बिना मोको काहू सहाय नाहीं है ॥<sup>7</sup> ‘बड़े शिक्षापत्र’ में पुष्टिमार्गी वैष्णव के चार कर्तव्य बताए गए हैं :

‘गुणगानं तथा दुःखभावनं दैन्यमेव च ।

तथा त्यागः सिद्धदृशः कृत्यमेतच्चतुष्टयम् ॥

श्री ठाकुर जी की लीला को गुण गान करे, विप्रयोग दुःख की भावना करे, दैन्य करे ताकरि सब लौकिक वैदिक त्याग करे यह चारों कृत्य अवश्य करे काहे तै जो प्रथम गुणगान करे ता करिके जितने दोष होय तितने भस्म होय जाय शुद्ध हृदय जाय तब अपने दोष स्फुरे अपन को तुच्छ जाने जो में

तो कछु साधन कीयो नांही मेरो अंगीकार प्रभु के सें करेगे ? या भांति क्विारवे तें निःसाधनता की भावना मन में होय तब दीनता होय तब प्रभु बिना और कछु न सुहाय पावै लौकिक वैदिक सब त्याग होय यह चतुष्टय प्रकार हे सो पुष्टिमागीय साधन और फलस्वरूप जानि कर्तव्य हे ॥<sup>8</sup> पुष्टिमार्ग में साधन और साध्य का भेद नहीं हे । वैष्णव का विरह ताप साधन हे और साध्य भी । मयादिमागी मोक्ष की कामना करते हैं । साधन रूप में वे वैदशास्त्र के कवनों के अनुरूप व्यवहार करते हैं । पुष्टिमागी मोक्ष की इच्छा नहीं रखता । वह अपने सेव्य स्वरूप के विरह में दहकता रहता हे । उसका माध्यम और लक्ष्य दोनों यही हे । संप्रदाय में भक्ति दो प्रकार की मानी गई हे - शीतलाभक्ति और ऊष्णा भक्ति । व्याख्याकार हरि राय कहते हैं कि 'मार्ग' में शीतला भक्ति का कोई उपयोग नहीं हे :

अस्माकं अति भाग्येन तदास्य वह्निरुदगतः ।

अतः शीतलभावोऽस्मिन् मार्गे नैवोपयुज्यते ॥

पुष्टिमागीय जीव के अतिभाग्य तें भावनात्मक प्रभु के मुखारविंद रूप अग्नि (श्री आचार्य जी) प्रकट भये हे तारायें यह मार्ग में शीतल भाव उपयोग में नांही आवे हे (विरहात्मक ताप सों प्रभु अनुग्रह करे) ॥<sup>9</sup>

वैष्णव को लौकिक वैदिक कामनाओं से परे जाकर सिर्फ विरह ताप का अनुभव करना चाहिए । दासता की भावना जितनी होगी 'विरहा-त्मक ताप' उतना ही प्रगाढ़ होगा । वैष्णवों को इसीलिए सेवक कहा जाता हे । सेवक का एकमात्र धर्म हे स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पण और निरंतर सेवा - 'तदीयास्तु निजाचार्य चरणौक परायणाः'<sup>10</sup> वैष्णव को सेवा में दृढ़ विश्वास होना चाहिए क्योंकि 'अपने प्रभु सर्वसमर्थ हे सो पिता की नाई अथवा पति की नाई अपने दासन को लौकिक और पारलौकिक दोनों सिद्ध करेगे ।'<sup>11</sup> दासपने को और स्पष्ट करते हुए 'पुष्टि दृढाव ग्रंथ' में कहा गया हे, 'श्री पुरुषोत्तम के पाय तरें रहें हे ताके भजन योग्य भयो ताको नामदास । दास सो कहा दूर ठाढो रहे

घण्टी सुख पावे तब दास सो सर्वथा श्री ठाकुर जी को काम करे कीर्तन करे सदा प्रसन्न रहे और कछु सुहात नहीं तब दासत्व आवे तब सेवक भयो सेवक सो कहा जो धनी के पास रहे अंग सुं सेवा करे 'सेवा चोर न होई' जो करे सो श्री ठाकुर जी सों पूछ के करे ताको नाम सेवक। वैष्णवों में सेवक भाव की विद्यमानता सूचित करने के लिए उनके नाम के साथ दास जोड़ने का विधान है। कई वैष्णव ऐसे हैं जो महाप्रभु वल्लभ की शरण में आने से पहले अपने नाम के साथ 'स्वामी' लगाते थे जैसे गाविंदस्वामी, परमानंद स्वामी और गडुस्वामी आदि। शरण में आने के बाद इन्हें स्वामी की जगह दास स्वीकार करना पड़ा। 'चौरासी वैष्णव की वाता' में सनादय ब्राह्मण गडु स्वामी की वाता का यह प्रसंग उल्लेखनीय है, 'सो वे गडु स्वामी आप स्वामी कहावते सो एक समय आचार्य जी महाप्रभु वृंदावन पधारे हुते तब गडुस्वामी को आज्ञा भई श्री ठाकुर जी ने कृपा करि कें रात्रि को स्वप्न में जनायो जो सवारे श्री आचार्य जी महाप्रभु आज सवारे पधारे तब गडुस्वामी स्नान करि के तहां गये तब गडु स्वामी ने दंडौत कीनी और विनती करिके यह कह्यो जो महाराज मोको शरण लीजिए तब श्री आचार्य जी महाप्रभु मुसि क्याय के कहें जो तुम तो आप स्वामी हो तुम को सेवक कैसे करिये ॥' पुष्टि मार्ग में प्रवेश के लिए दासत्व भाव का स्वीकार एक अनिवार्य शर्त है। स्वतंत्रता की भावना रखना, जिज्ञासा करना, सवाल पूछना दास धर्म के प्रतिकूल है। ऐसे विचलनों के लिए वैष्णव का त्याग किया जा सकता है - संप्रदाय से निष्कासन इस अपराध के लिए न्यूनतम दंड है। गुसाईं जी के सेवक मथुरा दास की वाता देखें - 'सो वे वैष्णव गोपालपुर में रहते हते एक दिन मथुरादास ने श्री गुसाईं जी सों पूछ्यो जो आपकी सृष्टि में और श्री महाप्रभु की सृष्टि में कितनों तारतम्य है तब श्री गुसाईं जी ने आज्ञा करी - हमने तेरो त्याग कियो है उहां दश पंदरह वैष्णव बैठे हते विनने त्याग करने की बात साची मान के मथुरादास सों भगवत्स्मरण करनो झोड इंदियो और सब गाम में बात फैलाय दीनी जो कोई वासुं भगवत्स्मरण न करे और कोई वाके पास हूं न बैठे तब मथुरादास ने ऐसो विचार्यो

जो जंगल में जायके कोई कुं खबर न पड़े ऐसे ठेकाने देह छोड़ देनी और अन्न जल त्याग दियो... ॥<sup>14</sup> वैष्णव संप्रदायी ग्रंथों में यह बात कई बार दोहराई गई है कि यह मार्ग ताप क्लेश से भरा अत्यंत कठिन है । संप्रदाय में बने रहने की शर्तें और चूक होने पर दंड विधान को देखते हुए उक्त कथन आसानी से समझा जा सकता है ।

इस संक्षिप्त लक्षण चर्चा के बाद कुछ वैष्णव वार्ताओं का विवेचन प्रासंगिक होगा :

### दामोदरदास हरसानी

संप्रदाय में दामोदरदास का विशेष महत्त्व तीन कारणों से है :

1. ये महाप्रभु वल्लभ के प्रथम सेवक थे और इस तरह बाकी सेवकों के आदर्श ।
2. इन्हें मार्ग के सिद्धान्त तथा सेवा प्रकारों की पूरी जानकारी थी ।
3. गुसाई विठ्ठलाथ को इन्होंने सिद्धान्त तथा पुष्टिमार्गीय उत्सवों की जानकारी दी थी ।

चुनिंदा वैष्णवों की वार्ता का अर्थ स्पष्ट करने के लिए गोस्वामी गोकुलाथ ने 'भावसिंधु' की रचना की थी । इस ग्रंथ के अनुसार दामोदरदास हरसानी के पिता बहुत धनाढ्य थे । किसी हरि-भक्त के वरदान स्वरूप उन्हें तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई । दो पुत्र साधारण रीति से पैदा हुए, जबकि दामोदरदास का प्राक्त्य देवी रीति से हुआ, 'सो दामोदर दास जी के समे ईतनो चिन्ह प्रगट होतो भयो लिलाट में आरक्त तिलक, दीर्घ केश, भुजा बड़ी लांबी + + + फेरि दामोदर दास का प्राक्त्य महाप्रभु जी की सेवा के लिए हुआ था । उनकी अनन्यता बालपने से ही जाहिर हो गई थी, 'और इनकी तो जन्मताई दृष्टि नासाग्र रहि सो काहू के सामे देखे नाहि जो कोऊ गोद में लैय तोऊ

काहू के सामे फाखे नाहि सो काहे ते जो दामोदर दास जी के नेत्र  
में तो श्री महाप्रभु जी को स्वरूप विराजे हे सो तासों अन्य दृष्टि  
करेहि नाहि आपुके स्वरूप में ही मग्न रहे ॥<sup>16</sup> दामोदरदास की  
लौकिक में कोई रुचि नहीं थी । वे नित्य (राजमार्ग पर स्थित)  
हवेली में खिड़की के पास बैठकर बल्भाचार्य का इंतज़ार किया करते,  
‘दामोदरदास जी वा गवाखा में बैठे बैठे आपुको विरह करे देह सूकि  
के अस्थि मात्र रहि गई ॥’<sup>17</sup> ‘फेरि थोरे से दिन में प्राणनाथ श्री  
आचार्य जी महाप्रभु जी पधारे सो दूरि सो देखि के वाही गवाखा मे  
सो कूदि परे तब जायकें आपुके श्री अंग सो लपटि गये सो वाही समय  
नौतन देह सखीभाव सर्वांग भरि आयो ॥’<sup>18</sup> बल्भाचार्य को ‘पतिव्रता  
पतिः’ कहा गया हे ।<sup>19</sup> सेवक उन्हें पति रूप में देखता हे । अपने  
पातिव्रत धर्म के कारण वह महाप्रभुजी का अनुग्रह प्राप्त करता हे ।  
आचार्य जी पतिव्रता का विशेष खयाल रखते हैं ।<sup>20</sup> इस गुण के कारण  
महाप्रभु बल्भाचार्य को ‘दासदासी प्रियः पतिः’ कहा जाता हे ।<sup>21</sup>  
दामोदरदास को महाप्रभु बल्भ दमला कहकर पुकारते थे । ‘दमला जो  
दासीभाव स्त्रीभाव सूचीत भयो ताते दमला पद स्त्रीवाची हे ॥’<sup>22</sup>  
दामोदरदास का आचरण पतिव्रता स्त्री का था । वे सर्वांग सुंदर तो  
थे ही, ‘जो दमला आधी गादी पर बैठते ताको यह भाव स्त्री हे सो  
पुरुष की अर्धांगिनी हे ताते गाढी पे श्रीठाकुरजी श्री स्वामिनीजी  
दोउ विराजे हे तासों आधी गादी कही सो दोउ मिले रसपूर्ण होय ॥’<sup>23</sup>  
महाप्रभु बल्भ साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं उनकी शरण में स्त्री बन  
कर ही जाया जा सकता हे । बल्भाचार्य को पति रूप में स्वीकार कर  
लेने पर पतिव्रता धर्म के अनुसार किसी और पुरुष की तरफ दृष्टि नहीं  
जाती भले ही सामने ठाकुर जी स्वयं क्यों न हों, और एक समय दामोदर  
दास और श्रीगुसाईं जी एकान्त में बैठे हुते तब श्री गुसाईं जी ने दामोदर  
दास सो पूछो जो तुम श्री आचार्य जी महाप्रभुन को कहा करि जानत हो  
तब दामोदरदास ने कही जो हम तो श्री आचार्य जी महाप्रभुन को जगदीश  
जो श्रीठाकुर जी तिनहूँ ते अधिक करि जानत हैं ॥ एक बार दामोदर  
दास के पातिव्रत धर्म की परीक्षा की घड़ी आ गई, एक समय श्री

गिरिराज की तरहटी में झोंकर के नीचे श्री दामोदरदास जी की गोद में श्रीमहाप्रभु जी श्रीमस्तक धरि के पोढ़े हते ता समय श्रीनाथ जी पधारे सो दामोदरदास जी ने बरजे ताको यह कारण है एक स्वरूप सो तो पोढ़े है और एक स्वरूप सो पधारे जो स्वरूप तो दोनो एक ही है तथापि श्रीदामोदरदास जी को परम उत्कर्ष दासरस प्रकट कीयो + + + और दूसरी भाव यह है जो एक शृंगार रस में दूसरे स्वरूप की संभावना होय तो रसाभास होय जाय सो तो यहां नाहि तथापि एक स्वरूप सो रस संबंध होय रह्यो हे तासों बरजे ।।<sup>25</sup>

ठाकुर जी एक बार महाप्रभु बल्लभाचार्य से बात कर रहे थे । दामोदरदास भी वहां मौजूद थे । जब ठाकुर जी चले गए तो बल्लभाचार्य ने दामोदरदास से पूछा कि तुमने भी कुछ सुना । दामोदरदास का जवाब था, 'राज सुन्यो तो सही परन्तु समझ्यो नाहि ।'<sup>26</sup> इसका कारण बताते हुए गोकुलनाथ लिखते हैं कि अगर दामोदरदास ठाकुरजी की बात समझ जाते तो महाप्रभु बल्लभ के समान सिद्ध होते । इससे दास्य भाव संडित होता ।<sup>27</sup>

'श्री दामोदरदास जी को श्रीमहाप्रभु जी नित्य दर्शन देते जा दिन दर्शन में बिलंब होतो तादिन पेट में पीडा होती सो पेट तो एक उपलक्षा है जो सवांगि में - रोम रोम में पीडा होय आवती फेरि आप दास-परस करि जीवन संपादन करते दामोदरदास जी तथा आपको आस्थाधारण स्नेह परस्पर दिखायो ... परम सौंदर्य मुखारविंद श्री दामोदरदास जी को हे ।'<sup>28</sup> जो संबंध कृष्ण का गोपीजनों से था वही महाप्रभु जी का अपने सेवकों से । दामोदरदास से विशेष स्नेह इसलिए भी था कि वे देखने में अत्यंत सुंदर थे । महाप्रभु 'दास परस' करके दामोदरदास जी की पीडा मिटाते थे ।

गुसाईं विठ्ठलनाथ ने चूंकि मार्ग की प्रणालिका दामोदरदास से सीखी थी, इसलिए वे उन्हें प्रणाम नहीं करने देते थे, उनका आदर-



सत्कार करते थे । यह बात गुसाईं जी को पूर्ण पुरुषोत्तम का दूसरा स्वरूप मानने में बाधा उत्पन्न करती थी । महाप्रभु वल्लभाचार्य को यह बाधा दूर करने के लिए स्पष्टीकरण देना पड़ा, तब श्री आचार्य जी महाप्रभु दामोदरदास की ओर गये जो तब श्री गुसाईं जी को कहा करि जानत ही तब दामोदर दास ने कही जो महाराज हम तो तुम्हारे पुत्र करि जानत हैं ।।<sup>29</sup> यह सुनकर महाप्रभु ने आज्ञा दी कि गुसाईं जी और मुझमें अंतर मत करो । भेद सिर्फ स्वरूप का है । वस्तुतः हम दोनों एक ही हैं, 'सो ता दिन सो जैसे' रस रीति श्री महाप्रभु जी के भजन में करते तेसे ही श्री गुसाईं जी के स्वरूप में रसरीति भजन करिवे लो सो श्री महाप्रभुजी निजानंद रस को दान देते तेसे ही श्री गुसाईं जी निजानंद रति रस को दान करिवे लो सो यामे पतिव्रता खंडन न भयो देखिवे मैं दोउना स्वरूप, मूल एक ही स्वरूप है ।।<sup>30</sup> संप्रदाय के ग्रंथों में कई स्थलों पर सेवकों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की गई है कि विट्ठलनाथ पूर्ण पुरुषोत्तम के ही स्वरूप हैं । उनमें और महाप्रभु में अभेदत्व देखना चाहिए । हरिराय जी लिखते हैं :

श्री मत्प्रभुपद गुणले स्थाप्य चेतश्चमत्कारि ।

तदनुग्रहणादेव हि भवति तदीयस्य सर्वतः सकलम् ।।

श्री ठाकुरजी तथा श्री गुसाईं जी के चरणारविंद में चमत्कारयुक्त चित्त को स्थापन करना काहे तें जो इनके अनुग्रह तें ही तदीय को सर्वप्रकार करि के सर्वसिद्ध होय ।।<sup>31</sup> संप्रदाय के प्रसार, निरंतरता तथा आचार्य के प्रति एक सी पूज्य बुद्धि, आस्था बनाए रखने के लिए ऐसी घोषणा ज़रूरी थी । बाद के दिनों में यह कहा गया कि विट्ठलनाथ जी के जितने भी पुत्र तथा उनके वंशज हैं, सब का प्राकट्य ही हुआ है और सब श्रीठाकुर जी के स्वरूप हैं ।

### कृष्णादास मेघन छत्री

जिन दिनों महाप्रभु वल्लभाचार्य पृथ्वी परिक्रमा कर रहे थे, कृष्णादास मेघन उनके साथ थे । कृष्णादास मेघन बहुत बलवान थे और महाप्रभु की शरणा में आने से पहले उन्होंने किसी और गुरु का शिष्यत्व स्वीकार किया था । बद्रीनारायण के पास एक पर्वत से गिरती हुई एक बड़ी शिला को रोक कर उन्होंने महाप्रभु को प्रसन्न किया था । महाप्रभु ने कृष्णादास मेघन से कुछ मांगने को कहा । कृष्णादास ने 'तीन वस्तु मांगी एक तो मुखरता को दोष जाय दूसरे मार्ग को सिद्धान्त समझों तीसरे मेरे गुरु के घर पधारौ ।।' <sup>32</sup> आचार्य जी ने दो वरदानों के लिए एकमस्तु कहा पर गुरु के घर जाने से मना किया । बद्रीकाश्रम से आगे 'जहां जीव की गम्य नाहीं है तहां वेदव्यास जी को स्थान है तहां पधारै तब कृष्णादास सो कह्यो जो तू ठाढ़ी रहियो ... पाछे वेदव्यास जी सो विदा होयके तीसरे दिन पधारै तब कृष्णादास सो कह्यो जो तू गयो नाहीं सो काहे ते तब कृष्णादास ने कही जो महाराज हों कहां जाऊं मोको तुम्हारे चरणारविंद बिना और आश्रय नाहीं है तब यह सुनि के श्री आचार्य जी महाप्रभु बहुत प्रसन्न भये तब कह्यो जो मांगि तब वे ही तीन वस्तु मांगी ... तामे दोय वस्तु दीनी गुरु के घर पधारवे की नाहीं कीनी ।' <sup>33</sup>

कृष्णादास द्वारा मांगे गए तीन वरदानों में दो का अर्थ तो समझ में आता है - मार्ग का सिद्धान्त समझ सकने में समर्थ होना तथा गुरु के घर वल्लभाचार्य को लेजाना, पर तीसरे वरदान - 'मुखरता को दोष जाए' का क्या मतलब ? असल में सेवक का एकमात्र कर्तव्य स्वामी की सेवा करना होता है । उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह वाद विवाद करे, मुखर रहे । आदर्श स्थिति यही है कि दास चुपचाप सेवा करता रहे । कृष्णादास मेघन शरणा में आने से पहले पर्याप्त मुखर

थे । सेवक बनने के बाद वे सेवक-धर्म का निर्वहण करने के लिए ही मुखरता को दोष समझने लगे थे । एक बार कुछ वैष्णवों ने बल्लभाचार्य से शिकायत की थी कि कृष्णदास मार्ग की गोप्य वार्ता सबके आगे कहते फिर रहे हैं । महाप्रभु ने कृष्णदास को डाटते हुए पूछा, 'क्यों रे तू सबन के आगे गोप्य वार्ता कहत है तब कृष्णदास ने कह्यो जो महाराज आप उनही से पूछिये जो मैंने कहा कह्यो है तब उन वैष्णवन से श्री आचार्य जी महाप्रभु ने पूछो जो तुम से कृष्णदास ने कहा वार्ता कही है तब वैष्णवन ने कही जो महाराज हमको तो सुधि रही नाहीं तब श्री आचार्य जी महाप्रभु मुसिक्याय के चुप करि रहे ।।' <sup>34</sup> दूसरे वैष्णवों के वार्ता प्रसंगों में भी वार्ताकार ने कई बार याद दिलाया है कि अन्य मार्गियों के समझा अपनी वैष्णवता और मार्ग का सिद्धांत गोपनीय रखना चाहिए ।

एक समय श्री आचार्य जी महाप्रभु गंगासागर पधारे तहां श्री आचार्य जी महाप्रभु पोढ़े हुते तहां कृष्णदास पाव दबावत हुते तब श्री आचार्य जी महाप्रभु मन में बिचारू जो धान के मुरमुरा होय तो लीजिए <sup>35</sup> सच्चा दास वही जो मालिक की इच्छा जान ले, 'महाप्रभुन के अंतःकरण की कृष्णदास मेधन ने जानी इतने में आचार्य जी महाप्रभु को निद्रा आई तब कृष्णदास उठि के गंगासागर ऊपर आये तब देखें तो पार स्क दीया बरत है ताकी अटकरतै पेर के गंगा जी पार आये तहां गांव है सो खेत में ते गीले धान कटवाये तहां गांव में जाय के भरभूजा को टका की जगह चार टका देके मुरमुरा सिद्ध करवाये तब लेके आये तब श्री आचार्य जी महा- <sup>36</sup> प्रभुन के चरणारविन्द दाब के जगाये और मुरमुरा आगे राखे... ।।' <sup>36</sup> कृष्णदास ने सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया । महाप्रभु ने कहा कि जगत का अंतरयामी मैं हूं और तू मेरा अंतरयामी है । आपने श्रीमुख सों आज्ञा की, 'जो कृष्णदास मांगि कृष्णदास ने विनती करी जो राज यह मांगत हों जो आपके मारग को सिद्धांत निसवासर मेरे हृदय में रह्यो आवे ।।' <sup>37</sup>

मार्ग का सिद्धांत सार रूप में क्या है ? 'भावसिंधु' में लिखा है कि,  
 'मार्ग को सिद्धांत यह जो स्वामि सुखी रहे सो ताही सुख सों सुखी ॥'<sup>38</sup>  
 महाप्रभु ने कृष्णादास को वरदान दिया, 'जो हमारे मार्ग को सिद्धांत  
 अनुराग निरंतर तेरे हृदय में दृढ़ रह्यो आवेगो ओर वामें सों ज्ञान ज्ञान  
 अनुराग की वृद्धि अधिक होयगी सो तीन बेर उर सों लाय स्नेहामृत  
 सों सिंच्यो सो वा समय को सुख अनुभव लिखि वे में आवे नाहि जो मानों  
 निकुंज मंदिर में प्रीतमप्रीया कों सौभाग्य प्रगट होतो भयो ॥'<sup>39</sup> प्रिय  
 सेवकों से अनुराग के चरम क्षणों में महाप्रभु बल्लभाचार्य पतिव्रत व्यवहार  
 करते हैं, 'सो आप दोउ भुजान सों पकरी छाती सों लाय लीए सो एसो  
 चोंटायो सो तीनो ताप वाहि समय दूरि करते भये ॥'<sup>40</sup> कदाचित्त  
 संप्रदाय की गोप्य वार्ता में ऐसे ही प्रसंग रहते होंगे जिन्हें बाहर प्रकट  
 करने की सख्त मनाही कृष्णादास तथा दूसरे ऐसे अंतरंग सेवकों को थी ।

एक बार कृष्णादास ने जानना चाहा कि प्रभु को प्रिय क्या  
 लगता है और अप्रिय क्या लगता है । तब आपने आज्ञा करि जो मूल तो  
 स्नेह सहित उत्तम वस्तु आपको प्रिय है आप उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं ...  
 और अप्रिय जो भक्तन को द्रोह तथा धुंआ ॥'<sup>41</sup> प्रभु को उत्तम वस्तु  
 प्रिय है, लेकिन उत्तम वस्तुओं की सूची में सबसे ऊपर क्या है ? फेरि  
 आज्ञा करी जो प्रभुन को गोरस अत्यंत प्रिय है सो गो शब्द करिके अनेक  
 अर्थ होय हैं सो तामें मुख्य तो गो शब्द ईंद्रीवाचक है सो रस कृष्णादास  
 ने सर्वात्मनाभाव करिके अंगीकार करायो सो यह रस संबंधी बात है सो  
 रसिक होयगो सो अनुभव जानि जायगो ॥'<sup>42</sup>

कृष्णादास का गुरु प्रसंग बहुत अर्थपूर्ण है । आचार्य जी एक बार  
 सोरों पधारे । कृष्णादास ने विनती की कि महाराज मेरे गुरु यहीं रहते  
 हैं । आशा हो तो बुला लाऊं । महाप्रभु ने कहा कि कोई फायदा नहीं,  
 खेद ही होगा । कृष्णादास गुरु के पास अकेले ही गए । गुरु ने कृष्णादास  
 से पूछा कि तुमने दूसरा गुरु क्यों कर लिया ? कृष्णादास ने कहा कि

गुरु तो अकेले तुम्हीं हो बस तुम्हारी कृपा से मुझे पूर्ण पुरुषोत्तम मिल गए हैं । गुरु ने महाप्रभु के पूर्ण पुरुषोत्तम होने में संदेह प्रकट किया । कृष्णदास ने अंगीठी में से धक्की हुई आग को अंजुली में भर लिया । कृष्णदास की उंगलियाँ महाप्रभु जी की कृपा से जैसी की तैसी रहیں। अग्नि उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाई । लेकिन महाप्रभु में संदेह करने का परिणाम गुरु को भोगना ही था, 'सो गुरुन को ब्रह्मांड फूट्यो सो वा में सो दीवा की सी लोय निकसि के वा अग्नि में प्रवेश करती भई सो या रीति सों गुरुन को श्रीमहाप्रभु जी के स्वरूप को ज्ञान कराय उद्धार करि फेरि आपके चरणारविंद पास आय के बैठे तब आपने आश करि जो गुरुन को स्वरूप ज्ञान भयो तब विनती करी, सब व्यवस्था जा प्रकार गुरु आपके चरणारविंद में प्राप्त होतो भयो सो कही आपने कृष्ण दास जी की बहुत प्रशंसा करी ॥'<sup>43</sup>

### गोपालदास

ऐसे तो सामान्य वैष्णवों के लिए दूसरे लोगों के बीच पुष्टिमार्ग की चर्चा करना वर्जित है परन्तु यदि कोई अनुकूल पात्र दिखे तो उसे महाप्रभु जी की शरण में आने के लिए प्रेरित किया जा सकता है । 'बड़े शिक्षा पत्र' में पुष्टिमार्गी वैष्णवों को ऐसा ही निर्देश दिया गया है :

अन्येऽपि चौपदेष्टव्या यदि स्युरधिकारिणः ।

मिलति स्वेच्छया श्रद्धायुताः पृच्छन्ति चेत्तदा ॥

जो अन्य हू अधिकारी मिले और श्रद्धायुक्त होय अपनी इच्छा तें पूछे तो इनको हू उपदेश करनी ॥'<sup>44</sup>

गोपालदास महाप्रभु जी के ऐसे सेवक थे जो सम्प्रदायबाह्य भगवद् भक्तों को पुष्टिमार्ग का उपदेश उन्हें इस तरफ मोड़ते थे । उन्होंने अपने घर के पास एक विश्रामालय बनवा रखा था । उस रास्ते से गुजरनेवाले

भगवद्भक्त वहां थकान उतारते थे । इससे गोपालदास को भगवद्वाता करने का अवसर मिल जाता था । उज्जैन निवासी पद्मरावल एक बार द्वारिका से लौटते हुए वहां रुके । गोपालदास ने उनसे रणछोड जी का कुशल समाचार पूछते हुए यह जान लिया कि, 'पद्म रावल को रणछोडजी के विषय बहुत आसक्ति' है । पद्मरावल की पात्रता इससे प्रमाणित हो गई । तब गोपालदास ने अपने मन में कही जो ऐसी इने को श्रीरणछोडजी के दर्शन में आसक्ति है तैसी श्री महाप्रभुन के विषय आसक्ति होय तो इनको कार्य होय ताते इनसों कछु कहिये तब गोपालदास ने पद्मरावल सों पूछो जो तुमसों श्री रणछोडजी बोलत हैं कछु कहत हैं कछु मांगत हैं तब पद्मरावल ने कह्यो जो मोसों तो कबहु कछु कहत नाही तब पद्मरावल ने गोपालदास सों पूछो जो कहा श्रीरणछोडजी कहु सों बोलत है तब गोपालदास ने कह्यो जो हां हां बोलत हैं तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन की वाता कही जो तुमने एते दिन श्रीरणछोड जी सेये हैं श्री रणछोडजी प्रगट भये हैं तब पद्मरावल ने पूछो जो वे कहां तब गोपालदास ने कही जो वे अडेल मे हैं ।<sup>45</sup> गोपालदास की प्रेरणा से पद्मरावल अपने यजमान मावजी प्तेल और उसकी स्त्री बिरजो के साथ अडेल आये और नाम पाया । पाके पद्मरावल बहुत सावधानी सों सेवा करन लागे श्रीआचार्य जी महाप्रभुन की कृपा ते श्रीठाकुर जी सानुभावता जनावन लागे जो चाहिये सो मांगि लेते अपनी सब बात कहते सो वे पद्मरावल गोपालदास के संग ते ऐसे भावदीय हैं... ॥<sup>46</sup>

### कृष्णदास ब्राह्मण

पुष्टिमार्ग में सेवा पर सर्वाधिक बल दिया जाता है । इसीलिए, इसे सेवामार्ग भी कहते हैं । सेवाकार्य के लिए दासदासी परंपरया नियुक्त किए जाते रहे हैं । वल्लभ संप्रदाय में वैष्णवों को दास दासी कहे जाने का यही आधार है । आचार्य जी महाप्रभु को राजाओं का राजा - महाराजा या महाराज कहा जाता है । जिस तरह राजा की सेवा के लिए सेवक सेविकाओं की जरूरत होती है, उसी तरह 'महाराज' (महाप्रभु

वल्लभाचार्य तथा उनके वंशज) के लिए वैष्णवों की । दास का शरीर परिवार तथा संपत्ति पर अधिकार नहीं होता - उसका सर्वस्व स्वामी का होता है । इसी तर्क से वैष्णवों का सब कुछ महाप्रभु वल्लभाचार्य (जो ठाकुर जी के स्वरूप या पूर्णावतार हैं) का हो जाता है । ब्रह्म संबंध को 'पूर्ण समर्पण' इसीलिए कहा जाता है । महाप्रभु वल्लभ अपने दासों के प्रति बहुत अनुकूल भाव रखते हैं, इसीलिए उन्हें 'दास दासी प्रियः पतिः' से अभिहित किया गया है ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सेवा भाव पर जोर देते हुए इसे भक्ति के प्रथम सोपान दैन्य की जननी बताया । सेवा से चित्त को केन्द्रित किया जा सकता है :

'चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा' (सिद्धान्त मुक्तावली श्लोक 2)  
चित्त को प्रभु में परिणाम अथवा तल्लीन कर देना ही सेवा है और उसकी सिद्धि के लिए तनुजा (शरीर से) वित्तजा (स्वोपार्जित द्रव्य से) सक्रिय रहता है । <sup>47</sup> पुष्टिमार्ग में इस बात पर बहुत बल है कि ठाकुर जी की सेवा की तरह स्वमार्गियों की भी सेवा करनी चाहिए । आचार्य जी के सेवकों की सेवा का महत्व आचार्य जी की सेवा से कम नहीं है बल्कि उससे कहीं ज्यादा ही :

'तदीयेषु च तद्बुद्ध्या भरः स्थाप्यो विशेषतः ।

यथाद्वितीया भवति विषयिणां मतिस्तथा ॥

जैसे भाव श्री आचार्यजी में तासूं विशेष भाव भगवदीय में राखे, जैसे कामी पुरुष है तिनकी बुद्धि द्विती के विषे रहत है तैसें भगवदीय में बुद्धि राखे ... जैसे कामी पुरुष होय सो द्विती द्वारा परस्त्री को बुलावे सो काम तो परस्त्री सों वाको सिद्ध होय परंतु बीच में द्विती प्रसन्न होयके करे तो काम सिद्ध होय नातर नाही सिद्ध होय तातें जैसे द्विती प्रसन्न रहे सोहि कामी पुरुष करत है । तातें जो द्विती कार्य

को सिद्ध करत है तापरहू अधिक स्नेह होत है । तेसे ही जीव सब भगवान सों मिले तब ही यह जीव को कार्य सिद्ध होय परंतु भगवान हू भगवदीय के संग बिना न मिले भगवदीय द्वारा भगवान प्रसन्न होत है तातें भगवदीय में और भगवान में समान बुद्धि स्थापन करे ॥<sup>48</sup> क्योंकि तदीय आचार्यवल्लभ तक वैष्णव को पहुंचाने के माध्यम हैं, इसलिए ठाकुर जी के प्रति वैष्णव का सर्वस्व अर्पण तदीय के प्रति भी हो जाता है । भगवदीय यदि प्रसन्न हुए तो प्रभु को भी प्रसन्न हुआ समझना चाहिए : 'तदीयाश्चेत्स्वस्तुष्टास्तुष्टः कृष्णो न संशयः'<sup>49</sup> इसलिए वैष्णव को भगवदीयों की मन लगाकर सेवा करना आवश्यक है :

‘धनं गृहं यथाकृष्णो तथा भक्तिस्थितेऽपि च ।

विनियोक्त व्यमेवं हि प्रभाभाविो भविष्यति॥

भगवदीय में भाव भयो कब जानिये ? जैसे धन गृहादिक श्रीकृष्ण को समर्पित है भावसहित भगवत्सेवा करत हैं तेसे ही भावसहित भगवदीयकी सेवा करिये धनगृहादिक मनवचन कर्म सों स्नेह संयुक्त भगवदीय में विनियोग करिये तो भगवान प्रसन्न होय ॥<sup>50</sup>

एक गांव में कृष्णादास ब्राह्मण रहते थे । आचार्यजी के सेवक थे । बहुत ही निर्धन, रोज कमाकर लाएं तो पेट भरे । परिवार के नाम पर अकेली उनकी स्त्री थी । 'स्त्री स्वरूप में बहुत सुंदर और पतिव्रता और भगवद्धर्म में परम निपुण ।'<sup>51</sup> थोड़े में गुजारा चलता । 'सौ ऐसे परम पुनीत दोऊ जे धर्म के अर्थ अपनी शीश देवे की जिनके शंका नाहि ।'<sup>52</sup> उसी गांव में एक संपन्न बनिया भी था । उसने कृष्णादास की स्त्री को देखा और आसक्त हो गया । बनिया स्त्री को नित्य टोका करता, 'जो तू एक बार मेरे पास आवे तो जो तू मागे सो देउ ।'<sup>53</sup> एक दिन कृष्णादास आजीविका के लिए बाहर निकले हुए थे कि कुछ वैष्णव पाहुने आ गए । घर में कुछ था नहीं । स्त्री को अपार दुख हुआ, 'जो हमारे श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक कृपा क्वारि के हमारो घर आज पावन



कीयो सो मुट्ठी चना भी हमारे घर में इनके अगारि धरिवे को नाहि<sup>54</sup>  
 हे ॥ सो पति आवेगो देखे तो न जाने वाको कैसे दुःख होयगो ॥  
 स्त्री को कोई उपाय नहीं दिख रहा था । फिर बनिया की बात याद  
 आई । स्त्री ने सोचा कि अंततः उसे अपना शरीर ही गिरवी रखना  
 पड़ेगा । सो आज आपनो शरीर गहनें धरिके सामान लाऊं तो अपनी<sup>55</sup>  
 धरम रहे ... आज को पतिव्रत में वैष्णवन के अर्थ अरप्यो हें ॥  
 स्त्री बनिया के पास गई । रात में मिलने का कौल करके ज़रूरत भर की  
 सीधा-सामग्री ले आई । घर आए वैष्णवों को महाप्रसाद दिलवाया ।  
 तब तक कृष्णादास लौट आए थे । पत्नी की सारी बात सुनकर बहुत  
 प्रसन्न भये । स्वमागीय अतिथियों को संतुष्ट भाव से विदा किया ।  
 उस रात तेज बारिश हो रही थी । तब कृष्णादास जी ने स्त्री से कही  
 जो तू अपना शरीर बेचि आइ हें सो बनिया सों अपनी धर्म राखो जो  
 वाको तो प्राण देनों ही धौरो हें सो वासों तू बेगी जायकें मिलि सो  
 विचार तो वह करि रही हती परंतु वह पतिव्रता सो बिना पति की  
 आज्ञा पाम कैसे धरे ताते पति की मुख सों कहेवाय तब विचार कीयो  
 जो जैसे वाने वैष्णवन के लिए उत्तम सामग्री दीनी सो तेसें तू उत्तम  
 सामग्री बनि के उनके पास जा वह तो अपने मुख सों बोले नाहि तब  
 कृष्णादास जी ने अपने हाथ सों उबटना कीयो पावन में महावर लायो  
 काजर बेदी वस्त्राभूषण सब अपने हाथ सों धराए... तब पति ने कही  
 जो जल बहूत बरसे हें तुमारे वस्त्र भीजे तो उनको ग्लानि आवेगी सो  
 ठीक नाहि ताते मेरे कन्धा ऊपर बेठो वस्त्र ओढिकें जैसे तुमारे कल्लू<sup>56</sup>  
 बिगरे नाहि जैसे उनने उत्तम सामग्री दीनी तेसें तुमहू उत्तम बनि के जाओ ।  
 पत्नी को 'उत्तम सामग्री' की तरह कृष्णादास कन्धे पर बिठाकर बनिया  
 के पास ले गए । 'भावसिंधु' में लिखा है कि वह बनिया तो मूलतः देवी  
 जीव था । भगवदीयों का संग न मिलने के कारण लौकिक विषयासक्त  
 हो गया था । उसे सही वक्त पर चेतना आ गयी और वह स्त्री के साथ  
 कृष्णादास के पास चला आया । स्त्री ने अपने पति को (दरवाजा खोले

की) आवाज लाई । तब कृष्णादास जी ने मन में जानी जो अब ही कैसे चलि आई सो कृष्णादास जी अपनी स्त्री को देखिके खिजीवे लागे तब स्त्री ने कही जो मोसों क्यों खीजो हों कहने होय सो या बनीया सों कहो । तब बनीया तो सुनत ही गिर पयो और बहुत ही रोयो ।।<sup>57</sup> आगे लिखा है कि कृष्णादास ने बनिया पर कृपा करके उसे महाप्रभु जी के पास ले जाकर नाम दिलाया । सो बनीया पूर्ण भगवदीय होय गयो... और बनीया अपनी दुकान को काम दीन में करे रात्र में कृष्णादास को सतसंग करे... और नित्य विनती करे जो सामान चाहिए सो लाऊं जोई तनो संकोच क्यों करौ हो जो मोकों अपनी जानो मेरी अंगिकार करौ तब कृष्णादास जी ने कही जो नित्य को काम तो हमारो चलो जाय है जा दीन वैष्णव आवैं तादीन तुमारी सत्ता अंगिकार होयगी । सो बनीया कृष्णादास जी के कृपा भाव में जहां ताईं जीयो तहां ताईं नित्य आयो तातें संग करवो तो भगवदीय वैष्णव को करनो जो पूरण होय तो और को पूरण करि देय ।<sup>58</sup> इस प्रसंग पर अला से टिप्पणी करने की जरूरत नहीं । बनिया के पास अपनी पत्नी भोगार्थ ले जाने का कृष्णादास का कृत्य संप्रदाय के सिद्धान्तों के अनुकूल है । संप्रदाय में त्याग के दो भेद किए गए हैं - गौण त्याग तथा मुख्य त्याग :

‘यदुक्तमस्मदाचार्यगौणामुख्यविभेदतः ।

त्योग गृहधनादीनामथवा कृष्णायोजनम् ॥

जो अपने श्री आचार्य जी श्रीमहाप्रभु जी ने गौण और मुख्य भेद सों त्याग दोय प्रकार को संन्यास निर्णयादि ग्रंथ में कह्यो है तामें गृहधनादिक को त्याग है सो गौण त्याग है अथवा गृहधनादिक को श्रीकृष्ण में विनियोग करनो सो मुख्य त्याग है ।।<sup>59</sup> पत्नी भी चूंकि ‘उत्तम सामग्री’ ही है इसलिए भगवदीयों के निमित्त उसे बनिया को सोंपना मुख्य त्याग के अन्तर्गत गिना जाएगा ।

### अन्याश्रय प्रसंग

पुष्टिमार्ग जिस मुद्दे पर सर्वाधिक सज्ज, गैर समझौतावादी रुख अपनाता है वह अन्याश्रय है । पुष्टिमार्गीय सेवकों को यह निर्देश बार-बार और स्पष्ट रूप से दिया जाता है कि वे अपनी निष्ठा सिर्फ संप्रदाय के प्रति रखें तथा महाप्रभु वल्लभ को छोड़कर किसी अन्य के बारे में स्वप्न में भी न सौचें :

‘स्वाचार्यमात्र वाक्यैक निष्ठः सततभावुकः ।

तदीयजन संसृष्टः सर्वसंग विवर्जितः ॥

अपने श्री आचार्य जी के वचन - निबंध, श्री सुबोधिनी जी और षोडश ग्रंथादिक में निष्ठावारे, निरंतर भाववारे, भगवदीय सों मिलिकेवारे और दूसरी सर्वसंगते वर्जित होय ॥<sup>60</sup> पुष्टिमार्गीयों को सिर्फ वैष्णवों के साथ ही मेल मिलाप की अनुमति है । जो वैष्णव नहीं हैं उनसे किसी भी तरह का संबंध रखना घोर पाप है । फिर सवाल उठता है कि वैष्णव कौन ? क्या वे सभी भक्त जो विष्णु और उनके अवतारों - राम कृष्ण आदि के प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं, वैष्णव की परिभाषा में आएंगे ? मध्यकाल में तो माध्व संप्रदायी, निम्बार्क संप्रदायी, रामानंद संप्रदायी, गौडीय संप्रदायी - सब के सब अपने को वैष्णव कहते थे - क्या ये सब पुष्टि मार्ग की दृष्टि में वैष्णव हैं ? हरिराय कहते हैं :

‘अवैष्णव त्वं मंतव्यं तद्विरुद्ध जनेष्वपि ।

जीवेषु दोषा वत्स्वेवं तथा तत्साम्यवस्तुषु ॥

पुष्टि मार्ग ते विरुद्ध जो जन हैं तिनमें तथा भगवदीय में दोष बुद्धि वारे जो जीव हैं तिनमें हूँ ऐसे अवैष्णवत्व माननों... जो कोई पुष्टि-मार्ग की रीति सों विरुद्ध आचरण करे ताको अवैष्णव जानिये जो कोई पुष्टि मार्ग की रीति प्रमाण चलत है तिनकों वैष्णव जानिये ॥<sup>61</sup>

पुष्टि भक्ति को सर्वोच्च बताते हुए आगे कहा गया है कि :

‘पुष्टिभक्तिहीरास्यं तत्त्वस्मत्प्रभवः स्वयम् ।

त एव संश्रिताः संतः फलरूपा भवन्तिहि ॥

हरि भगवान को मुखारविंद है सो पुष्टिभक्ति है सो मुखारविंद तो अपने श्री आचार्य जी महाप्रभु जी आप हैं इनको श्रद्धापूर्वक आश्रय करे तो यह निश्चय फल रूप होय ॥<sup>62</sup> वैष्णव को केवल आचार्य जी में ही विश्वास होना चाहिए । जो अपने को आचार्य जी के समान कहते हैं वे असुर हैं : श्री आचार्य जी के चरण कमल में मन स्थापन करना तासों ही कृतार्थता है इसी निश्चय हृदय में करना और इनमें अन्य तथा बरोबर कहिये वारे के विषे आसुरपने को निश्चय करना ।<sup>63</sup>

‘विवेक धैर्याश्च’ ग्रंथ में महाप्रभु ने स्वयं लिखा कि वैष्णव को अविश्वास नहीं करना चाहिए । अविश्वास सिर्फ और सिर्फ बाधा उत्पन्न करता है :

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।

ब्रह्मास्त्र चातको भाव्यो प्राप्तं सेवेत निर्ममः॥<sup>64</sup>

वैष्णव के विश्वास के आदर्श चातक और ब्रह्मास्त्र हैं । उन्हें अहंता ममता रहित होकर सेवा करनी चाहिए । सेवकों के लिए यह स्पष्ट आज्ञा है कि सेवा सिर्फ पुष्टिमार्गीय नियमों, विधानों के अनुरूप होनी चाहिए । वैष्णव अपनी कल्पना, ज्ञान अथवा अनुभव का कोई प्रयोग न करे : मार्ग में निष्ठा अपने ज्ञान करिके न होय किंतु उसे गुरु के वचनमृत हो सों होय, और यह वचनमृत अपनी बुद्धि परिकल्पित न होय परंतु पुष्टि-मार्ग के सिद्धांत के अनुवाद रूप होय । अनुवाद अपनी बुद्धि ते न करना किंतु मूल क्रम ते प्राप्त अर्थ करना ता पीछे हूं यामें अपने श्री आचार्य जी को दृढ़ आश्रय चाहिए ॥<sup>65</sup>

पुष्टिमार्गीय सिद्धांतकारों में इस बात पर गंभीर चिंता है कि वैष्णव को किन लोगों के साथ रहना चाहिए और किन लोगों से दूर । कहा गया है कि स्वमार्गीयों के साथ रहने से भक्ति-भाव बढ़ता है अन्यथा इसका विपरीत घटित होता है :

‘तदीयेषु सदा स्थेयं सद्भावेनैव सर्वथा ।

त एव भक्ति मार्गस्य सहायत्वे निरूपिता ॥

सदा भगवदीय में सत्यभाव करिके ही निश्चय रहना काहे तें जो भगवदीय है सो भक्ति मार्ग की सहायता में निरूपित है ॥<sup>66</sup> केवल भगवदीय के साथ रहने का निर्देश देकर यह विशेष रूप से स्पष्ट किया गया कि किस तरह के भगवदीय संग करने योग्य हैं :

‘निरंतरं स्वमार्गीय सता संगं समन्वितैः ।

स्थेयं संसार विमुखैः स्वगुरुं प्राप्तेरपि ॥

निरंतर स्वमार्गीय सत्पुरुष के संग करिकें युक्त तथा अहंता ममतारूप संसार तें विमुख और अपने गुरु श्री मदाचार्य जी को अत्यंत नम्रीभूत स्ने<sup>67</sup> भगवदीय के संग रहे नो ।

एक पुष्टिमार्गीय वैष्णव के लिए सबसे बड़ा दुख क्या है ? हरिराय लिखते हैं कि विजातीय का साथ और उसके साथ संभाषण :

‘तदीयानां महद्दुःखं विजातीयेन संगमः ।

संभाषणं सजातीयैर संगो भाषणं च न ॥<sup>68</sup>

शिक्षा पत्र संख्या तीन में 1 - 7 श्लोकों तक दुःसंग से बचने का उपदेश है । श्लोक संख्या 8 में यह स्पष्ट किया गया है कि दुष्ट संग किसे कहेंगे :

‘यो वदत्यन्यथावाक्यमाचार्यवचनाज्जनः ।

संसृतिप्रेरको वाऽपि तत्संगो दुष्टसंगमः ॥

जो जन श्री आचार्य जी के वचन में अन्यथा वाक्य कहे अथवा अहंताममतात्मक संसार में आसक्ति करिवे की प्रेरणा करे तिनको संगे सौ दुष्ट संगे जाननो<sup>69</sup> ॥

दुष्टों से पुष्टिमार्गीय जन सावधान रहें और वे गलती से उनका स्थान न कर लें यह सुनिश्चित करने के लिए सिद्धांतकार ने दुष्टों की तीन कोटियां बनाई :

‘दुष्कर्मा कर्मदुष्टः स्यात् ज्ञानदुष्टोऽन्यथादृशिः ।

प्रीति शून्यो भक्तिदुष्टस्तत्तन्मार्गं गतस्त्यजेत् ॥

दुष्ट कर्मवारो कर्मदुष्ट होय, विपरीत दृष्टिवारो ज्ञानदुष्ट होय और प्रीतिशून्य भक्ति दुष्ट होय, तासों भक्ति मार्ग में रहिवे वारो इनको तजे ॥<sup>70</sup> पुष्टि मार्ग सबसे ऊपर है । पुष्टिमार्गीय इसलिए सर्वोच्च जन हैं । सर्वोच्च जन को अपने समतुल्य से ही संबंध बनाना चाहिए । कदाचित् ऐसा संयोग न बने तो किसी अन्य से संबंध बनाने के बजाए बहरा, गूंगा हो जाना ही श्रेयस्कर है :

‘तद्दुर्लभत्वे बाधिर्यं मूकत्वं वा वरं मतम् ।

वाचः प्रभूणां वदने दुर्जनानां भवन्ति न ॥

एसे भगवदीय दुर्लभ होय तब बधिरपनो और मूकपनो उत्तम है काहें तें जो दुर्जन के मुख में प्रभु के गुणगान की वाणी नाहीं होय ॥<sup>71</sup> एक संभावना यह बनती है कि अगर अन्य मार्गीय भी प्रभु का गुणगान कर रहा हो - तब क्या पुष्टिमार्गीय वैष्णव को भगवद्वाता के लिए उसके पास जाना चाहिए ?

‘म्लेच्छा नामिव गायत्री ततः श्रवणातः किमु ।

तत्सधर्मास्तत्र वर्णा अनुभावतिरोहिताः ॥

जैसे म्लेच्छ के मुख से गायत्री सुने तै कहु फल नाहीं होत है उल्टी बाधक

हे काहे तें जो उह आसुर को दुष्ट धर्म हे वादुष्ट के संग ते गायत्री के वर्ण जो अक्षर हे तामें आध्यात्मिक और आधिदैविक दोउ को तिरो-धान होय जाय केवल आधिभौतिक रहे ते सै हि वैष्णव के मुख ते सुनि के कथा वार्ता फलित न होय । उलटो बाधक होय जैसे गंगाजल सुंदर हे परंतु नीच जाति (चमार चांडालादिक) के पात्र में होय तो उह जल के संग ते प्रायश्चित्त करनों पड़े जो कुवे तो न्हानो पड़े या भाति पात्र भेद हे ।।<sup>72</sup> एक गुंजाइश यह बनती हे कि अगर पुष्टिमार्गीय वैष्णव महत्वाकांक्षी, जिज्ञासु हो और वह अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए स्वमार्गी गंधों से बाहर के गंध पढ़ने, जानने की इच्छा करे तो क्या इसकी अनुमति दी जा सकती हे ? हरिराय कहते हैं कि कदापि नहीं । पुष्टिमार्ग भक्ति तथा ज्ञान की उच्चतम स्थिति हे । इसमें आने के बाद वैष्णव की सारी जिज्ञासाएं निःशेष हो जानी चाहिये, तर्क के लिए कोई अवकाश नहीं बचना चाहिये :

‘तदुत्तरं न कर्तव्यमनुभूतेः परं किमु ।

यथालोके फले प्राप्ते न भोगादधिका कृतिः ।।

ताकों उत्तर (सामनों तर्क) जो पुष्टि मार्ग ते प्रतिकूल विचार (ज्ञान, कर्म, वेद, मर्यादाभक्ति इत्यादिक विरुद्ध धर्म के अनुसार विचार) नाहीं कर्तव्य हे जैसे लौकिक फल प्राप्त भयो तब वाको भोग करनो ये ही कर्तव्य हे और क्रिया अधिक नाहीं तेसें पुष्टिमार्ग को अनुभव भयो ता पाहें और को अधिक नाहीं जाननों ।।<sup>73</sup>

अगर वैष्णव में अन्याश्रय की गंध भी मांजूद पाई गई तो ? गुसाईं विट्ठलनाथ ने इस महदपराध के लिए कहा हे :

‘अन्य संबंध गंधोऽपि कंधरामेव बाधते

अन्य संबंध को गंधहू होय तो माथो ही कटे ।।<sup>74</sup>

बहिर्मुख को शारीरिक और मानसिक - दोनों तरह की क्षति होती है :

‘बहिर्मुखस्य बाधते दोषा देहिक मानसाः ।

क्षीणा धातो रिवार्त्तस्य रोगा वातिक पैत्तिकाः ॥

जैसे श्रीणाधातु रोगी होय तिनको वायु के तथा पित्त के रोग बाधा करे तैसे बहिर्मुख को देह संबंधी और मन संबंधी दोष बाधा करत है ॥<sup>75</sup>  
इसलिए वैष्णवों के हित में है कि वे अन्याश्रय से बचें :

‘नान्य देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।

नान्यत्प्रसाद मघाच्च नान्यदायतनं व्रजेत ॥

अन्य देव को नमस्कार न करनी, अन्य देव के दर्शन न करने, अन्य देव को प्रसाद नाही खानो और अन्य देव के मंदिर में नाही जानो ॥<sup>76</sup>

गुसाई विट्ठलनाथ कहते हैं कि जिसने हाथी की सवारी की हो वह भला गधे पर क्यों कर बैठे :

भगवत्पदपद्म परागजुषा नहिं युक्ततरं मरणोऽपि तराम् ।

इतरा श्रयणं गजराजधृतो नहि रासभमप्युरीकुरुते ॥

प्रभु के चरणारविंद की रज को सेवन करिवे वारे कूं मरण ते अधिक कष्ट प्राप्त होय तथापि ओर को आश्रय करनी योग्य नहीं है - जैसे हस्ति ने धारण कियो एसो पुरुष गर्भ को स्वीकार नाही करत है ॥<sup>77</sup> इस लिए वैष्णवों को आज्ञा दी गई है कि, ‘अन्य मार्गीय के पास न बैठिये अन्य संबंध होय जाय, अन्य मार्ग के धर्म सुनिये नाहीं, अन्य मार्गीय क्रिया कहु न करिये ...’<sup>78</sup> विचार के अलावा वैष्णवों को अन्न के मामले में भी पूरी सावधानी बरतनी चाहिए : ‘अवैष्णव को अन्य हो तथा पतित (चांडालादि तेली धोबी नीच) को अन्न तथा असमर्पित अन्न यह श्क्मांस (कुत्ता के मांस) (दृश है एसो अन्न खाये तें इंद्रिय बुद्धि सर्व नष्ट होय जाय



असुखत होय तथा असमर्पित अन्न खाय तो पितृ सहित नरक में जाय ॥<sup>79</sup>  
अंततः निष्कर्ष यह कि :

‘अन्याश्रयो महानेव बाधको भीयतां ततः ।

तत्क्षणे नैव सच्चेतो विमुखं च विधास्यति ॥

अन्याश्रय महान ही बाधक है तासों अन्याश्रय तें डरपनी काहे ते जो (जा  
क्षण अन्याश्रय भयो ता क्षण में ही) सत्पुरुष के चित्त को बहिर्मुख  
करेगो ॥<sup>80</sup>

यह जानने के लिए कि पुष्टिमार्गी अन्य मार्गियों के साथ कैसा  
व्यवहार करते थे तथा अगर किसी वैष्णव पर अन्याश्रय का आरोप लगा  
हो तो संप्रदाय उसके साथ कैसा सुलूक करता था, हम वार्ता साहित्य के  
कुछ उदाहरण देखें । ऊपर गुसाईं विट्ठलनाथ का जो श्लोक (‘भगवत्पद  
पद्म पराग जुषो...’) उद्धृत किया गया है, वह एक आज्ञा या  
उद्बोधन पत्र था । इसे गुसाईं जी ने पुष्टिमार्गी सेवक गोविंद दुबे के पास  
उस वक्त लिखकर भेजा था जब वे अन्य मार्गी मीरां बाई के घर रुके हुए  
थे । इसलिए सबसे पहले हम मीरां बाई प्रसंग ही देखें --

### मीरां प्रसंग

‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ में मीरां के जो उल्लेख मिलते  
हैं उससे लगता है कि उनके घर वैष्णव भक्तों, अतिथियों की भीड़ हमेशा  
लगी रहती थी । मीरां के यहां उनका बड़ा आदर सम्मान होता था ।  
एक बार महाप्रभु के सेवक गोविंद दुबे मीरां के घर चले गए : और एक  
समय गोविंद दुबे मीरांबाई के घर हुते तहां मीरांबाई सो भगवद्वाता  
करत अटके तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीरांबाई के घर  
उतरे हैं सो अटके हैं तब श्री गुसाईं जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो  
एक ब्रजवासी के हाथ पठायो तब वह ब्रजवासी चत्यो सो वहां जाय पहुंचो  
ता समय गोविंद दुबे संध्यावंदन करत हुते तब ब्रजवासी ने आयके वह

पत्र दीनों सों पत्र बांधि के गोविंद दुबे तत्काल उठे तब मीराबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे ने फिर पाहें न देख्यो ॥<sup>81</sup>

मीरा के एक पुरोहित थे रामदास । 'वार्ता' के अनुसार उन्होंने आचार्य जी महाप्रभु का सेवकत्व स्वीकार कर लिया था, 'सौ एक दिन मीराबाई के श्रीठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करते हुते सों रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन के पद गावत हुते तब मीराबाई बोली जो दूसरो पद श्रीठाकुर जी को गावो तब रामदास जी ने कह्यो जो अरे दारी रांड यह कौन को पद है कहा तेरे खसम को मूंड है जो जा आज ते तेरा मुंहडौ कबहूँ न देखूँ तब सब कुटुम्ब को लैके रामदास जी उठि चले तब मीराबाई ने बहुतेरो कह्यो परि रामदास जी रहे नाही पाहे फिरि के वाको मुख न देख्यो ऐसे अपने प्रभुन सों अनुरक्त हुते सों वा दिन ते मीराबाई को मुख न देख्यो वाकी वृत्ति छोडि दीनी फेरि वाके गांव के आगे होयके निक्से नाही मीराबाई ने बहुत बुलाये परि वे रामदास जी आये नाही तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यो रांड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभुन ऊपर समत्व नाही जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है हमारे तो श्री आचार्य जी महाप्रभु सर्वस्व हैं हम तो उनके हैं उन बिना हमारे सर्वस्व त्याग करनो उनके चरणारविंद को आश्रय राखनो ऐसी वृत्ति बहुतेरी होयगी । वे रामदास श्री आचार्य जी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं .... ॥<sup>82</sup>

पुरोहित रामदास ने जो पद गाया था उसे द्वारकादास पारीख के निजी संग्रह से डा० हरिहरनाथ टंडन ने अपने शोधग्रंथ में उद्धृत किया है । इस पद की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :

जय श्री वल्लभ अवतार

प्रकट भए पुरन पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार ।

तब ही प्रकट भये कसुदेव के तुम हरयो सकल भू भार ।

+                      +

युग युग राज करौ श्री गोकुल ब्रज में नित्य विहार ।

रामदास प्रभु सब भक्तन के जीवन प्राण आधार ॥<sup>83</sup>

‘रामदास की वार्ता’ में मीराबाई के प्रति जो उद्गार व्यक्त हैं, उसे अपमानजनक ही कहा जाना चाहिए । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी नोटिस ली थी : ‘वल्लभाचार्य जी की शिष्या होने के कारण मीराबाई को बहुत बुरा भला कहा गया है और गालियाँ तक दी गई हैं ।’<sup>84</sup> लेकिन डा० हरिहरनाथ टंडन ऐसा नहीं मानते, ‘दूसरी आपत्ति है मीरा को गाली देने की । इस सम्बन्ध में भी अन्यत्र लिखा जा चुका है कि पुरोहित के इस कथन का यह आशय ब्रजभाषा क्षेत्र से दूर रहने के कारण ही शुक्ल जी ने लगाया है । ब्रज की सामान्य बोलचाल में इस प्रकार ‘दारी’ और ‘रांड’ शब्द अपनी बहू बेटियों के लिए सहज में प्रतिदिन और प्रतिसमय बोले जाते थे और न बोलने वाला गाली देता है और न सुनने वाला उसे गाली समझता है । जैसे कुंभनदास जी ने अपनी भतीजी को मानसिंह के प्रसंग में ‘रांड’ कहा है ।’<sup>85</sup> शब्द को समूचे प्रसंग और वक्ता के अभिप्राय से काट कर देखने की अपनी सदाशयता के कारण ही टंडन जी ने (शुक्ल जी को अनजान साबित करते हुए) ऐसा निष्कर्ष निकाला है । हमने थोड़ी देर पहले ही देखा है कि पुष्टिमार्गियों को अन्य मार्गियों के प्रति किस तरह बर्ताव करने का निर्देश है । रामदास ने तो सिर्फ ‘दारी’ और ‘रांड’ कहा जबकि संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार आचार्य जी महाप्रभु का दासत्व स्वीकार न करने वालों को ‘असुर’ कहा जाना चाहिए :

असुराणामविश्वासस्तथा तत्संगिनामपि ।

मतिमोहो महादोषनिधानं संभविष्यति ।।<sup>86</sup>

पुष्टिमार्गीय सेवक संप्रदायेतर लोगों को तिरस्कार और हिकारत की निगाह से देखते थे । वे ऐसे अक्सर दूँढा करते थे जब उनका सार्वजनिक रूप से अपमान किया जा सके । मीरा प्रसंग एक बार फिर आया है ‘कृष्णदास की वार्ता’ में । कृष्णदास अधिकारी शुद्ध रूप से मीरा का अपमान करने के लिए उनके घर गये थे : ‘सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्दारीका गये हुते

सो श्रीरणाक्षोरजी के दर्शन करिकें तहां ते चले सो आपन मीराबाई के गांव आयो सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गये तहां हरिवंश व्यास आदि विशेष वैष्णव हुते सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह दिन भये हुते तिनकी विदा न भई हुती और कृष्णदास ने तो आवत ही कही जो हू तो चलूंगो तब मीराबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक महोर श्री नाथ जी को देन लागी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभुन की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं सो ऐसे कहिके कृष्णदास उहां ते उठि चले सो जब आगे आये तब एक वैष्णव ने कह्यो जो तुमने श्रीनाथ जी की भेंट नाहीं लीनी तब कृष्णदास ने कह्यो जो भेंट की कहा है परि मीरा बाई के यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करिकें भेंट फेरी है इतने एक ठोरे कहा मिल्ले यह हूं जानेगे जो एक बेर शूद्र श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को सेवक आयो हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरु की कहा बात होयगी ।।<sup>87</sup>

उक्त प्रसंगों से जाहिर होता है कि मीरां पर पहले तो बल्लभाचार्य की शरणा में आने के लिए दबाव बनाया गया लेकिन जब उन्होंने इसे स्वीकार न किया तो उनका अपमान किया जाने लगा । यहां यह जानना रोचक होगा कि मीरां प्रसंग वल्लभ संप्रदाय में अब भी जारी है । इन दिनों यह कोशिश की जा रही है कि मीरां को बल्लभाचार्य की शिष्या साबित कर दिया जाए । चूंकि मीरां का अपना कोई पंथ/संप्रदाय नहीं बना इसलिए ऐसी कोशिश आसानी से चलायी जा सकती है । पिछले दिनों वल्लभ संप्रदाय के मुख्य पीठ नाथद्वारा(राजस्थान) से वृहदाकार 'हीरक जयंती ग्रंथ' प्रकाशित हुआ है । इसमें बताया गया है कि मीरां 'पुष्टि मतावलंबी थी' । 'पुरोहित रामदास की वार्ता' को उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि 'उक्त प्रसंग में रामदास की गुरु के प्रति समर्पित भाव की प्रशंसा है । साथ ही यह उपदेश भी है कि क्रोध नहीं करे, क्रोध के कारणों पर नियंत्रण रहे । यहां मीराबाई

की यह महानता भी भलकती है कि वह सर्व दृष्टि गिरधर गोपाल के प्रति ही समर्पित थी । उसकी सांसारिक अन्य बातों में कोई रुचि नहीं थी । वह सम्पूर्ण शुद्ध पुष्टिभक्त थी एवं विनय की प्रतिमूर्ति थी ।<sup>88</sup> मीरा ने आचार्य वल्लभ की शरण में आकर आत्मनिवेदन नहीं किया था - इस पर यह स्पष्टीकरण है, 'शुद्ध पुष्टि जीव के लिए आत्मनिवेदन की दीक्षा की आवश्यकता नहीं होती । आत्मनिवेदन व ब्रह्म संबंध की दीक्षा उन जीवों के लिए आवश्यक है जो अपनी सही स्थिति को भूलकर निर्बल होगए हैं, उन्हीं को पुष्ट करने के लिए ब्रह्म संबंध का ज्ञान कराना आवश्यक होता है । मीरा तो बाल्यकाल से ही शुद्ध पुष्टि जीव थी ... ।'<sup>89</sup> आगे लिखा गया है कि 'मीरा का एक निश्चित दर्शन था और वह था बल्लभ दर्शन'<sup>90</sup> । शक की कोई गुंजाइश शेष न रहे इसलिए यह भी जोड़ा गया है कि मीराबाई वल्लभाचार्य की समकालीन थी व गुसाईं जी कट्ठलदास जी को मानसिक रूप से गुरुमान चुकी थी जिनके दर्शन की अभिव्यक्ति मीरा के काव्य में कूट-कूट कर भरी हुई है ।'<sup>91</sup>

अन्य मार्गियों से दूरी बरतने की आज्ञा पुष्टि सेवकों को थी ही, स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य इसका कड़ाई से पालन करते थे । 'जगतानंद सारस्वत ब्राह्मण की वार्ता' में आया है कि आचार्य जी धानेश्वर गए हुए थे । वहां जगतानंद सरस्वती कथा कह रहे थे । महाप्रभु जी ने उन्हें एक श्लोक के व्याख्यान पर टोक दिया । जगतानंद ने कहा कि शुकदेव जी की तरह आप ही आकर इसका व्याख्यान कीजिए । महाप्रभु ने कहा कि 'शुक देव जी तो लरिका है ।' महाप्रभु ने उस श्लोक का अर्थ कहना शुरू किया । व्याख्यान करते-करते तीन प्रहर बीते । आचार्य जी ने कहा कि इस श्लोक के व्याख्यान में दो-तीन महीने लगे । जगतानंद सरस्वती को नतमस्तक होना पड़ा, तब जगतानंद ने साष्टांग दंडवत कीनी और कह्यो जो महाराज मेरो घर पावन करिये तुम तो साक्षात् पूरन पुरुषोत्तम हो तब आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो तू तो अन्यमार्गीय है हम तेरे

घर कैसे पधारेंगे तब जगतानंद सरस्वती स्नान करिके आय ठाड़ी भयो  
और बीनती करके कह्यो जो महाराज मौकों कृपा करिके नाम दीजिये  
तब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन ने कृपा करिके नाम दीयो तब श्रीआचार्य  
जी महाप्रभु वाके घर पधारे ... ॥<sup>92</sup>

‘अन्यऽपि चोपदेष्टव्या यदि स्युरधिकारिणः’ यदि वैष्णव पात्रता  
देखे तो अन्य मार्गी को उपदेश देकर (सही रास्ते पर लाने का) अपना  
कर्तव्य पूरा करे ।<sup>93</sup> संप्रदाय के विस्तार की यह व्यावहारिक ज़रूरत  
है । ‘सो वाक्षत्री सों अन्यमार्गीय को स्नेह हुतो सो एक दिन वह क्षत्री  
अन्य मार्गीय के घर गयो तब वा क्षत्री सों कह्यो जो तुम आज यहां ही  
पाक करियो तब वाके आग्रह ते वा क्षत्री वैष्णवन ने पाक वहां ही  
कीयो तब पाक करिके वा अन्य मार्गीय ठाकुर के आगे श्रीनाथ जी को  
नाम लेके भोग समर्प्यो पाछे समयानुसार भोग सराय वाको प्रसाद दीयो  
पाछे आपने लियो पाछे उहां ही विश्राम कीयो सो निद्रा कस भये तब  
वा अन्यमार्गीय के सेव्य स्वरूप ने स्वप्न में कह्यो जो आज तो हम भूखे रहै  
तब वा अन्यमार्गीय ने कह्यो जो तुमकों तो वा वैष्णवने पाक भोग  
समर्प्यो हो और तुम भूखे कैसे रहि गये तब उनके सेव्य श्रीठाकुर जी ने  
कह्यो जो वह तो श्रीनाथ जी आप आरोगे हे हमको तो श्रीनाथ जी ने  
उहां ते दूर कीयो तब वह अन्य मार्गीय को मित्र सोयो हो ताको जगायो  
तब सब समाचार कहे तब वा क्षत्री ने कह्यो जो में तो सो केतीक बार  
कह्यो जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभुन को सेवक होय सो याही के लिये  
हमारे प्रभु जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन को कृपाते सेवक के हाथ को आरोगत  
हे पीछे वह अन्य मार्गीय सब कुटुम्ब सहित श्रीआचार्य जी महाप्रभुन की  
शरण आये सब समेत सेवक भयो ... ॥<sup>94</sup>

महाप्रभु बल्लभाचार्य के शुरुआती सेवकों में एक थे कन्नौज के  
दामोदरदास खत्री । दामोदरदास को ताबे का एक पत्र मिला । स्वप्न  
में आशा हुई कि जो इसे पढ़ेगा उसी की शरण में जाना । पत्र महाप्रभु

ने पढ़ा और दामोदरदास पत्नी सहित सेवक हुए । सेवा के नियमानुसार दामोदरदास के ससुर ने कहा कि जल भरने का काम लौंडी से कराओ । अगले दिन दामोदरदास ने पत्नी के हाथ में एक घड़ा दिया और एक घड़ा खुद लेकर ससुर की 'हाट केआगे होयके निकसे तब जल भरिके घर आये पाहे दामोदरदास को ससुर आयी सो आयके पावन पर्यो और विनती करिके कह्यो जो में चुकी अब ते तुमही जल भरौ परि स्त्री पास जल मति भरावो ... ॥'<sup>95</sup>

और एक दिन दामोदरदास श्रीठाकुर जी को राजभोग समर्पित के सह्या मंदिर में समारन गये तब देखें तो दुलीचा ऊपर बिल्ली ने बिगार दियो है, तब दामोदरदास ने कही जो श्री ठाकुर जी अपनी सेया हू राखि सकत नाही ऐसे कह्यो तब श्री ठाकुर जी ने धार चौकी ऊपर सों लात मारि के डार दीनी और दामोदरदास सों श्रीठाकुर जी ने कह्यो जो तू कैसो सेवक है सेवक होयके या भांति कहत है ऐसे बहुत खीजे पाहे दामोदरदास ने विनती कीनी मनुहार बहुत करी सामग्री सिद्ध करवाय के श्री ठाकुर जी को भोग समर्प्यो तब श्रीठाकुर जी आरोगे पर तोहु मास दोय लों बोले नाही ... ॥'<sup>96</sup> स्पष्ट है कि सेवक को अपनी सीमा भूल कर टीका टिप्पणी नहीं करनी चाहिए ।

बल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों में अन्याश्र की प्रथम घटना दामोदरदास स्त्री के साथ ही घटित हुई । हुआ यह कि एक बार श्री आचार्य जी दामोदरदास के घर लेंटे हुए थे। दामोदरदास उनके पाँव दबा रहे थे । आचार्य जी ने पूछा कि तुम्हारे मन में क्या किसी बात की इच्छा है । दामोदरदास ने कहा कि आपका अनुग्रह है तो किसी बात का मनोरथ रहा नहीं । आचार्य जी ने कहा कि अपनी स्त्री से पूछ लो । स्त्री ने कहा कि पुत्र ही तो अच्छा लो । आचार्य जी महाप्रभु ने 'एवमस्तु' कह दिया । पाहे श्री आचार्य जी महाप्रभु आप तो श्रीनाथ जी द्वार पधारे पाहे जब वाकें समय भयो तब स्त्री गर्भ-स्थित भई पाहे वा बाखर में कितनेक दिन में एक डाकौतिया आयी तब वाको सब साथ की स्त्री पूछन

लागी तब तामें ते काहू ने दामोदर दास की स्त्री सों कही जो अमुकी तु हू पूछि देखी जो कहा होयगो बेटा होयगो के बेटि होयगी पाछे वाकी लौंढी ने जायके का डाकौतिया सों पूछी जो दामोदरदास की स्त्री के कहा होयगो तब वा डाकौतिया ने कही जो बेटा होयगो पाछे श्रीआचार्य जी महाप्रभू कितनेक दिन में कन्नौज में पधारे तब दामोदर दास चरण कूवन लागे तब श्री आचार्य जी महाप्रभू ने कह्यो जो मोकों कूवे मति तोकों अनाश्रय भयो है तब दामोदरदास ने कह्यो जो महाराज में तो कछु जानत नाहीं हों। तब श्रीआचार्य जी महाप्रभू ने कह्यो जो तू अपनी स्त्री सों पूछि आउ तब दामोदरदास ने स्त्री सो पूछो जो तेने कछु अनाश्रय कीनो है सो स्त्री ने जो प्रकार भयो हुतो सो सब कह्यो सो बात श्री आचार्य जी महाप्रभू ने कही जो याके पेट में म्लेच्छ होयगो पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभू आय तो अडेल पधारे पाछे यह बात दामोदर दास की स्त्री ने सुनी तब ते श्री ठाकुर जी के पात्रादिक सेवा संबंधी वस्तु स्पर्श न करती और कहती जो मेरे पेट में म्लेच्छ है... जब प्रसूत के दिन आये तब दामोदरदास की स्त्री ने अपनी महतारी सों कहवाय पठाई जो मेरे पुत्र होयगो सो होत मात्र तू अपने घर ले जैयो हम वाको मुख देखेंगे तो हमारो धर्म नष्ट होयगो... पाछे वाकी महतारी ने स्त्रे<sup>97</sup> ही कीयो ... धाय को दे के बढो कीयो ।।

अन्याश्रय का परिणाम है घर में म्लेच्छ का जन्म । म्लेच्छ - जिस का मुंह देखते ही धर्म नष्ट हो जाता है । अन्याश्रय से इसीलिए डरना चाहिए । म्लेच्छ दर्शन क्या सभी स्थितियों में धर्म नाशक होता है ? एक म्लेच्छ वाता देतें : 'सो वे अलीखान पठाण पृथ्वीपती के पास सों तवीसा की हुकूमत लेके महावन में आय रहे और श्री गुसाईं जी के पास नित्य कथा सुनवें कूं आवते... ।'<sup>98</sup> म्लेच्छ-दर्शन उस स्थिति में धर्म नाशक नहीं होता अगर म्लेच्छ-विशेष हुकूमत से जुड़ा हुआ हो । हमने पहले अध्याय में इस मुद्दे पर पर्याप्त साक्ष्य देते हैं । यहां अलीखान की वाता को विस्तार से समझें । अलीखान ने एक दिन कथा में सुना, 'वृक्षो वृक्षो वेणुधारी पत्रे पत्रे चतुर्भुजः । यत्र वृंदावन तत्र लक्ष्मालक्ष्मकथाकुतः ।।' श्लोक सुनकर अलीखान ने मुनादी फिटवा दी कि अगर कोई ब्रज क्षेत्र में



वृक्ष का एक पत्ता भी तोड़ेगा तो उसे दंड दिया जाएगा ।<sup>99</sup> वा देश में एक तेली तेल लादक जातो हतो वानें एक वृक्ष की डार तोड़ी जब अलीखान ने वाको सगरो तेल वा वृक्ष में ढलवाय दिया तब सूं ऐंसो डर बठ गयो जो कोई ब्रज के वृक्ष को पत्ता न तोरे ।।<sup>100</sup> जो संप्रदाय के पक्षा में हो वह पुष्टिमार्ग के लिए स्वीकार्य है अन्यथा क्या म्लेच्छ, क्या ब्राह्मण - सब के दर्शन-स्पर्श-वर्चा मात्र से धर्म स्तरे में पड़ जाता है । अलीखान के पास एक शाही घोड़ा था । देखने में बहुत सुंदर । एक घड़ी में दूः कोस चलने वाला । गुसाईं जी का मन उस घोड़े पर आ गया । अलीखान पठान को पता चला । तब वा घोड़ा अलीखान ने श्री गुसाईं जी के पास पठाय दियो ।<sup>100</sup> वाताकार ने आगे लिखा है कि गुसाईं जी ने वह घोड़ा पहले स्वीकार नहीं किया था । जब अलीखान सेवक हुए तब स्वीकारा । फिर तो अलीखान की सेवा से प्रसन्न होकर श्रीठाकुर जी स्वयं उनके घर नृत्य करने जाने लगे : “जब अलीखान सेवा करने लगे तब अलीखान की बेटी हूं सेवा करने लगी । तब अलीखान की बेटी कुं श्रीठाकुर जी ने अनुभव करायो और संग मिलके नृत्य करते जब अलीखान कुं खबर पड़ी, जो भीतर कहा नृत्य को शब्द होत है जब अलीखान ने क्लिपके देख्यो तो श्रीठाकुर जी पधारे हैं और नृत्य करे हैं...”<sup>101</sup> जिन म्लेच्छों के बारे में, सिद्धांततः बड़ी घृणा है - देश को उनसे आक्रांत बताया गया है - “म्लेच्छाक्रातेषु देशेषु” । अगर वही पुष्टि सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण हो जाए तो (शंका/प्रश्न विहीन) दूसरे सेवकों में सवाल और शंकाएं उठ सकती हैं :

“और नित्य श्री गुसाईं जी श्रीगोकुल में कथा कहते और सब वैष्णव सुनते और अलीखान हूं नित्य कथा सुनिवे कुं आवते जब अलीखान आवते तब श्री गुसाईं जी कथा कहते । वैष्णवन के मन में आई जो म्लेच्छ आवे है ----- जब कथा बाचि हैं तब श्री गुसाईं जी सब वैष्णवन के मन की जानके एक दिन वैष्णवन सूं पूंछी जो काल कहा प्रसंग हतो जब कोई वैष्णव कहि सक्यो नहीं तब अलीखान ने हाथ जोड़ कर बीनती करी जो आपकी आज्ञा होय तो काल की कहूं अथवा आज्ञा होय तो जा दिन सूं कथा सुनू हूं सब

दिन की कहूँ ये सुनके श्री गुसाईं जी बहोत प्रसन्न भये सो वे अलीखान ऐसे कृपापात्र हते... ॥<sup>102</sup> प्रसंगवश यहाँ यह याद करना उपयोगी होगा कि शाही घोड़े की सवारी, इत्र, पंखा आदि के प्रयोग का अधिकार आलोच्य काल में बहुत कम लोगों को था । बादशाह अकबर ने विट्ठलनाथ जी को 'मानद-न्यायाधीश' की उपाधि देने के बाद विशेष फ़रमान जारी कर 'उनके पद के अनुकूल घोड़े की सवारी, दमामा, इत्र, पंखा आदि के प्रयोग का अधिकार प्रदान किया था ।'<sup>103</sup>

फिलहाल, हम अपनी मूल चर्चा अन्याश्रय पर आएँ । गुसाईं जी के सेवक हरिदास बनिया की वार्ता का एक प्रसंग है - 'हरिदास की एक बेटी हती सो हरिदास ने पुरोहित सों कही याकी सगाई करि आवो तब वह पुरोहित जैन धर्मीं कूं धनाढ्य जान के धन के लोभ सों सगाई करि आयो जब हरिदास सुन के कटु बोले नहीं और पुरोहित सों कही द्रव्य और बेटी ले जायके तुम विवाह करि देवो तब वा पुरोहित ने हरिदास सों द्रव्य लेके विवाह करि दियो और बेटी कूं भरभारे विदा कर दियो सो वे हरिदास ऐसे टैक के भगवदीय हते जिननें लौकिक निंदा सहन करि परंतु जैन धर्मीं को मुख न देख्यो ।'<sup>104</sup> एक अन्य मार्गीय के घर में जाकर बेटी ने भी 'घर को अनाचार देख के ये विचार कियो जो अन्न जल न लेंौ और देह त्याग करनो... ।'<sup>105</sup> आशय यह कि पुष्टिमार्ग से इतर 'अनाचार' ही संभव है और अनाचार वाले घर में रहने से अच्छा है आत्महत्या कर ली जाए ।

'विवेक धैयाश्रय ग्रंथ' में अन्याश्रय को बाधक बताते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तीन बातों पर विशेष रोक लगाई :

'अन्यस्य भजनं तत्र स्वगतोगमनेव च ।

प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥'<sup>106</sup>

अन्य देव का भजन, अन्य देव के मंदिर में जाना और किसी कार्य विशेष

की सिद्धि के लिए अन्यदेव की प्रार्थना - ये तीन बातें वर्जित हैं ।

अगर वैष्णव का अपना परिवार है और परिवार के अन्य सदस्य पुष्टि मार्ग के सेवक नहीं हैं तो ऐसे में वैष्णव को क्या करना चाहिए ? व्यवस्था देते हुए महाप्रभु बल्लभाचार्य लिखते हैं : 'उदासीने स्वयं कुर्यात्प्रतिकूलं गृहं त्यजेत्'<sup>107</sup> स्त्री पुत्र आदि उदासीन रहे तो वैष्णव<sup>को</sup> सेवा का सारा कार्य स्वयं करना है और यदि प्रतिकूल अर्थात् सेवा के विरुद्ध हों तो घर का त्याग करना है । हरिराय महाप्रभु की इस व्यवस्था में थोड़ा संशोधन करते हुए लिखते हैं कि वैष्णव घर न छोड़े वह प्रतिकूल लोगों को घर से निकाल बाहर करे :

‘यावच्छक्ति प्रकर्तव्यो ह्युपायस्तन्निवर्त्तते ।

प्रतिकूलं च तत्त्यागपर्यन्तं विहितं पुनः ॥

प्रतिबंध की निवृत्ति निमित्त अपनी शक्ति प्रमाण उपाय करना और (स्त्री पुत्रादिक) प्रतिकूल होय तो इनको त्याग करना ॥'<sup>108</sup> प्रतिकूल स्थिति में वैष्णव स्वयं त्याग करे या प्रतिकूल सदस्य का निष्कासन - इन दोनों व्यवस्थाओं में दूसरा विकल्प ही सहूलियत वाला है । मदन गोपाल दास कायस्थ की वार्ता ' इस प्रसंग में देखी जा सकती है : 'सो वे मदनगोपालदास महावन में रहते हते और नित्य स्नाने आय के श्री गुसाईं जी के दर्शन करते और फेर जायके घर में श्रीठाकुर जी की सेवा करते और श्रीठाकुर जी मदनगोपालदास सो हसते बोलते बातें करते जो चाहिये सो मांग लेते और एक दिन मदनगोपालदास के बेटा कुं बहोत ज्वर आयो तब मदनगोपालदास की स्त्री ने कानो कानो एक योगी के पास सुं दोरा कराय के और बेटा कुं बांध्यो तब मदनगोपालदास के श्रीठाकुर जी ने श्रीगुसाईं जी सो कही जो मदनगोपालदास कुं अन्याश्रय भयो है अब मैं यासुं बोलूंगो नहीं तब श्री गुसाईं जी ने श्रीठाकुर जी सुं विनती करी जो याकुं थोड़े दिन दह देनो परंतु एकाएक त्याग कर्यो नहीं चाहिये तब श्री ठाकुर जी चुप कर रहे फेर मदनगोपालदास ने

उत्थापन किये देखे तो श्रीठाकुर जी उदास बिराजे हैं तब मदनगोपालदास ने भोग धरे तब श्री ठाकुर जी ने लात सुं थाल फेंक दियो जब मदनगोपाल दास रोवे लगे और प्रणती करवे लगे तो हुं श्रीठाकुर जी माने नहीं तब मदनगोपाल दास श्री गुसाईं जी के पास आये और नेत्रन में सुं जल चलावे ला गयो और गदगद कंठ होय गये और धुजवे लगे और श्री गुसाईं जी सुं कीनती करी तब श्री गुसाईं जी ने आशा करी तेरी स्त्री ने अन्याश्य कर्यो हे जासुं श्री ठाकुर जी अप्रसन्न हैं । येबात सुनके मदनगोपालदास घर में आये और स्त्री कुं वाई क्षणा में जुदे घर में राखी और श्रीठाकुर जी की सब टहल हाथ सुं करन लगे... मदनगोपालदास ने दूसरे विवाह कर्यो वा स्त्री कुं त्याग दियो तब श्रीठाकुर जी प्रसन्न होय के बोल लगे... ॥<sup>109</sup> ज्वर ग्रस्त बेटे की कुश्लता के लिए व्याकुल मां की अपनी सामर्थ्य के अनुसार कोशिश अगर श्रीठाकुर जी को रुष्ट करती हुई अन्याश्य की कोटि में रख दी जाती है और इसके लिए साधनहीन स्त्री को घर से निकलवा कर ही श्री ठाकुर जी प्रसन्न हो पाते हैं तो यह उन (ठाकुर जी) की 'अपार उदारता' 'अगाध भक्त वत्सलता' पर स्वयं एक टिप्पणी है और जिस संप्रदाय के ये ठाकुर जी हैं उसकी हृदयहीनता का बेजोड़ प्रमाण !

### स्त्री शूद्राद्युद्धृतिक्षमः<sup>110</sup>

जिस तरह इस पर प्रायः सवन्निमति है कि भक्ति आंदोलन उदार, सहिष्णु, समताधर्मी, संवेदनक्षम और व्यापक था उसी तरह इस आंदोलन के सबसे बड़े संप्रदाय पुष्टि मार्ग को इन्हीं विशेषणों से जोड़ कर देखा जाता है । पुष्टि मार्ग पर शोध करने वाले सभी शीर्ष विद्वानों - द्वारकादास पारिख, प्रभुदयाल मीतल, दीनदयाल गुप्त, गोवर्द्धनाथ शुक्ल, हरिहरनाथ टंडन, रामकृष्ण शर्मा के अलावा आ० रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, धीरेन्द्र वर्मा आदि आलोचकों ने भी वल्लभ संप्रदाय की उदारता की एक स्वर से प्रशंसा की है । शोधकर्ता विद्वानों

का कहना है कि बल्लभ संप्रदाय दीक्षा देने में कोई भेदभाव नहीं करता। वह वर्ण, जाति, लिंग, धर्म, क्षेत्र आदि सीमाओं से ऊपर है। महाप्रभु बल्लभ और गुसाईं क्ठलनाथ के सेवकों में ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी शामिल हैं। इसके अलावा स्त्रियों, मुसलमानों अतिशूद्रों ( - अकूत चमार-चूहड़ा - चांडाल) को भी पुष्टिमार्ग में शामिल किया गया है। पुष्टि मार्ग मानता है कि जिनकी पहुंच वेदशास्त्रों तक नहीं है, उनका भी उद्धार हो सकता है। 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' देखें तो उनमें स्त्री सेविकाओं की बड़ी तादाद मिलेगी और साथ ही प्लेच्छ, चमार-चूहड़े भी। यही नहीं पुष्टि मार्ग के चुने हुए आठ रत्नों - अष्टदासी कवियों में से एक कृष्णदास अधिकारी शूद्र हैं। इसलिए गुसाईं क्ठलनाथ का यह कहना - 'स्त्री शूद्राद्युद्धतिक्षमः' - आचार्य जी महाप्रभु स्त्री शूद्र तथा अन्य प्राणियों (जीव मात्र) का उद्धार करने में समर्थ हैं, पूर्णतया सही है।

इसमें शक नहीं कि विद्वानों का उक्त निष्कर्ष उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक है। पुष्टिमार्ग ने सिर्फ तमाम तरह के ऊँच-नीच मनुष्यों का ही उद्धार नहीं किया अगर वार्ता ग्रंथों में आए वैष्णवों की सूची देखें तो उसमें मनुष्येतर प्राणी भी मिलेंगे जिनका उद्धार किया गया है। इन मनुष्येतर प्राणियों में प्रेत, हंस-हंसिनी, कबूतर-कबूतरी आदि हैं। असल में, प्राणियों के उद्धार का सवाल बल्लभ संप्रदाय के शुरुआती दौर में ही उठा था। महाप्रभु बल्लभाचार्य के सामने समस्या थी कि जीव तो पैदाइशी रूप से दोषयुक्त है और श्रीठाकुर जी दोष-रहित, गुण निधान इसलिए जीव का ब्रह्मसंबंध कैसे संभव है? इस समस्या का समाधान श्रीठाकुर जी ने स्वयं किया, "श्री द्वारकानाथ जी को मंदिर है तहां श्री आचार्य जी महाप्रभु बैठे हुते ता समय श्री आचार्य जी महाप्रभुन को महाचिंता उपजी जो श्री ठाकुर जी ने तो आशा दीनी है जो तुम जीवन को ब्रह्मसंबंध करावो तब श्री आचार्य जी महाप्रभु अपने मन में विचारें जो जीव तो दोषयुक्त है और श्री पुरुषोत्तम जी तो गुणनिधान

हैं ताते कैसे संबंध होय ताते चिंता उपजी सो अत्यंत आतुर भये ता समय श्री ठाकुरजी आप तत्काल प्रगट होयकें श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों पूछें जो तुम चिंता आतुर क्यों हो तब श्री आचार्य जी महाप्रभु आप कहें जो जीव को स्वरूप तो तुम जानत ही हो दोषवन्त है सो तुमसों संबंध कैसे होय तब श्रीठाकुर जी आप कहें जो तुम जीवन को ब्रह्म संबंध करावोगे तिन को हों अंगीकार कछंगे तुम जीवनको नाम देखे तिनके सकल दोष निवर्त होयेंगे... ॥<sup>111</sup> 'सिद्धांत रहस्य' नामक ग्रंथ के अनुसार ठाकुर जी का यह आदेश महाप्रभु को वि० सं० १५५० श्रावण शुक्ला एकादशी की मध्यरात्रि को प्राप्त हुआ था ।<sup>112</sup> ब्रह्म संबंध की दीक्षा पाने वाले प्रथम सेवक थे दामोदरदास हरसानी । श्रीठाकुर जी का आदेश इस ग्रंथ में लिखा है :

ब्रह्म संबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ।

सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः ॥<sup>113</sup>

आचार्य जी महाप्रभु ने स्वयं तत्त्वार्थदीप निबन्ध में कहा कि 'जो हमारे मार्ग में आवेंगे और अधर्म करेंगे और वेद निंदा करेंगे तोहूँ नरक में न जाएंगे और हीन योनी में जन्म लेवेंगे --

अत्रापि वेद निन्दायामधर्म करणात्तथा ।

नरके न भवेत्पातः किंतु हीनेषु जायते ॥<sup>114</sup>

यहां यह स्मरण करना प्रासंगिक होगा कि राम की शरण में आने पर तुलसी भी जीव को पाप्मुक्त हुआ बताते हैं और साथ ही शरण में आने के लिए जाति, धन और धर्म जैसी सामाजिक पहचानों को स्थगित/निरस्त कर देते हैं :

जाति पांति धन धरम बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥

सब तजि तुम्हहि रहै उर लाई । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराई ॥<sup>11</sup>

राम तो यह घोषणा भी करते हैं कि कौड़ों ब्राह्मणों का वध करने वाला अगर शरण में आए तो उसे भी स्वीकार कछंगा -

कोटि बिप्र बध लागै जाहू ।

आये सरन तजों नहिं ताहू ॥ <sup>116</sup>

इस उदारता के कारणों को समझने की आवश्यकता है । इसमें सबसे पहली बात तो यही कि संप्रदाय का विस्तार करने और उसमें अधिकाधिक लोगों को शामिल करने के लिए ऐसी उदारता अनिवार्य व्यावहारिक जरूरत थी । फिलहाल, और टिप्पणी करने से पहले हम स्त्री-शूद्र वैष्णवों की कुछ बातों पर नज़र डाल लें :

### रजो क्षत्राणी

रजो क्षत्राणी आचार्य जी की सेविका थीं । इनका विशेष महत्व इस बात के लिए है कि इन्होंने आचार्य जी से बढ़कर किसी को नहीं माना - यहां तक कि आचार्य जी महाप्रभु के पिता लक्ष्मण भट्ट को भी । 'सो वा रजो क्षत्राणी नित्य पक्वान सामग्री करि श्री आचार्य जी महाप्रभुन के लिये ले आवती सो श्री आचार्य जी महाप्रभू आरोगते वाको नित्य नेम हुतो... ।' एक बार अपने पिता लक्ष्मण भट्ट के श्राद्ध के दिन महाप्रभु ने ब्रह्मभोज का आयोजन किया था । इसमें घी की ज़रूरत आ पड़ी । महाप्रभु ने एक वैष्णव को रजो के यहां से घी लाने को भेजा । तब रजो ने वा वैष्णव सों कह्यो जो घृत काहे को चाहियत है तब वा वैष्णव ने कह्यो जो आज श्री लक्ष्मण भट्ट जी को श्राद्ध दिन है सो ब्राह्मण भोजन को बुलाए गये हैं सो थोरो घृत रसोई में घट्यो है तातें मंगायो है तब रजो ने कह्यो जो मेरे तो धृत नाहीं है तब वह वैष्णव फिर आयो । महाप्रभु ने उसे दुबारा भेजा, रजो ने फिर भी नहीं दिया । महाप्रभु ने तीसरी बार भी कोशिश की, 'जो अब के फेरि जा और कहियो जो श्री आचार्य जी महाप्रभू खीजत हैं ताते धृत देउ तबहुं नाहीं दियो तब श्री आचार्य जी महाप्रभू सों कह्यो जो महाराज रजो धृत नाहीं देत श्री आचार्य जी महाप्रभूने और ठौर ते काम चलायो तब रात्री कों रजो पक्वान लेके आई तब रजो को देखिकें श्री आचार्य जी

महाप्रभु पीट दे बैठे तब रजो ने कही जो महाराज मेरो अपराध कहा है तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो तेरे धृत बहुतो तो सामग्री कहाँ ते कर लाई तब रजो ने कह्यो जो हूँ लक्ष्मण भट्ट की लोंडी तो नाही मेरे धृत हुतो ताते न दीनी तुम्हारे धृत हुतो सो क्यों न दीनी तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो में श्रीठाकुर जी को धृत क्यों करके देउ तब रजो ने कही जो में श्रीठाकुर जी को धृत क्यों करके देउ तब आप बोले नाही तब रजो ने सामग्री आगे राखी और कही जो राज आरोगो तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो आज श्राद्ध दिन है ताते दूसरी बार लेनो नाही... तब रजो के आग्रह ते श्री आचार्य जी महाप्रभु ने आरोगी ।<sup>118</sup> आशय यह कि पूर्ण समर्पण के बाद धन गृहादिके सब श्री आचार्य जी या ठाकुर जी का हो जाता है और सेवक उसे किसी अन्य निमित्त में नहीं ला सकता ।

### एक छात्राणी

जैसा पहले कहा गया कि आर्त्त भाव सांप्रदायिक सेवा के मूल भावों में से एक है । सेवा में मन लगाए रहने से ही आर्त्त भाव बना रहता है । छात्राणी की वार्ता में यही संदेश दिया गया है । छात्राणी सूत कात कर गुजारा करती । सूत की बिक्री से जो पैसा आता उससे सेवा-सामग्री खरीद लाती । एक बार पैसा बचाकर उसने दस बारह दिन की सामग्री खरीदी । श्रीठाकुर जी ने उसको शिक्षा देने के लिए एक ही दिन में सारी सामग्री आरोगी । तब वह छात्राणी देख के छाती कूटन लगी और कहन लगी जो यह सामग्री तो तुम्हारे ही लिए दिन दस बारह को करि राखी हुती यह तुमने कहा कीयो जो आज ही आरोगे तब श्री ठाकुर जी ने कह्यो जो कहा तू लेखो करिके आज ही निवरी तेने आलस के लिए इक ठौरी कर राखी हुती सो कहा नित्य नई होती तब वह छात्राणी बोली जो महाराज मेरो अपराध क्षमा करो अबते नई सामग्री



नित्य प्रति करिके संपूर्णों से श्री ठाकुर जी याके लिए आरोगे जो दिन दस बारह को निश्चंत (= निश्चिंत) होती तो याको आरत रखती नाहीं ।<sup>119</sup> आशय यह कि सेवक को निश्चिंतता विहित नहीं । उसे सेवा में लगे रहना चाहिए, सामग्रीनित्य नहीं होनी चाहिए क्योंकि 'श्री ठाकुर जी तो उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं ।'

### एक ब्राह्मणी

ब्राह्मणी 'निपट निष्कलन' थी । आंखों ने साथ लगभग झोड़ दिया था । महाप्रभु ने उसके 'माथे श्री बालकृष्ण की सेवा पधराई' हुई थी । वैष्णवों के बीच चर्चा का विषय था कि वह ब्राह्मणी किस तरह सेवा कर पाती होगी । शंका समाधान के लिए श्री आचार्य जी महाप्रभु 'आप अशरण शरण अन्तरयामी वा ब्राह्मणी के घर पधारे सो ता समें वह ब्राह्मणी रसोई करत हुती रौटी करिके धी सोंचुपरत जाय और श्रीठाकुर जी आप आरोगत जाय परि वाकों तो कछु दीसत नाही हाथ सों टटौरे कहें जो रौटी आगें दीसत नाही कहा मूस बिलाई ले जात है... श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने वा डोकरी सों कह्यो जो अरी बाई तेरोबडौ भाग्य है जो तेरी करी रोती श्री ठाकुर जी आप आरोगत हैं... पाहें श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने वैष्णवन सों कह्यो जो श्री ठाकुर जी तो केवल स्नेह के वश हैं ताते मेरी कान सों श्रीठाकुर जी आरोगत है और उनकी भक्ति मान लें हैं तब वैष्णव मुसिकयाय के चुप करि रहे ।'<sup>120</sup> श्री ठाकुर जी स्नेह के वश हैं, एक निर्धन नेत्रहीन वृद्धा पर अनुग्रह कर सकते हैं बशर्ते वह आचार्य जी महाप्रभु की शरण में हों ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने न तो किसी वेश्या को शरण में लिया और न ही किसी चूहड़े-चमार को । गुसाईं विट्ठलनाथ ने ही इन्हें नाम सुनाए । पुष्टिमार्ग का सर्वाधिक विस्तार भी उन्हीं के कार्यकाल में हुआ ।

## एक वेश्या की बेटि

वैष्णव का सान्निध्य किसी में भी वैष्णवता ला सकता है  
 ऐसा कि इस वेश्या की बेटि के साथ हुआ । गुजरात के साठोदरा  
 नागर वैष्णव एक बार दूसरे वैष्णव के साथ रास्ते से गुजर रहे थे ।  
 रास्ते में एक वेश्या के घर में उसकी बेटि को नृत्य करते देखा ।  
 साठोदरा वैष्णव जहाँ के तहाँ खड़े रह गए । उन्हें विश्वास हो गया  
 कि नाचने वाली देवी जीव है । साथी वैष्णव ने यह गति देखी तो  
 वह अपने घर चला गया । साठोदरा वैष्णव उस देवी जीव को अकेले  
 कैसे छोड़ते, सो उसे अपने घर ले आये और रात्री कुं न्हवाय के शृंगार  
 करायके और अष्टाक्षर मंत्र सुनायके श्री ठाकुरजी के संनिधान नृत्य करायो  
 और श्रीठाकुर जी वा को गान सुनके बहुत प्रसन्न भये ।<sup>121</sup> अब साथ  
 छोड़कर जाने वाले वैष्णव का दुर्भाग्य देखिए । श्री ठाकुर जी ने फैसला  
 किया, 'मैं अब तुमारे घर में नहीं विराजूंगे तुमने वां साठोदरा वैष्णव  
 को वृथा दोष देख्यो है तब वो वैष्णव साठोदरा वैष्णव के पावन  
 पर्यो और अपराध क्षमा करायो ।'<sup>122</sup> अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा  
 बाधकस्तु सः' (विवेक धैर्याश्च ग्रंथ में महाप्रभु की आज्ञा) । उधर देवी  
 जीव वेश्या की बेटि ने, 'आखी रात नृत्य कर्यो जब सवारो भयो तब  
 तब वाकुं कछु देह की सुधी रही नाहीं भगवदावेश में मग्न भई ।'<sup>123</sup> उसके  
 घर वाले उसे किसी तरह आकर ले गए । लेकिन वह देवी जीव जो ठहरी ।  
 'सो घर के आदमीन की दृष्टि बचाय के वा वैष्णव के घर आई वहाँ  
 आच्छी रीति सूं बोली और भगवद्वाता करी... या वा रीत सूं नित्य  
 करे वाके घर के मनुष्यन ने राजद्वार में पुकार करी जो या वैष्णव ने  
 हमारी बेटि कुं बावरी कर दीनी है जब राजा के मनुष्य वा वैष्णव कुं  
 पकड़ के ले गये जब राजा ने वा वैष्णव कुं देख्यो तो वैष्णव परम भगवदीय  
 हतो भगवत्तेज वाके मुख पर बिराजे है तब राजा बोल्थो ये झूठी बात  
 है ये मंत्र जंत्र कछु करे नहीं... अब वे बाई वैष्णव के घर में आयके रही

हतने में श्रीगुसाईं जी पधारेवा बाई कुं नाम निवेदन करायो ।<sup>124</sup> ठाकुर जी ने आज्ञा दी कि 'मेरी सेवा शृंगार ये बाई करेगी तुम रसोई की सेवा करौ ।' अन्य वैष्णव घरों में ऐसे यह दायित्व उल्ट जाता है । 'वे वैष्णव जब व्यावृत्तिकुं (आजीविका हेतु घर से बाहर) जाय तब वा बाई सुं श्रीठाकुर जी बोले बतलावें ।'<sup>125</sup> वैष्णव की अनुपस्थिति में ही श्री ठाकुर जी बाई से संभाषण करते थे । अब, जैसी उनकी मर्जी ।

### एक वैश्या की वार्ता

आचार्य जी महाप्रभु के एक सेवक थे माधोदास । वैष्णव होने के बावजूद 'माधोदास बड़ो विषयी हुतो ताने घर में वैश्या राखी हुती तातें सब वैष्णव माधोदास की निंदा करते... एक दिन श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने माधोदास सों पूछी जो क्यों रे माधोदास तेने घर में वैश्या राखी है तब माधोदास ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों कह्यो जो महाराज मेरो मन आसक्त भयो है तासों राखी है तब आचार्य जी महाप्रभु आप चुप कर रहें ।' माधोदास के इस कृत्य से नाराज वैष्णवों ने महाप्रभु से पूछा, 'महाराज अब लों तो आपकी कानि ही परि अब तो तुम्हारे आगे कह्यो तासों तुमने तो कछु न कही ।' महाप्रभु ने कहा कि उसका मन सचमुच आसक्त है पर श्री ठाकुर जी को उसका मन बदलते दैर नहीं लगेगी । यही हुआ 'तब कितेक दिन पाहें माधोदास की बुद्धि श्री ठाकुर जी ने फेरी तब तो वा ने वैश्या दूर कीनी ।'<sup>127</sup> लेकिन संप्रदाय की मान्यता है कि अगर किसी 'दुष्ट' का वैष्णव से सत्संग हो जाए तो उस दुष्ट (या दुष्टा) की बुद्धि निर्मल हो जाती है । माधोदास द्वारा परित्यक्त वैश्या के साथ भी यही हुआ । वा वैश्या कुं जब सुं माधवदास ने त्याग करी तब ते वे लूण और टिकड़ा खाती हती और घी नहीं खाती हती ।<sup>128</sup> वह वैश्या गुसाईं जी के दर्शन को गई । लोगों ने उसे बता दिया कि गुसाईं जी तुम्हें शरण में नहीं लेंगे । तब 'वैश्या ने अन्न जल छोड़ दियो और प्राण छोड़वे को संकल्प कर्यो ।' वैष्णवों ने गुसाईं जी से फरियाद की 'जा दिन तें माधवदास जी ने वाको त्याग कियो

हे वा दिन ते या ने वेश्यापनो छोड़यो हे... और आपके पधारवे की बाट देखे हे ... याते आप कृपा करके वाकुं शरण लेवें तो ठीक । गुसाईं जी ने कृपा की । नाम निवेदन कराया । फेर कितेक दिन पीछे श्री गुसाईं जी की कृपा ते श्रीमदनमोहन जी सानुभाव जतावन लागे ।<sup>129</sup>

वार्ता ग्रंथ वल्लभाचार्य और किट्ठलनाथ की महिमा का बखान करने के साथ उनके सेवकों को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हैं और इसीलिए ये ग्रंथ वैष्णवों के 'विचरनों' का 'जस्टीफिकेशंस' भी तैयार करते हैं । वेश्याओं की वार्ताएं इसी औचित्य निरूपण का हिस्सा हैं ।

### गंगाबाई की वार्ता

गंगाबाई की मां गुसाईं जी की सेविका थीं । इनका (इनकी माता का) चित्त हर वक्त गुसाईं जी के स्वरूप में लगा रहता । और वाके मन में श्री गुसाईं जी के स्वरूप में कामबुद्धि रहती होती ।<sup>130</sup> पुष्टि मार्ग के विद्वान डा० रामकृष्ण शर्मा के अनुसार गंगाबाई की माता का नाम रूपमती था तथा वे बहुत ही सुंदर और धनवान थीं ।<sup>131</sup> रूपमती महावन में रहती थीं । जो गोकुल से दो मील दूर पूर्व में स्थित है । गुसाईं जी के प्रति काम बुद्धि के कारण रूपमती का गोकुल आना रोक दिया गया । वार्ता के अनुसार रूपमती 'विप्रयोग की भावना सूं श्री गुसाईं जी को ध्यान करत होती एक दिन वाकुं स्वप्न भयो जब वाकुं गर्भ स्थिति भई सो वे गंगाबाई जन्मे तब इनकी माता तो भगवल्लीला में प्राप्त भई ।'<sup>132</sup> अनाथ गंगाबाई को महावन से गोपालपुर लाया गया । उन्हें बहुत छोटी अवस्था (डा० रामकृष्ण शर्मा के अनुसार ६ साल) में ही गुसाईं जी ने 'ब्रह्म संबंध' करवा दिया था । गंगाबाई में पद रचने की प्रतिभा थी । अपने पदों में इन्होंने 'श्री किट्ठल गिरिधरन' का प्रयोग किया है । श्रीनाथ जी की प्राकट्यवार्ता में लिखा है कि 'एक दिन श्रीनाथ जी ने श्रीहरिराय जी कुं मेवाड में कही जो गंगाबाई कुं वस्त्र

आभूषण अति सुंदर पहिराय के रात कुं जगमोहन में बैठा देवो तब  
बैठा देवी तब रात कुं जगमोहन में ते श्रीनाथ जी गंगाबाई कुं देहसहित  
लीला में ले गये ।<sup>133</sup>

### एक राजपूत की बेटी

चाचा हरिवंश संप्रदाय के अत्यंत प्रतिष्ठित वैष्णव थे । गुसाईं  
जी ने उन्हें कई दायित्व सौंप रखे थे । वे दूर दराज के सेवकों से द्रव्य  
लाते थे, नए लोगों को पुष्टिमार्ग में दीक्षित करते थे और वैष्णवों में  
किसी बात पर शंका हो तो समाधान करते थे । चाचा हरिवंश एक बार  
कहीं से लौट रहे थे । रास्ते में उन्हें राजपूत बाप बेटी जाते हुए दिसे ।  
चाचा हरिवंश ने जान लिया कि ये देवी जीव हैं । इन देवी जीवों से  
सत्संग की लालसा में चाचा हरिवंश उनके साथ हो लिए और सांझ कुं  
विन के घर उतरे और भगवद्वातां करी और सब के मन भिजाय दिये. . .  
और राजपूत बेटी को वातां सुनके श्री गोवर्धननाथ जी में मन लग गयो  
और विरह ताप भयो और श्री गोवर्धन नाथ जी वा रात कुं वाके पास  
पधारे और सब सुख दिये ।<sup>134</sup> इतना ही नहीं, श्रीनाथ जी ने कृपा  
करी तब वा राजपूत की बेटी कुं श्रीनाथ जी संग लैके पधारे ।<sup>135</sup> वैष्णव  
प्रसन्न हो तो श्रीठाकुर जी को तो प्रसन्न होना ही पड़ेगा, चाचा जी  
की कृपा तें वे बेटी श्रीनाथ जी के संग लीला में गई वा राजपूत ने जाती  
देखी ।<sup>136</sup> लीला में पधारने का सौभाग्य बेटी को ही क्यों, मुझे  
क्यों नहीं ? राजपूत ने चाचा जी के पांव पड़ कर विनती की । तब  
चाचा जी ने कही जो तुमकुं हुं ले जाएंगे परंतु हाल तुमसुं कारज करावनी  
है और वे राजपूत सुनके प्रसन्न भयो ।<sup>137</sup> जाना तो सभी को है पर  
श्रीनाथ जी की इच्छा से - चाचा जी के इस सत्य कथन पर सदेह नहीं  
किया जा सकता ।

### एक वेश्या जिसपर कृष्णादास अधिकारी की कृपा हुई

---

कृष्णादास अष्टकाप के कवि तो थे ही श्रीनाथ जी के मंदिर के मुख्य अधिकारी भी थे । एक बार मंदिर का सामान खरीदने आगरा जाना हुआ । बाजार में एक वेश्या नृत्य कर रही थी । कृष्णादास भी उधर चले गए तब वह वेश्या कृष्णादास के आगे नृत्य करने लगी ।<sup>138</sup> कृष्णादास का अनुमान सही था, वह वेश्या बहुत सुंदर और गावें बहुत आहों नृत्य ते सोई करे सो कृष्णादास वा वेश्या के ऊपर रीफें और मन में कहे जो यह तो श्रीनाथ जी के लायक है ।<sup>139</sup> फिर से याद करें कि श्रीनाथ जी सिर्फ 'उत्तम वस्तु के भोक्ता' हैं । कृष्णादास ने वेश्या को दस मुद्रा दी और रात में अपने डेरे पर बुलाया । रात्रि पहर गई तब वेश्या समाज सन्नि आई तापाहें नृत्य भयो गान भयो वापे कृष्णादास बहुत रीफें सो रुपैया सत एक दिये ।<sup>140</sup> कृष्णादास उसे साथ लेकर ही श्रीनाथ जी मंदिर वापस आए । उस वेश्या को मंदिर में गाए जाने लायक भजनस्र बीच सिखा दिया । तीसरे दिन वेश्या का मंदिर प्रांगण मणि कोठा में नृत्य हुआ । वार्ता के अनुसार पद गाते गाते जब वेश्या आखिरी तुक पर आई तो 'इतनों कहत मात्र वा वेश्या के प्रान ततकाल निकसि गये और दिव्य स्वरूप धरि के श्रीनाथ जी की लीला में प्राप्त भई ।'<sup>141</sup> वेश्या को लीलास्थ पाकर समाजी रौने लो । तब कृष्णादास ने कह्यो जो तुम क्यों रोवत हो चली नीचे खायवे को देखूं तब उन समाजीन को नीचे लायकें कृष्णादास ने सत्स रुपया दे बिदा किये । वार्ता में लिखा है कि 'कृष्णादास ने अपने मन ते समर्पी ताते श्री नाथ जी ने वा वेश्या को अंगी-कार करी ।'<sup>142</sup>

इन बातों को देखते हुए निःसंकोच स्वीकारा जा सकता है कि बल्लभ संप्रदाय में साधारण गृहणियों से लेकर वेश्याओं तक को जगह मिली थी और कई स्त्रियों को तो श्रीठाकुर जी तत्काल अंगीकार करके अपनी लीला में ले गए थे ।

### एक बनिया की वार्ता

---

दास्य धर्म अपनाने वाले दास हो जाते हैं और दो दासों के बीच अंतर कैसा ? बल्लभ संप्रदाय के वैष्णवों के बीच इसी कारण खान पान में भेदभाव प्रायः नहीं बरता जाता । एक बनिया पहले देवी उपासक था । बाद में गुसाई जी की शरण में आया । दूसरे संप्रदाय से आने वालों को स्वभावतः अधिक महत्त्व मिलना चाहिए । संप्रदाय में आने से पूर्व बनिया पादुकार (जूता चप्पल) बेचने का धंधा करता था । गुसाई जी का सेवक बना तो यह धंधा छोड़ दिया । उसे सेवक बने अभी दस पंद्रह दिन ही हुए थे कि एक ब्राह्मण वैष्णव उसके घर आए । बनिया ने ब्राह्मण का आदर सत्कार किया और महाप्रसाद लिवाया । पाकें ब्राह्मण कुं खबर पड़ी जो ये बनिया थोड़े दिन पहले मोची को धंदो करतो हतो तब वाके मन में बहुत ग्लानी उपजी जो या बनिया के हाथ को क्यों सायो तब वा ब्राह्मण कुं कोढ़ निकस्यो । कोढ़ से मुक्ति पाने के लिए ब्राह्मण को वैष्णवों की जूठन खानी पड़ी । पुष्टिमार्ग के सुदृढीकरण और वैष्णवों के बीच न्यूनतम एकता स्थापन के लिए ब्राह्मण का प्रायश्चित्त एक व्यावहारिक जरूरत ही था ।

### चूहड़ी बहारवाला

---

रामानंदी संप्रदाय अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध था । स्वयं रामानंद के सेवकों में निम्न वर्ग के लोगों की पर्याप्त संख्या थी । यह संप्रदाय गंगा की तलहटी में बहुत तेजी से फैला । अन्य प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों की तुलना में अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में यह संप्रदाय आगे था । इस संप्रदाय में निचली जातियां, अछूत, स्त्रियां और सद्य धर्मान्तरित मुसलमान बड़ी संख्या में थे । गल्ला की गद्दी से संबद्ध नाभादास इसी संप्रदाय के थे । नाभादास को परंपरया डोम जाति का माना जाता है । रामानंदी

संप्रदाय से किसी मामले में कमतर न साबित हो शायद इसी मकसद से दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता में एकाधिक चूहड़ों की वार्ताएं शामिल की गई : 'सो वह चूहड़ो नित्य गोकुल की गल्ली भाङ्गो और मन में ऐसे जानतो श्री गुसाईं जी ठकुरानी घाट पर पधारे हैं इनके चरणारविंद में कूरो क्वरो न लगे ।' गुसाईं जी की सेवा करने के कारण यह चूहड़ा विद्वान भी हो गया जैसे भक्तमाल के रचयिता नाभादास, 'वैष्णव जूठन की पातर ढारते सो वह लेतो वैष्णव की जूठन जो खार्ह तब वाकुं दिव्य दृष्टी भई सब मारग कीरीति वाकुं समझ पड गई और वेदशास्त्र को ज्ञान होय गयो जैसे नाभाजी कुं भयो ह्यो सो विननें भक्त-माल करी है ।' एक बार काशी के कुछ पंडित गुसाईं जी से शास्त्रार्थ करने आए । उन पंडितों ने चूहड़े को जूठन देना चाहा । चूहड़े ने मना कर दिया । उन्होंने रोटी देनी चाही । चूहड़े ने कहा कि यह अन प्रसादी है । श्री ठाकुर जी कुं भोग नहीं धरी है सो मैं नहीं लेउंगो... तुमारी ये रसोई सब जूठन की है ।' मौका देखकर चूहड़े ने अपना ज्ञान प्रदर्शित किया, 'तब वेदन के तथा शास्त्रन के वचन वा चूहड़ा ने कहे जब वे पंडित सुन के चकित होय गये और कहन लो जिनके चूहड़ा ऐसे पंडित हं वे कैसे होवेंगे ।' पंडितों ने वाद करने का विचार छोड़ दिया, वापस चले गए । गुसाईं जी को किसी ने यह घटना सुनाई । वे बोले, 'जो या चूहड़ा ने शुद्ध भाव सों वैष्णव की जूठन लीनी है सो याकुं सब ज्ञान होय गयो यामें कहा आश्चर्य है ?'

### एक चुहड़ो की वार्ता

गोवर्धन में रहने वाला चूहड़ा रोज घास खोदने जाता । वहां श्रीनाथ जी उसे दर्शन देते, बातें करते । एक दिन वह चुहड़ो गोपालपुर सुधी श्रीनाथ जी के संग बातें करते आयो तब श्री गुसाईं जी ने देख्यो तब श्री गुसाईं जी ने बोलाय के वाकुं पूछी जो श्रीनाथ जी तो सुं कहा बात करी तब वाने कही महाराज वन की बात करते हते नित्य मोकुं आपकी कृपा तें दर्शन वन में देवे हैं । श्रीनाथ जी का प्रिय जान उस



चूहड़े को गुसाईं जी ने मंदिर में दर्शन करने की विशेष अनुमति दी, जो राजभोग की माला बोले तब याकुं सब सुं पहले दर्शन कराय देवो ये करके बाहर जाय तब औरन कुं करावो । एक बार चूहड़ा नियत समय पर पहुंच न सका । मंदिर के द्वार पर ताला लगा देखते ही वाको चित्त उदास होय गयो और ज्वर चढ गयो फेर मंदिर के पीछे जायके पड रह्यो... वाको दुख श्रीनाथ जी सहि न कर सके फिर श्रीनाथ जी ने छुडी लेके भीत कुं खोद के मोखो कर दियो और मोखा से सुं वाकुं बुलावे लगे तब वह उठ के ठाढो भयो और श्रीनाथ जी के दर्शन किये और श्रीनाथ जी ने वाकुं दौय लडुवा दिये । यह खबर फैल गई कि श्रीनाथ जी के मंदिर के पिछले हिस्से में छेद किया गया है । गुसाईं जी उदास हो गए । मंदिर में सामानों की गिनती हुई । कुछ गायब नहीं था । तब वा चुहुडो ने श्री गुसाईं जी सों जायके वीनती करी ये मोखो तो श्रीनाथ जी ने कियो हे मोकुं दर्शन देवे के लीये । वास्तविकता जानकर गुसाईं जी ने फिर से आज्ञा की कि जब ये (चूहड़ो) दर्शन करवे आवे तब सबसुं पहले सब समय में दर्शन कराय देने और याकुं नित्य पातर धरनी ।

### श्री गुसाईंजी के सेवक एक चूहड़ो की वार्ता

यह चूहड़ा बिलकु कुंड पर रोज घास काटने जाता था । बिलकु कुंड के सामने से श्रीनाथ जी का मंदिर दिखता । चूहड़े को वहीं से श्री नाथ जी के दर्शन होते । एक बार मंदिर के अधिकारी ने ऊंची दीवाल खड़ी करवाई । मंदिर दिखना बंद हो गया । श्रीनाथ जी ने चूहड़े को स्वप्न में आज्ञा दी कि गोकुल जाकर श्रीवल्लभ जी (गुसाईं जी के पुत्र) से कहो कि दीवाल गिरवा दें । चूहड़े की मंदिर के द्वार पर जाने की हिम्मत न हुई । लगातार तीन दिन तक स्वप्न में आज्ञा होती रही तब जाकर चूहड़े ने मंदिर के पोरिया (द्वारपाल) से कहा कि चूहड़ो वीनती करवे आयो है । पोरिया ने ऐसा कहने सेमना कर दिया । लोग इकट्ठे होयके दूर-दूर करवे लो । खबर श्री वल्लभ जी तक पहुंची ।

उन्होंने बाहर आकर बूढ़े से पूछा । बूढ़े ने स्कांत में बताया कि श्री नाथ जी की स्वप्न में ऐसी आज्ञा हुई है कि मैं आप से ही दीवाल गिराने की बात कहूं । तब आपने उठके वा भंगी कुं गले सु लगायो और मोटो उत्सव मान्यो और फेर गोपालपुर आये वे भीत पढाय डारी श्रीनाथ जी कुं सामे विलहू कुंड दीखवे लाये ।

ऐसी उदारता की सराहना की जा सकती है पर ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि बल्लभ संप्रदाय का उद्देश्य भक्तिमार्ग के विस्तार के साथ सामाजिक भेदभाव भी दूर करने का था । प्रतिद्वन्द्वी संप्रदायों के बीच इतनी उदारता आवश्यक थी । स्मरण करना चाहिए कि तुलसी के राम भी शबरी के बेर खाते हैं, निषाद को गले लगाते हैं, लेकिन वे प्रथमतः और मूलतः विप्र हित ही प्रकट हुए हैं । बल्लभ संप्रदाय भी विप्रहित की ही कामना करता है, लेकिन उसका तरीका तुलसी की तरह प्रकट नहीं, प्रच्छन्न है, उसकी शब्दावली मोहक है, व्यवहार उदार है । निर्गुण मत प्रसार से मुकाबला करने के लिए यह रणनीति ज्यादा कारगर थी । गोस्वामी हरिराय बल्लभ संप्रदाय की स्थापना का उद्देश्य प्रकट करते हुए लिखते हैं :

‘धर्म संस्थापनाथाय यस्य प्राकट्य मुच्यते ।

स हि धर्मव्यतिकरं स्वकृतं सहते कथम् ॥

धर्म के स्थापन के लिए श्रीमहाप्रभु जी तथा श्री गुसाईं जी को प्राकट्य है सो उचित है प्रभु सदा धर्म की रक्षा करी है ... श्री विट्ठल पुरुषोत्तम रूप है धर्म स्थापनार्थ प्राकट्य है तासों जे कोई वेद धर्म को अतिक्रम करे अपने मनमानि क्रिया करे उन्मत्त होय सो प्रभु को न सुहाय ॥’

‘ब्रह्मयो धेनु विप्रेशो वेद धर्मेक पालकः ।

स कथं सहते कृष्णास्तद्विरोध जनेः कृतम् ॥

श्रीकृष्ण ब्राह्मण की रक्षा करिवे वारे हैं, धेनु और ब्राह्मण के ईश हैं वेद धर्म के मुख्य प्रतिपालक हैं सो श्रीकृष्ण ब्राह्मण गाय और वेदधर्म,

इनको विरोध जिनने कियो हे सो कैसें सहेंगे ?

बल्लभ संप्रदाय की स्त्री शूद्र के प्रति उदारता का रहस्य वेद धर्म की रक्षा करना ही रहा है ऐसा संप्रदाय के आचार्य स्वयं स्वीकार करते हैं । संप्रदाय में शामिल लोगों पर जिस तरह प्रतिबंध है वह हमने इस अध्याय में देखा ही लिया । अगले अध्याय में हम बल्लभ संप्रदायी कवियों का विशेष अध्ययन करेंगे और यह पता लगाने की कोशिश करेंगे कि ये कवि संप्रदाय के अनुशासन से किस तरह बंधे थे, किस तरह बल्लभ विट्ठल और उनके वंशजों का गुणगान कर अपने को कृतार्थ समझते थे ।

संदर्भ

1. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पुष्टि दृढाव, पृ० 519
2. वही, पृ० 520
3. वही, पृ० 516
4. बड़े शिक्षा पत्र
5. वही, पृ० 179
6. वही, पृ० 316-17
7. वही, पृ० 184
8. वही, पृ० 144-45
9. वही, पृ० 82
10. वही, पृ० 20
11. वही, पृ० 239
12. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृ० 538
13. चौरासी वैष्णवन, पृ० 220
14. दो सौ बावन, पृ० 502
15. भाव सिंधु, पृ० 3
16. वही, पृ० 4
17. वही, पृ० 5

18. वही, पृ० 6-7
19. सर्वोत्तम नामाकली, पृ० 66
20. वही, पृ० 33
21. वही, पृ० 32
22. भावसिंधु, पृ० 8
23. वही, पृ० 9-10
24. चौरासी वैष्णव, पृ० 3
25. भावसिंधु, पृ० 18-19
26. वही, पृ० 14
27. वही
28. वही, पृ० 16-17
29. चौरासी वैष्णव, पृ० 7
30. भावसिंधु, पृ० 17
31. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 168-69
32. चौरासी वैष्णव, पृ० 9
33. वही, पृ० 10
34. वही, पृ० 13
35. वही, पृ० 10-11
36. वही, पृ० 11
37. भाव सिंधु, पृ० 35
38. वही
39. वही, पृ० 35-36
40. वही, पृ० 35
41. वही, पृ० 37
42. वही
43. वही, पृ० 41
44. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 208
45. चौरासी वैष्णव, पृ० 117
46. वही, पृ० 122

47. परमानंद दास और वल्लभ संप्रदाय, गोवर्धननाथ शुक्ल, पृ० 174
48. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 19-20
49. वही, पृ० 20
50. वही
51. भाव सिंधु, पृ० 189
52. वही
53. वही, पृ० 190
54. वही, पृ० 191
55. वही, पृ० 192
56. वही, पृ० 198-99
57. वही, पृ० 202
58. वही, पृ० 207
59. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 187
60. वही, पृ० 228
61. वही, पृ० 51
62. वही, पृ० 267-68
63. वही, पृ० 144
64. वही, पृ० 192
65. वही, पृ० 130
66. वही, पृ० 112
67. वही, पृ० 195
68. वही, पृ० 361
69. वही, पृ० 48
70. वही, पृ० 369
71. वही, पृ० 322
- 72.. वही, पृ० घ/घ
73. वही, पृ० 268
74. वही, पृ० 18
75. वही, पृ० 243

76. वही, पृ० 112, यह श्लोक मूलतः हारीत स्मृति का है जिसे बड़े शिक्षा पत्र के टीकाकार (हरिराय के छोटे भाई) गोपेश्वर जी ने अपने संप्रदाय के अनुकूल होने के नाते उद्धृत किया है ।
77. वही, पृ० 48
78. वही, पृ० 48
79. वही, पृ० 134
80. वही, पृ० 111
81. चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृ० 147
82. वही, पृ० 189-90
83. वार्ता साहित्य एक वृहत अध्ययन, डा० हरिहर नाथ टंडन, वल्लभ रिसर्च इंस्टीट्यूट, ज्जीपुर (मथुरा) के तत्वावधान में भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित, 1960, पृ० 250
84. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
85. वार्ता साहित्य, टंडन, पृ० 214
86. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 254
87. चौरासी वैष्णव, पृ० 313-14
88. हीरक जयंती ग्रंथ, प्रधान सम्पादक - भगवती प्रसाद देवपुरा, प्रकाशक साहित्य मंडल, नाथद्वारा, 1997, पृ० 201
89. वही, पृ० 203
90. वही, पृ० 205
91. वही, पृ० 205 - इस शोध पत्र के लेखक हैं श्री प्यारेलाल पारख । पारख जी पेशे से वकील हैं । कहा जा सकता है कि वल्लभ संप्रदाय बदले परिवेश में अपने मार्ग की महिमा की अभिवृद्धि के लिए 'प्रोफेशनल्स' का सहारा ले रहा है ।
92. चौरासी वैष्णव, पृ० 173-74
93. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 208
94. चौरासी वैष्णव, पृ० 216-17
95. वही, पृ० 21

96. वही, पृ० 23
97. वही, पृ० 27-28
98. दो सौ बावन वैष्णव, पृ० 89
99. वही, पृ० 90
100. वही, पृ० 90
101. वही, पृ० 90-91
102. वही, पृ० 91
103. अष्टहापेतर पुष्टिमागीय कवि : सिद्धांत और साहित्य, डा० रामकृष्ण शर्मा, पृ० 23
104. दो सौ बावन, पृ० 85
105. वही, पृ० 85
106. वही, पृ० 406
107. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 380
108. वही, पृ० 379
109. दो सौ बावन वैष्णव, पृ० 405-6
110. गुसाईं विठ्ठलाथ ने अपने लघु ग्रंथ 'श्री सर्वोत्तम स्तोत्र' में महा प्रभु वल्लभाचार्य को स्त्री, शूद्र और जीव मात्र का उद्धार करने में समर्थ बताया है । ग्रंथ विद्या विभाग, कांकरोली द्वारा प्रकाशित है । चतुर्थ संस्करण 2054 विक्रमी, पृ० 13
111. चौरासी वैष्णव, पृ० 1-2
112. अष्टहापेतर पुष्टिमागीय कवि, पृ० 17
113. दो सौ बावन वैष्णव, पृ० 503
114. वही, पृ० 503
115. रामचरित मानस, अयोध्या कांड
116. वही
117. चौरासी वैष्णव, पृ० 47
118. वही, पृ० 48-49
119. वही, पृ० 178-79

120. वही, पृ० 13
121. दो सौ बावन वैष्णव, पृ० 126
122. वही, पृ० 127
123. वही
124. वही, पृ० 128
125. वही
126. चौरासी वैष्णव, पृ० 67
127. वही
128. दो सौ बावन वैष्णवन, पृ० 264
129. वही, पृ० 265
130. वही, पृ० 137
131. अष्टहापेतर पुष्टिमार्गीय कवि, पृ० 68
132. वही, पृ० 137
133. 'श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता', हरिराय, विद्या विभाग,  
नाथद्वारा संवत् 2053, पृ० 68, इस संशोधित संस्करण में  
उद्धृत प्रकरण को अत्यंत संक्षिप्त करके लिखा गया है। यह  
उद्धरण 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', पृ० 138  
से है।
134. दो सौ बावन, पृ० 309
135. वही
136. वही
137. वही
138. चौरासी वैष्णवन, पृ० 323
139. वही
140. वही
141. वही, पृ० 324
142. वही
143. दो सौ बावन, पृ० 195



144. वही, पृ० 269
145. 'इन्वोकिंग द पास्ट', संपादक दाउद अली, ओ. ए. यू. पी.,  
1999, पृ० 380
146. दो सौ बावन, पृ० 316
147. वही, पृ० 317
148. वही
149. वही
150. वही
151. वही, पृ० 305
152. वही
153. वही
154. वही, पृ० 305-306
155. वही, पृ० 492
156. वही
157. बड़े शिक्षा पत्र, पृ० 259-60
158. वही, पृ० 260

## अध्याय - चार

### पुष्टिमार्गीय अनुशासन में कवि और कविता

कविता की प्रकृति मुक्तिधर्मी होती है और भक्तिकालीन कविता के बारे में तो यह बात बहुत जोर-शोर से कही-सुनी जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इस पर प्रायः आम सहमति है कि भक्तिकाल में राजाश्रय की चिंता रचनाकारों ने नहीं की - प्रमाण स्वल्प कुंभनदास का पद उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकाला जाता है कि भक्त कवि लोकाश्रय में ही गुजर बसर करते रहे। भक्ति काल के बारे में इस आम धारणा की यत्किंचित् चर्चा हमने पहले अध्याय में की है। इस धारणा से जुड़ी एक दूसरी धारणा की चर्चा इस अध्याय में अपेक्षित है। यह धारणा तुलसी की एक अधाली में इस तरह व्यक्त होती है -

कीन्हें प्राकृत जग गुणगाना ।

सिर धुनि गिरा लागि पखिताना ॥

आशय यह कि भक्त कवियों के सामने सिर्फ उनके इष्टदेव ही रहे। अपने आराध्य के सिवा उन्होंने साधारण मनुष्यों की स्तुति में शब्द नहीं सरचे। सारी कविता विष्णु के अवतारों राम और कृष्ण को संबोधित है, भक्त कवि राजा, महाराजा, सामंत या मठाधीश के सामने कभी नतमस्तक नहीं हुआ। उसकी चेतना स्वाधीन थी। इस स्वाधीन चेतना ने दासत्व स्वीकारा तो सिर्फ ईश्वर का। सांसारिक भोगों से वह निर्लिप्त था, अट्टालिका खड़ी करने की चिंता उसे थी नहीं, इसलिए वह कभी दरबार की शरण में नहीं गया। उसने कविता की स्वायत्तता की भरपूर रक्षा की, उसे तुच्छ भौतिक लक्ष्यों को पाने का माध्यम नहीं बनाया। ऐसा स्वाधीन चेतन कवि न तो पूर्ववर्ती युग आदि-काल में मिलता है और न परवर्ती युग - रीति काल में। दरबार का

प्रलोभन भक्ति काल के आगे-पीछे दोनों युगों के कवियों को भटकाता रहा । इनके बीच भक्त कवि कीचड़ में कमल की तरह बैदाग बना रहा । उसने न तो संरक्षण की चिन्ता की और न कविता के लिए किन्हीं बाहरी निर्देशों को स्वीकार किया - निर्देश चाहे राजा के हों, शास्त्र के या आचार्य के । भक्त कवियों ने खुद कविता की विषय-वस्तु चुनी, कविता का रंग-रङ्ग, भाषा, आकार-प्रकार स्वयं तय किया । अपने से इतर किसी बाहरी सत्ता का हस्तक्षेप उसने कभी स्वीकार नहीं किया ।

भक्ति आन्दोलन का गौरव गान करने वाली यह सामान्य धारणा पूर्णतः निराधार नहीं है । लेकिन, यह भ्रामक ज़रूर है । जैसा कि पहले अध्याय में संकेत किया गया, दो विपरीत उद्देश्यों वाले भक्ति आन्दोलनों को एक साथ मिलाकर देखने की प्रवृत्ति (और चतुर प्रविधि) का यह स्वाभाविक परिणाम है । निर्गुण सत्तों के बारे में यह बात ज़रूर कही जा सकती है कि न तो वे राज्य सत्ता से अनुदान, संरक्षण पाने के लिए लालायित दिखे और न ही उन्होंने किसी धर्माधिकारी, आचार्य या मठाधीश की स्तुति में अपनी कृतार्थता देखी । गुरु रामानंद के प्रति उनमें कृतज्ञता भाव अवश्य है, लेकिन वह पूर्ण समर्पण का वाचक नहीं बनता । और, सबसे बड़ी बात तो यह कि इस धारा की कविता भूल कर भी शास्त्रों की मुखापेक्षी नहीं होती । निर्गुण कविता किसी बाहरी निर्देश से अनुशासित नहीं होती, वह अपने लिए निर्देश खुद तय करती है । उसपर न शास्त्र का दबाव है, न आचार्य का आतंक । इसके विपरीत सगुण कविता आचार्य के निर्देशों पर शास्त्रों के सहारे बनती है । हाँ, इतना ज़रूर है कि वह बीच-बीच में शास्त्रीय मयादाओं का उल्लंघन आचार्य के ही निर्देशानुसार होता है । और, इस क्रम में शास्त्र के मूल विधान की जाति भी नहीं होने पाती । आचार्य शुक्ल ने जब यह लिखा कि कवि आचार्य के निर्देशों को भावगम्य बनाने के लिए कविता करते थे तो उनके सामने सगुण भक्ति धारा के ही कवि थे । निर्गुण भक्ति धारा की कविता कैसे बनती है, इस पर उन्होंने अलग से विचार

किया था । सगुण कवियों को ध्यान में रखते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा था, 'भागवत धर्म या वैष्णव धर्म की जो परंपरा भारतवर्ष में चली उसमें ज्ञान का स्थान अलग रहा है और प्रेम या भक्ति का अलग । प्रत्येक संप्रदाय के ज्ञान पक्ष या सिद्धांत पक्ष का प्रतिपादन आचार्य लोग करते थे और प्रेम या भक्ति भाव का जनता में संचार आइवार लोग भजन-कीर्तन द्वारा करते थे ।'<sup>1</sup> सगुण भक्ति मार्ग में बल्लभ संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय और गौडीय संप्रदाय पर जो शोध हुए हैं वे शुक्ल जी की बात को प्रमाणित करते हैं । इन संप्रदायों के कवि बहुलांश में अपने आचार्यों के निर्देशों से ही अनुशासित होते आए हैं । सगुण और निर्गुण धाराओं की कविता की निर्भेदिकता के फर्क पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण ही परवर्ती आलोचक शुक्ल जी को इसके लिए कोस सकते हैं कि उन्होंने कवि नामक स्वतंत्र प्राणी को अनुकरण करने वाला, दोयम दर्जे का बता दिया है ।

पिछले अध्याय में हमने उन शक्तों / मर्यादाओं की विवेचना की जो पुष्टिमार्गीय वैष्णवों पर लागू होते हैं । हमने पाया कि आदर्श वैष्णव संप्रदाय के विधि-निषेधों के मजबूत ताने-बाने के बीच स्थित होता है । संप्रदाय की सेवा पद्धति उसके दैनिक कार्यकलापों से लेकर सौच-विचार तक की 'कंडीशनिंग' करती है । इस अध्याय में हम संप्रदाय के कवियों पर लागू होने वाले अनुशासनों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे । जैसे तो वल्लभ संप्रदाय में कीर्तनकारों, कवियों की पर्याप्त संख्या रही है, लेकिन प्रस्तुत अध्याय में हम अपना ध्यान मुख्य रूप से अष्टहापी कवियों पर केन्द्रित करेंगे ।

मध्यकाल की सामान्य जानकारी रखने वालों को पता है कि अष्टहाप की स्थापना का प्राथमिक उद्देश्य साहित्य की श्रीवृद्धि करना नहीं था । यह पुष्टिमार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति के व्यापक उपक्रम का एक अंश था । गुसाईं विठ्ठलनाथ ने संप्रदाय की सेवा भावना को

व्यापकता और व्यवस्था दी । इन्होंने ही अपने और अपने पिता वल्लभाचार्य के चार-चार शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की । पुष्टिमागीय सेवाविधि के दो क्रम हैं । पहला, नित्य सेवा तथा दूसरा, वर्षोत्सव सेवा विधि । नित्य सेवा विधि में श्रीनाथ जी की सेवा प्रातःकाल से लेकर शयन पर्यन्त की जाती है । इस सेवा विधि में वात्सल्य भक्ति की प्रधानता है ।<sup>2</sup> नित्य सेवा के आठ समय निश्चित किए गए हैं - मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती तथा शयन । आठ समय की सेवा के द्वारा वैष्णव का मन सुबह से लेकर रात तक लगा रहता है । इससे विचलन की संभावना कम हो जाती है । आठ पहर की सेवा का अष्टछाप से भी सम्बन्ध है । प्रत्येक प्रहर की सेवा के अक्षर पर अलग-अलग तरह के भजन गाए जाते हैं । आठों कवि बारी-बारी से अष्ट याम की सेवा में उपस्थित होकर भजन गाते रहेंगे - कवियों की संख्या निर्धारित करने के पीछे गोसांई विठ्ठलनाथ का शायद यही उद्देश्य रहा होगा । वर्षोत्सव की सेवा साल भर चलती है । इसमें श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओं के उत्सव, षट् ऋतुओं के उत्सव, लोक-त्योहार और वैदिक पर्वों के उत्सव तथा अन्य अवतारों की जयंतियां सम्मिलित हैं ।<sup>3</sup> नित्य और वर्षोत्सव दोनों प्रकार की सेवा विधियों के तीन अंग मुख्य हैं - शृंगार, भोग और राग । पुष्टिमागीय कवि तीसरे अंग-राग की पूर्ति के माध्यम हैं । अलग-अलग अक्षरों पर समयानुक्रम रागों में वे पद-रचना करते हैं ।<sup>4</sup> अष्टछाप कवियों का अधिकांश काव्य नित्य और वर्षोत्सव के कीर्तन रूप में ही कथित हुआ है ।<sup>4</sup> प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है, 'सांप्रदायिक मंदिरों में जिन नित्य और नैमित्तिक उत्सवों की व्यवस्था की गई थी, उनमें गाए जाने के लिए भजन-कीर्तन के पदों की आवश्यकता होती थी । महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के समय में ही सूरदास आदि भक्त कवियों ने इस प्रकार के पदों की रचना आरंभ कर दी थी और उनके गायन के द्वारा वे श्रीनाथ जी का कीर्तन किया करते थे । गोसांई

विठ्ठलनाथ जी ने उस कार्य को और भी व्यवस्थित रूप से किया । उन्होंने 'अष्टहाप' द्वारा सांप्रदायिक कवियों के काव्य को प्रोत्साहन दिया, जिसके कारण संप्रदाय के प्रचार में भी सहायता मिली ।<sup>5</sup> इस प्रकार अष्टहाप से श्रीनाथ जी की सेवा को पूर्ण और चित्ताकर्षक बनाया गया, साथ ही संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में भी इसका उपयोग हुआ । आचार्यद्वय का सिद्धांत निरूपण संस्कृत में ही था, अष्टहापी कवियों ने उसे भाषा में उतार कर जन सामान्य तक पहुंचाया । बल्लभ संप्रदाय की प्रतिष्ठा और विस्तार में उनका बड़ा योगदान रहा ।

प्रभुदयाल मीतल ने विभिन्न स्रोतों की खानबीन करके अष्टहाप का स्थापना वर्ष स० 1602 वि० तय किया है ।<sup>6</sup> संप्रदाय में अष्टहाप को 'अष्ट सखा' कहा जाता है । ये आठों महानुभाव श्रीनाथ जी की मूल लीला के सखा हैं जो संवत् 1556 में श्रीनाथ जी के स्वरूप के प्राकट्य के साथ उनकी सेवा के लिए इस धरती पर अवतरित हुए । 'श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' में श्री द्वारकेश जी कृत एक छप्पय में इन अष्ट सखाओं के नाम (उनके मूल नाम सहित) दिए गए हैं :

सूरदास सो ती कृष्ण, तोक परमानंद जानो ।  
 कृष्णदास सो ऋषभ, ह्रीतस्वामी सुबल बखानो ॥  
 अर्जुन कुंभनदास, चतुर्भुजदास बिसाला ।  
 विष्णुदास सो भोज स्वामि गोविंद श्रीदामाला ॥  
 अष्टहाप आठों सखा 'श्री द्वारकेश' परमान ।  
 जिनके कृत गुनगान करि, निज जन होत सुधान ॥<sup>7</sup>

अष्ट सखाओं की जातिवार गणना की जाए तो इनमें चार ब्राह्मण और चार गैर ब्राह्मण (कुंभनदास, चतुर्भुजदास - क्षत्रिय तथा कृष्णदास, विष्णुदास - शूद्र) हैं । वार्ता साहित्य से यह भी पता चलता है कि संप्रदाय में आने से पहले चारों ब्राह्मण 'स्वामी' कहे जाते थे । इनके अपने-अपने संप्रदाय थे और वे लोगों को शरण में लेकर सेवक

बनाया करते थे । ये लोग पुष्टिमार्ग में अपने शिष्य-सेवकों के साथ शामिल हुए थे । इनकी पूर्व स्थिति को देखते हुए इन्हें संप्रदाय के भीतर विशेष दर्जा दिया जाना स्वाभाविक था । संप्रदाय में आने के बाद ये 'स्वामी' से 'दास' हो गए । इनमें केवल क्वीतस्वामी ही ऐसे बचे जिन्होंने अपने नाम के साथ लगा 'स्वामी' शब्द नहीं हटाया । नंददास को अष्टछाप में बाद में शामिल किया गया था । पहले इनके स्थान पर विष्णुदास क्वीपा थे । 'चीरासी वैष्णव की वार्ता' के अनुसार विष्णुदास क्वीपा महाप्रभु बल्लभाचार्य के सेवक थे और जाति के शूद्र । अष्टछाप से हटाये जाने के बाद इन्हें गुसाई जी का द्वार-<sup>8</sup>रक्षक बनाया गया था । द्वार रक्षक के रूप में विष्णुदास पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया करते थे । जब विट्ठलनाथ को हसका पता चला तो उन्होंने विष्णुदास को ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करने से मना कर दिया ।<sup>9</sup> नंददास अपनी काव्य-संगीत विषयक योग्यता के कारण सं० 1607 में अष्टछाप में शामिल किए गए । नंददास के आने से बल्लभा-चार्य और विट्ठलनाथ के सेवकों की संख्या अष्टछाप में बराबर-बराबर हुई ।

'अष्ट सखाओं के लीलात्मक स्वरूपों की दो प्रकार की स्थिति है । वे दिन में ठाकुर जी के सखा रूप से उनकी वन लीला का सुख प्राप्त करते हैं और रात में स्वामिनी जी की सखी रूप से निकुंज लीला का सुखानुभव करते हैं । इस प्रकार ये आठों महानुभाव श्री ठाकुर जीके अंग रूप हैं, जो उन की अंतरंग लीलाओं में अहर्निश सम्मिलित होकर लीला रस का सुखानुभव करते रहते हैं ।'<sup>10</sup>

गिरिराज नित्य-निकुंज के आठ द्वार हैं और अष्टछाप के आठों सखा इन द्वारों के अधिकारी हैं । वे इन द्वारों पर रहते हुए ठाकुर जी की सदैव सेवा करते हैं । लौकिक लीला में वे भौतिक शरीर से इन द्वारों पर स्थित रहते हैं और लौकिक लीला की समाप्ति पर वे

अलौकिक रूप से नित्य लीला में विराजमान रहते हैं । पुष्टि संप्रदाय की भावना के अनुसार अष्टहाप के लीलात्मक उभय स्वरूप उनकी लीला-सक्ति और उनके अधिकृत द्वारों का विवरण इस प्रकार है<sup>11</sup> —

	अष्ट सखा	लीलात्मक स्वरूप	लीलासक्ति	अधिकृत द्वा
1.	कुंभनदास	अर्जुनसखा-विशाखा सखी	निकुंजलीला	आन्यौर
2.	सूरदास	कृष्णसखा-चंपकलता सखी	मानलीला	चंद्रसरोवर
3.	परमानंददास	तोकसखा-चंद्रभागा सखी	बाललीला	सुरभी कुंड
4.	कृष्णदास	ऋषभसखा-ललिता सखी	रासलीला	बिलकू कुंड
5.	गोविंद स्वामी	श्रीदामासखा-भामा सखी	आख मिचौनी कंदम खंडी	
6.	हीत स्वामी	सुबलसखा-पद्मा सखी	जन्मलीला	अप्सरा कुंड
7.	चतुर्भुजदास	विशालसखा-विमला सखी	अन्नकूट लीला	रुद्र कुंड
8.	नंददास	भोजसखा-चंद्रेखा सखी	किशोरलीला	मानसीगंगा

उक्त तालिका में लीलासक्ति की सूचना वास्तव में आचार्यद्वय द्वारा कवियों को निर्देशित विषय हैं । अष्टहाप और पुष्टि मार्ग पर शोध करने वाले विद्वानों ने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है, "गो० विट्ठल नाथ जी ने ठाकुर जी के इन आठ सखाओं को एकत्रित कर उनको श्रीनाथ जी की आठों भाँकियों में अपने-अपने ओसरे में कीर्तन-सेवा करने का आदेश दिया । उन्होंने ऋतु, अवसर और लीला भावना के अनुसार समय-समय पर... पदों का गायन किया था.... ।"<sup>12</sup> कहने की ज़रूरत नहीं कि जब कीर्तन का एक निश्चित वक्त हो और संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार पद-रचना तथा राग-चयन करना हो तो कवि को अपनी रचना की विषय-वस्तु स्वयं निर्धारित करने की छूट नहीं होती । उसे दिए गए विषय का / दायित्व का निर्वाह भर करना पड़ता है । उदाहरण के लिए परमानंददास को लें । उन्हें 'सारंग' हाप से भी जाना जाता है । लेकिन इस हाप से उनके पद कदाचित ही मिलते हैं । हाँ, 'सारंग'



राग में उनके अधिकांश पद उपलब्ध होते हैं । वस्तुतः कवि का कीर्तन का ओसरा मध्याह्न में राजभोग के समय पड़ता था । यह समय सारंग राग का होता है ।<sup>13</sup> स्पष्ट है कि जब राग चुनने की स्वतंत्रता कीर्तनकार को न हो, यह उसके कीर्तन के ओसरे से तय होती हो तो कीर्तन की अन्तर्वस्तु के चयन में स्वाधीनता का सवाल ही नहीं पैदा होता ।

श्रीमद्भागवत का पुष्टि संप्रदाय में बहुत महत्व है । इसे 'पीयूष समुद्र' कहा जाता है और महाप्रभु बल्लभाचार्य इसके मंथनकर्ता माने जाते हैं । विट्ठलनाथ द्वारा रचित 'सर्वोत्तम स्तोत्र' में उन्हें 'भागवत गूढार्थ प्रकाशन परायणः' कहा गया है ।<sup>14</sup> वार्ता साहित्य के अनुसार महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपने दो सेवकों - सुरदास और परमानंददास को भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई थी । इन दोनों कवियों ने निर्देशानुसार पद रचे ।<sup>15</sup> महाप्रभु ने निरोध पर अत्यधिक बल दिया था । पातंजल योगदर्शन का 'योगास्थित्ववृत्ति निरोध' एक प्रमुख सूत्र है । उसमें चित्त की (चंचल) वृत्ति के निरोध को ही योग बताया गया है । मन को विषयों से हटाकर वृत्ति विशेष से जोड़ने का नाम निरोध है । 'नारद भक्ति सूत्र' के अनुसार 'लौकिक वैदिक व्यापारों का निरसन ही निरोध है - निरोधस्तु लोक वेद व्यापार न्यासः'<sup>16</sup> महाप्रभु बल्लभ ने 'निरोध लक्षण ग्रंथ' लिखा । उन्होंने बाह्यप्रपंचों की विस्मृति और भगवान में आसक्ति को निरोध की संज्ञा दी । आचार्य बल्लभ ने कहा कि इंद्रिय रूपी घोड़े को ढीला न करना परम कर्तव्य है - 'इन्द्रियाश्च विनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम्'<sup>17</sup> 'भक्तिवर्द्धिनी' ग्रंथ में महाप्रभु ने प्रेम की तीन विकास दशाएं बताईं - स्नेह, आसक्ति और व्यसन । उनके अनुसार सांसारिक गतिविधियों में ऊपरी तौर पर संलग्न रहकर अपना चित्त श्रीकृष्ण में डूब रखना चाहिए :

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा ।

ततः प्रेम तथासक्तिव्यसनं च यदा भवेत् ॥<sup>18</sup>

चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए भक्त को कामना करनी चाहिए कि जिस तरह का दुख गोपियों (नंद यशोदा सहित) को श्रीकृष्ण से क्लिप्त होने पर होता था उसी तरह का दुख उन्हें भी होता रहे । 'निरोध लक्षण ग्रंथ' का पहला श्लोक है --

यच्च दुःखं यशोदाया नंदादीनां च गोकुले ।

गोपिकानाम् तु यद् दुःखं तद् दुःखं स्यान्मम वचचित् ॥<sup>19</sup>

डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल का मानना है कि, 'श्रीमद भागवत के दशम स्कंध की श्रीकृष्ण लीलाओं का उद्देश्य निरोध ही है । इसीलिए आचार्य जी ने अपने दोनों सागरों को भागवत के दशम स्कंध की अनु-क्रमणिका सुनाकर उन्हें लीला सागर बना दिया था ।'<sup>20</sup> एक जिज्ञासा हो सकती है कि बल्लभाचार्य ने अपने चार शिष्यों में से दो शिष्यों को ही भागवत के दशम स्कंध की लीला क्यों सुनाई ? इसका पहला कारण तो यही था कि पद रचने की सामर्थ्य सूर और परमानंददास में बाकी दोनों से अधिक थी । दूसरा, व्यावहारिक कारण यह था कि कुंभनदास का अपना भरा पूरा परिवार था और उनका ज्यादातर वक्त परिवार का पेट पालने के लिए उद्यम करने में गुजरता था तथा कृष्णदास मंदिर के अधिकारी होने के नाते व्यवस्थागत कामों में लगे रहते थे । इसलिए उनके पास वक्त की कमी रहती थी जबकि, दूसरी तरफ, सूरदास और परमानंददास का अपना कोई परिवार नहीं था और वे अपना सारा समय पद रचना में लगा सकते थे । पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की बाल-लीला, किशोर लीला और गोपीविरह को ही महत्व दिया जाता है । इन दोनों कवियों ने इन्हीं लीलाओं पर ही अपनी लेखनी केन्द्रित की । कृष्ण की शेष लीलाओं के वर्णन में इनकी रुचि नहीं रही । यथास्वर शेष लीला-प्रसंग औपचारिकता पूरी करने के लिए जैसे-तैसे निपटा दिए गए । सूरदास परमानंददास से पहले महाप्रभु की शरण में आए थे । सूर की पद-रचना अबाधित गति से चलती रहे इसके लिए

कुंभनदास उन्हें सहयोग प्रदान करते थे । सूर श्रीनाथ जी के मंदिर के प्रधान कीर्तनकार थे ।<sup>21</sup>

### सूरदास

अष्टहापी कवियों का जीवन-वृत्त वाता साहित्य में प्राप्त होता है । हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहास ग्रंथों में इन कवियों का परिचय वाता ग्रंथों के आधार पर ही लिखा गया है । ऐसे आलोचक और साहित्येतिहासकार जो वाताओं की प्रामाणिकता में शंका जताते रहे हैं उन्होंने भी वाता ग्रंथों का उपयोग किया है । वाता साहित्य के विद्वानों ने वाता ग्रंथों की प्रामाणिकता सिद्ध की है ।<sup>22</sup> हम प्रस्तुत विवेचन में संवत् 1697 (सन् 1640 ई०) की लिखित वाता (प्राचीन मूल वाता और श्री हरिराय कृत भाव-प्रकाश) का उपयोग करेंगे । इसे 'अष्टहाप की वाता' (प्राचीन वाता रहस्य - द्वितीय भाग) शीर्षक से प्रो० कृष्णमणिशास्त्री संचालक विद्याविभाग, कांकरोली ने संपादित किया है । इसका प्रकाशन वर्ष सं० 2009 (सन् 1942 ई०) है ।

वाताओं के रचयिता गु० गोकुलनाथ हैं, गोस्वामी हरिराय ने मूल वाताओं को 'भाव प्रकाश' लिखकर स्पष्ट किया है । मूल वाता में जो प्रसंग छूटे हुए थे अथवा अधूरे थे, उनकी पूर्ति उन्होंने 'भाव प्रकाश' द्वारा की थी ।<sup>23</sup> हरिराय जी के अनुसार सूर जन्मांध थे । हरिराय कृत 'अष्ट सखान की वाता' में लिखा है, 'सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नाहीं हैं और नेत्र को आकार गढेला कछु नाहीं, ऊपर भीह मात्र है । सो या भांति सों सूरदास जी को स्वरूप है ।'<sup>24</sup> यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि श्री गोकुलनाथ जी सूरदास जी के समकालीन थे और वे पर्याप्त समय तक उनके संपर्क में रहे थे । श्री हरिराय जी का जन्म सूरदास जी के देहावसान के केवल सात वर्ष पश्चात् हुआ था, और वे श्रीगोकुल नाथ जी तथा सूरदास जी के अन्य समकालीन व्यक्तियों के साथ अनेक वर्षों तक रहे थे । अतएव, उन्होंने जो कुछ

लिखा है, वह सूरदास के संगी साधियों से प्राप्त जानकारी पर आधारित होने के कारण पूर्णतया प्रामाणिक है ।<sup>25</sup>

‘भावप्रकाश’ के अनुसार सूरदास का जन्म एक अत्यंत निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था । सूर से पहले उस सारस्वत ब्राह्मण के तीन पुत्र थे । सूर के जन्म से किसी को प्रसन्नता नहीं हुई - ‘माता पिता के घर के सब कोई इनसों प्रीति करे नाहीं । जानें, जो नेत्र बिना को पुत्र कहा ? तासों इन सों कोई बोलतों नाहीं ।’<sup>26</sup> घरवालों की स्नेहहीनता से खिन्न सूरदास ने छः वर्ष की आयु में ही पैतृक निवास छोड़ दिया । एक ब्राह्मण जमींदार ने उनकी सहायता की । एक पीपल के नीचे फाँपड़ी बनवा दी । सूर वहीं रहने लगे । ‘ता पाछे वा जमींदार ने दस पांच जने के आगे बात करी जो - फलाने को - बेटा सूरदास बड़ो ग्यानी है । हमारी गाय खो-य गई हती सो बताय दीनि, सो वह सगुन में आछो जाने है ।’<sup>27</sup> सूरदास की ख्याति एक शकुन क्वारक के रूप में फैलने लगी । लोग उनके पास आने लगे - ‘तब सूरदास की बड़ी पूजा चली, भीर लगी रहे । खान पान भली भाँति सों आवन लाग्यो, सो तब कछुक दिन में सूरदास कोरहिवे के लिए एक बड़ो घर तालाब पर बनाय दियो, और वह फाँपड़ी हू द्वरि कीनो । और क्त्र, द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो । सो सूरदास ‘स्वामी’ कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये । जा के कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय ।’<sup>28</sup> जब सूर का वैभव शिखर पर था तो उन्हें एकाएक वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ । उन्होंने अपने द्रव्याधी पिता को बुलवा भेजा । सारा वैभव उन के हवाले किया और खुद मथुरा और आगरे के बीच स्थित गरुघाट पर रहने लगे । गरुघाट पर निवास करते समय सूरदास को साधु-संतों, विद्या-व्यसनियों और कलावंतों से संपर्क का सुयोग मिला । इससे उनकी प्रतिभा में निखार आया । प्रभु दयाल मीतल ने लिखा है कि, ‘अनेक पदों सेस्पष्ट है कि वे ज्योतिष विद्या के दोनों अंगों - फलित एवं गणित के अच्छे जानकार थे । उनके आरंभिक जीवन की सफलता में शकुन विद्या बड़ी सहायक हुई थी ।’<sup>29</sup> शकुन विद्या में प्रवीणता के साथ आशु कविता

में कुशलता, संगीत में दक्षता तथा गायन कला में निपुणता के कारण सूर के आसपास जनसामान्य की भीड़ जुड़ने लगी । सूर फिर 'स्वामी' हो गए । लोगों को सेवक बनाने लगे - 'सूरदास को कंठ बहोत सुंदर हतो । सो गान विद्या में चतुर और सगुन बताइवे में चतुर । सो उहांहू बहोत लोग सूरदास जी के पास आवते । उहां हू सेवक बहोत भये, सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये ।'<sup>30</sup>

संवत् 1567 वि० (सन् 1510 ई०) की बात है ।<sup>31</sup> गऊ घाट के आसपास सूर की प्रतिष्ठा फैल चुकी थी । वल्लभाचार्य ने तब तक तीन बार देश व्यापी यात्राएं करके शास्त्रार्थ में विरोधी मतों को पराजित कर दिया था । अब वे पुष्टि मार्ग का प्रचार कर रहे थे । अपने निवास स्थान अईल (प्रयाग के पास) से गोवर्धन जाते हुए उन्होंने गऊ घाट पर फड़ाव डाला । सूरदास की ख्याति उन तक पहुंच चुकी थी । सूरदास के एक सेवक ने आचार्य जी के बारे में जानकारी दी - 'श्री आचार्य जी महाप्रभु गऊ घाट ऊपर उतरे सो सूरदास जी के सेवक ने देखि के सूरदास जी सों कह्यो जो इहां श्री आचार्य जी महाप्रभु पधारे हैं जिनने दक्षिण दिग्विजय कियो है । सब पंडितन को जीते हैं । काशी में तथा दक्षिण में मायावाद खण्डन कियो है और भक्ति मार्ग स्थापन कियो है... तब सूरदास जी ने अपने सेवकन सों कह्यो जो - तुम जायके दूरि बैठियो जब श्री आचार्य जी महाप्रभु भोजन करिके बिराजें तब खबर करियो ।'<sup>32</sup> सेवक ने निर्देशानुसार सूर की सूचना दी । सूरदास अपने तमाम सेवकों के साथ महाप्रभु से मिलने पहुँचे । महाप्रभु उस समय महाप्रसाद लेकर गद्दी तकिया पर विराजे हुए थे । सूर को देखते ही उन्होंने कहा, 'सूर । आओ बैठो ।' सूर ने श्री आचार्य जी को साष्टांग दण्डवत किया । महाप्रभु ने सूर को आज्ञा दी - 'सूरदास जी । कहु भगवद जस वर्णन करो ।' सूर ने दैन्य के दो पद गाए --

हों हरि सब पतितन को नायक ।

को करि सके बराबरि मेरी छै मान को लायक ॥

+ + +

प्रभु । हों सब पतितन को टीको ।

और पतित सब घोंस चारि के हों तो जन्मत ही को ॥<sup>33</sup>

इन पदों को सुनकर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने टिप्पणी की 'सूर  
हैंकें ऐसी धिधियास काहे को है कछु भगवल्लीला वर्णन करि ।'<sup>34</sup>  
सूर ने कितनी की महाराज । में तो कुछ समझता नहीं । बल्लभाचार्य ने  
कहा - स्नान करके आओ, सब लीला समझाऊंगा । सूरदास यमुना में  
स्नान करके महाप्रभु के पास पहुँचे । श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कृपा  
करि के सूरदास जी को प्रथम नाम सुनायो, पाछे समर्पन करायो ।<sup>35</sup> पाछे  
दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई । सो नाम सुनायो तातें सब दोष  
निवर्त्त भए और श्रवण ते लेकर दास्य पर्यन्त सात भक्ति भई । और निवेदन  
करवायो ताते श्री नाथ जी ने अंगीकार कियो । सख्य और आत्म निवेदन  
भक्ति भई । रही प्रेमलक्षणा भक्ति, सो दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका  
कही । तातें सम्पूर्ण लीला सूरदास जी के हृदय में उपस्थित भई तब  
भगवल्लीला को वर्णन किए ।<sup>36</sup>

बल्लभ संप्रदाय में आने पर सूर ने पहला पद कौन सा रचा ?  
वार्ताकार गोकुलनाथ का कहना है कि महाप्रभु कृत 'सुबोधिनी' के  
मंगलाचरण का प्रथम श्लोक सूरदास के पहले पद का आधार बना ।  
सुबोधिनी का पहला श्लोक है --

नमामि हृदये शेषे लीला - क्षीराब्धिशायिन्म् ।

लक्ष्मी-सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कला निधिम् ॥

सूर ने देव गंधार राग में पद बनाया --

चकई री । चलि चरण सरोवर जहां न प्रेम वियोग ।

जहां भ्रम निसा होति नहिं कबहुं ते सायर रस जोग ॥

+ + +

तहां श्री सहस्र सहित नित क्रीडत सौभित 'सूरजदास' ।

अब न सुहाय विषय रस कालर वा समुद्र की आस ॥<sup>37</sup>

दोनों की तुलना करते हुए वार्ता में लिखा गया है - दशम स्कंध की कारिका में कह्यो है : लक्ष्मी-सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ।। तेसे सूरदास जी ने या पद में कह्यो है - तहां श्री सहस्र सखि नित क्रीडत सोभित सूरजदास या भांति सों पद किए । तातें जानि परी जो संपूर्ण सुबोधिनी सूरदास को फुरी ।<sup>38</sup> 'सुबोधिनी' के अनुसार सूर की पद-रचना पर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए । फिर महाप्रभु बल्लभ ने सूर को आज्ञा दी कि 'कहु नंदात्म की लीला गावो ।' सूरदास ने नंद महोत्सव का विशद वर्णन सुनाया ।<sup>39</sup>

सूर कल तक स्वामी थे अब महाप्रभुबल्लभ के सेवक बन गए । उनके मन में आया, 'मैंने सेवक किये हैं, तिनकी कहा गति होइगी ? तब श्री आचार्य जी ने कही - 'सुनि सूर । सबन की यह गति जिन हरिचरन भजे ।'<sup>40</sup> 'पाछे सूरदास जी ने जो अपने सेवक किए हते तिन सबन को श्री आचार्य जी महाप्रभुन के पास नाम दिवायो ।'<sup>41</sup>

बल्लभाचार्य के प्रति कृतज्ञता जताते हुए सूर लिखते हैं कि जिस भागवत का श्री शुकदेव ने बखान किया था उसी को मैं गुरु की कृपा से गाता हूँ --

धनि शुक मुनि भागवत बखान्यो ।

गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यो ॥

+ +

सूरदास तहं नैन बखार औ कहूं न पत्यान्यो ॥<sup>42</sup>

+ +

व्यास कहैं शुकदेव सों द्वादश स्कंध बनाइ ।

सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ ॥<sup>43</sup>

'सूरसागर' के अतिरिक्त 'सूर सारावली' सूरदास की अन्य महत्वपूर्ण रचना है । इस कृति का साम्प्रदायिक महत्व ज्यादा है। वात्किार ने लिखा है, 'पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने सूरदास जी को पुरुषोत्तम

सहस्रनाम सुनायो । तब सूरदास जी को श्री भागवत की स्फूर्ति भई  
 सो सूरदास ने प्रथम स्कंध की भागवत सौ द्वादश स्कंध पर्यन्त कीर्तन  
 किये । तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि कानि किये हैं । पाछे  
 जो पद किए सो श्रीभागवत अनुसार किए ।<sup>44</sup>

‘सूर सारावाली’ के प्रणयन पर प्रकाश डालते हुए प्रमुदयाल मीतल  
 लिखते हैं : ‘सारावली की रचना वृहत् होली गान के रूप में पुष्टि-  
 मार्गीय भक्ति सिद्धांत एवं सेवा-तत्त्व के निरूपणार्थ हुई है । अतएव  
 यह एक सैद्धांतिक ग्रंथ है ; और इसके प्रणयन की प्रेरणा सूरदास को  
 श्री बल्लभाचार्य जी कृत ‘पुरुषोत्तम सहस्रनाम’ से हुई थी । जिस  
 प्रकार श्री आचार्य जी ने समस्त भागवत के सार रूप में ‘पुरुषोत्तम  
 सहस्रनाम’ की रचना की है, उसी प्रकार सूरदास ने अपनी गाई हुई  
 भागवतोक्त लीलाओं के सार रूप में ‘सारावली’ को रचा है । इस  
 दृष्टि से इसका नाम सर्वथा सार्थक है । इसमें जिस भक्ति-तत्त्व और  
 लीला भेद का सार सन्निहित है, उसके सम्बन्ध में सूरदास ने कहा  
 है --

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो ।

श्रीबल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ।।

ता दिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष्य पद बंद ।

ताको सार ‘सूर’ सारावलि, गावत अति आनंद ।।<sup>45</sup>

मीतल जी के अनुसार इस ग्रंथ की रचना का उपक्रम संवत् 1602  
 में किया गया ।<sup>46</sup>

पिछले अध्याय में हमने देखा कि बल्लभ संप्रदाय आस्था के मामले  
 में बेहद ‘डॉग्मैटिक’ है । बल्लभ संप्रदायी कृष्ण या बल्लभाचार्य को  
 छोड़ कर किसी दूसरे देव की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता ।  
 यह प्रतिबंध सामान्य वैष्णवों पर ही नहीं अष्टछापी कवियों पर भी  
 लागू होता है । ये कवि अपनी निष्ठा का यथास्वर प्रदर्शन करते हैं ।



सूर ने कई पदों में अपनी अनन्यता का प्रमाण देना चाहा है -

में कैसे रस रासहिं गाऊं ।

श्री राधिका श्याम की प्यारी तुव बिन कृपा बासव्रज पाऊं ।

अन्य देव सपनेहु न जानों दम्पति को सिर नाऊं ।

भजन प्रताप सरन महिमा ते गुरु की कृपा दिखाऊं ।

+ + +

सूर कहा किन्ती करि विनवै जन्म जन्म महध्याऊं ॥<sup>47</sup>

संप्रदाय के सिद्धांतों को लिपिबद्ध करने वाले हरिराय जी का कहना है कि कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का अनुभव श्रीस्वामिनी जी की तरह आत्मावधारण करके ही किया जा सकता है - 'भाक्कीर्य सदाचिते स्वामिनी जल्पितं मुहुः'<sup>48</sup> सूरदास का उपरोक्त पद इसी भाव की अभिव्यक्ति है। सूर कृष्ण का सान्निध्य पाने के लिए श्रीराधा से प्रार्थना कर रहे हैं। उनका स्वर पतिव्रता का है। पुष्टिमार्गीय वैष्णव पतिव्रता-भाव के बिना अकल्पनीय है।

'विवेक ध्याश्रय' नामक प्रकरण ग्रंथ में महाप्रभु बल्लभाचार्य ने कहा कि पुष्टि मार्गी सेवक को हर तरह के अभिमान का संपूर्ण रूप से परित्याग कर के अपनी भावनाओं को स्वामी के अधीन कर देना चाहिए -

'अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाभ्याधीनत्व भावनात्'<sup>49</sup>

सेवकों को आज्ञा है - 'स्वाचार्यमात्र वाक्यैक निष्ठः'<sup>50</sup> श्री आचार्य जी के वचनों में ही निष्ठा रखो। समस्त बल्लभ संप्रदायी सेवक (अष्टहापी कवियों सहित) इस आज्ञा का पूरी तरह पालन करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसीलिए कहते हैं - 'भक्त अपने ध्यान या भाव की मग्नता में भगवान के संबंध में किसी नई बात का, उसके किसी ऐसे स्वरूप का जिस का निरूपण कहीं न हुआ हो, उद्घाटन नहीं करता।' (सूरदास, पृ० 18) अष्टहापी कवियों के लिए अंतिम प्रमाण आचार्य बल्लभ के वचन - तत्त्वार्थ दीप निबन्ध, षोडश ग्रंथ, सुबोधिनी तथा गुसाईं विट्ठलनाथ के ग्रंथ हैं। वे इनके विपरीत कथन करते कहीं नहीं दीखते। बल्लभाचार्य के

प्रति अपनी दीनता प्रकट करतेहुए सूरदास लिखते हैं --

1) श्री बल्लभ । अबकी बेर उबारौ ।

+ + +

‘सूर’ अधम को कहूं ठौर नहिं, बिनु एक सरन तुम्हारौ ॥

2) अब मौहिं सरन राखिये नाथ ।

+ + +

अभय-दान दे, अपुनौ कर धरि, सूरदास के माथ ॥<sup>51</sup>

एक दास को अपना परिचय देने की ज़रूरत नहीं पड़ती, न ही पड़नी चाहिए । उसका स्वामी ही ऐसी संहिता निर्मित करता है कि दास की पहचान बिना बताए जाहिर हो जाए । पुष्टिमार्गी दासों की (और दूसरे संप्रदायों के दासों की भी) हसीलिए वेश-भूषा, रंग-ढंग, खान-पान निश्चित कर दिए गए । एक पूरी आचार-संहिता बना दी गई । दासत्व-बोधक चिह्नों को धारण करना अपरिहार्य कर दिया गया । सूर का साक्ष्य देखें --

हमें नन्द नन्दन मोल लिये ।

यम के फंद काटि मुकराए अभय अजात किये ।

भाल-तिलक स्रवननि तुलसीदल मेटे अंक लिये ।

मूढ़े मूढ़ कंठ बन माला मुद्रा चक्र दिये ।

सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये

सूरदास को और बड़ो सुख जूठनि साइ जिये ॥<sup>52</sup>

यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि ‘नन्दनन्दन’, ‘श्याम’ आदि सभी कृष्णवाची शब्द/संबोधन बल्लभाचार्य के लिए भी प्रयुक्त हो सकते हैं, होते हैं । जब महाप्रभु या गुसाईं क्विठलनाथ भोजन करके उठते थे तो उनकी थाली का बचा-खुचा पदार्थ सेवकों को मिलता था । यह जूठन उनके जीवन की उपलब्धि मानी जाती थी ।<sup>53</sup>

डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टहोत्री कवियों पर प्रामाणिक स्व

विस्तृत शोधकार्य किया। उनका निष्कर्ष है कि ये कवि अपने पदों में बल्लभ संप्रदायी सिद्धांतों का पालन और प्रतिपादन करते थे।<sup>54</sup> लाभग यही निष्कर्ष दूसरे गंभीर अध्येता डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल का है।<sup>55</sup> सूरदास की वार्ता में कहा गया है कि महाप्रभु ने विचार किया कि श्रीनाथ जी के मंदिर में सेवा का जो मंडान किया गया है उसमें कीर्तन सेवा नहीं है। महाप्रभु बल्लभ ने पाया कि इस दायित्व के निर्वह के लिए सूरदास सर्वाधिक उपयुक्त हैं -- श्री आचार्य जी महाप्रभु ने विचार्यों जो श्री नाथ जी के इहां और तो सब सेवा को मंडान भयो, कीर्तन की सेवा को मंडान नाहीं भयो। सो सूरदास जी कूं कीर्तन की सेवा दीजिए... सो आगे वैष्णव जन सूरदास के पद गाइके कृतार्थ बोहोत होइयें।<sup>56</sup> सूरदास ने आजीवन यह दायित्व संभाला। आचार्य जी के कवनों का पालन करते हुए उन्होंने अपनी अनन्यता बनाए रखी --

श्याम बलराम को सदा गाऊं ।

श्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्नहु मांहि हृदय न लाऊं ।<sup>57</sup>

पाँके श्री आचार्य जी आपु कहे जो - सूर । तुमको पुष्टिमार्ग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्री गोवर्धनधर के यहां समय समय के कीर्तन करो।<sup>58</sup> सूरदास की बल्लभाचार्य से गऊ घाट पर भेंट हुई थी। गऊ घाट पर बल्लभाचार्य ने तीन दिन विश्राम किया। वहां से वे गोकुल आए। सूरदास उनके साथ थे। गोकुल में सूरदास को बल्लभाचार्य के साथ रहने का अवसर मिला। यहां वे लीला-विषयक पदों का गायन करते रहे।

बल्लभाचार्य जी भागवत के जिस प्रकरण की व्याख्या करते थे, सूरदास उसी पर पदों की रचना करते थे।<sup>59</sup> यहां सूरदास ने अपनी योग्यता प्रमाणित की जिसके आधार पर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उन्हें गोवर्धन लाकर श्री नाथ जी के मंदिर में मुख्य कीर्तनिया नियुक्त किया। बहुरि सूरदास जी श्रीनाथ जी द्वार आइके बोहोत दिन ताइ श्रीनाथ जी की

सेवा कीनी । सो बीच बीच में (जब कुंभनदास जी, परमानंददास जी के कीर्तन के ओसरा आक्ते तब सूरदास जी श्रीगोकुल में) श्रीनवनीतप्रिय जी के दरसन को श्रीगोकुल आक्ते ।<sup>60</sup>

<sup>66</sup> पाछे श्री गुसाई जी ने संस्कृत में एक पालना कियो । सो पालना श्री गुसाई जी ने सूरदास को सिखायो । सो पालना सूरदास ने ताही समे श्रीनवनीत प्रिय जी पालने भूलत है, ता समे गायो । सो पद :

राग रामकली छंद चर्चरी ॥

प्रेक्ष्य पर्यटक शयनं । चिर विरह तापहर मति रुचिर मीक्षणं प्रकटय प्रेमाः  
ध्रुव तनुतर दिवज-पेक्तिमतिललि तानि हसितानि तव वीक्ष्य गायकीनाम् ॥  
यदवधि परमेतदाश्रया समभव ज्जीवितं तावकी नाम ॥११॥ + + +  
कवन रचनोदार हास सहज स्मितामृत - चैरार्ति भारमपनयनं ॥  
पालय सदाऽस्मान्स्मदीय श्री विट्ठले निजदास्यमुपनयनम् ॥६॥

यह पद सूरदास ने गायो । पाछे या पद के अनुसार सूरदास जी ने बोहोत पद करि के श्रीनवनीतप्रिय जी को सुनाए । सो सुनिके श्री गुसाई जी बहुत प्रसन्न भये ।<sup>61</sup> इसके बाद वार्ताकार ने पालना के कई पद उद्धृत किए हैं जिसे सूरदास ने गुसाई जी द्वारा रचित पालना के अनुसार बनाया था ।

अष्टछाप के कवियों, खासकर सूरदास जैसे कवि के लिए अक्सरों और प्रलोभनों की कमी नहीं थी । लेकिन, पूर्ण सम्पत्ति के बाद यह संभव नहीं रह जाता कि कवि किसी विचलन का शिकार हो । यहाँ तक कि देशाधिपति (अकबर) का आमंत्रण भी <sup>उसे डिगा नहीं सकत</sup> सूरदास जी के पद देसाधिपति ने सुने । सो सुनि यह विचारे, जो - काहू रीति सूं सूरदास जी सों मिलिए । सो भगवद् इच्छा ते सूरदास जी देसाधिपति सों मिले । सो सूरदास जी तें देसाधिपति ने कह्यो जो सूरदास जी । भने सुन्यो है जो तुमने विष्णु पद बोहोत किए हैं । ताते कहूँ जस गावो । तब सूरदास जी ने देसाधिपति के आगे एक पद गायो... ।<sup>62</sup> सूरदास जी का गायन

सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ । उसकी इच्छा थी कि सूर उसकी स्तुति में कोई पद रचें - 'सूरदास जी । मोकों परमेश्वर ने राज दियो है, सो सब गुनी मेरो जस गावत हैं । और तुम बड़े गुनी हो, ताते तुम कछु मेरो जस गावो... तब सूरदास जी ने एक पद और गायो : -

नाहिन रह्यो मन में ठीर ।

नंद-नंदन अछत कैसे आनिए उर और ॥

चलत, चितवत, थोस, जागत, सुपन सोकत राति ।

हृदय तें वै मदन मूरति छिन न छत उत जाति ॥

कहत कथा अनेक ऊधो । लोक-लोभ दिखाइ ।

कहा कहुं चित प्रेम पूरति, घट न सिंधु समाइ ॥

स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास ।

'सूर' ऐसे दास बिनु ए मरत लोचन प्यास ॥<sup>63</sup>

भाव प्रकाश की वार्ता में लिखा है कि सूरदास को विदा करते समय अकबर ने उन्हें कुछ देना चाहा, लेकिन सूरदास ने कुछ भी लेने से इंकार कर दिया - तब पातशाह ने सूरदास के समाधान की इच्छा कीनी । दोइ चारि गाम तथा द्रव्य बौहीत देन लाग्यो, सो सूरदास ने कछु नाही लियो ।<sup>64</sup> सूरदास का बादशाह अकबर से कोई उपहार न लेना इस बात का परिचायक नहीं है कि अकबर म्लेच्छ था, बल्कि यह कि स्वामी के अतिरिक्त किसी अन्य से उपहार प्राप्त करना दास-धर्म के विरुद्ध है, स्वामी का अपमान है - 'सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति' (अंतः कर्ण प्रबोध ग्रन्थ में महाप्रभु का कथन) ।

सूरदास की वार्ता में एक रोचक वृत्तान्त है जिससे पता चलता है कि सूर पद-रचना के अलावा अन्य तरीकों से भी सम्प्रदाय को समृद्ध और विस्तृत कर रहे थे । गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का मंदिर है । पर्वत के नीचे गोपालपुर गांव बसा हुआ है । उस गांव में एक बनिया था । वैष्णवों को अपना सामान बेचने के लिए वह वैष्णव होने का ढोंग करता था । वैष्णवों की तरह माला, तिलक धारण करता परन्तु कभी मंदिर

में दर्शन के लिए नहीं जाता । बनिया ने एक दिन सूरदास जी को टोक दिया - 'सो मैरो अपराध कहा, जो मैरी हाट ते सोदा लेत नांही ?'<sup>65</sup> सूर ने कहा कि मैं तुम्हें जानता हूँ । तुम वैष्णव नहीं हो । 'तेने जनम भरि कोई दिन श्रीनाथ जी के दरसन किये हैं ?'<sup>66</sup> बनिया ने सफाई दी, 'मैं अकेला हूँ । दर्शन की आशा में मंदिर पर रुका रहूँ तो बिक्री कहाँ से हो ? इसलिए ऐसा करो कि जब मंदिर के किवाड़ दर्शन के लिए खुलें तो मुझे बता दो । मैं दौड़ कर दर्शन कर आऊंगा । सूरदास ने कहा ठीक है, मैं उत्थापन के समय तुम्हें बुलाने आऊंगा । जब उत्थापन के समय का संज्ञाद हुआ तो सूर बनिया को खबर देने आ गए । बनिया का कहना था, 'या समय गाँव के लोग सोदा लेन आवत हैं, सो भोग के किवाड़ खुलें ता समय तुम मोको खबरि करियो ।'<sup>67</sup> सूरदास जी भोग के समय बुलाने पहुँच गए । बनिया बोला, 'सूरदास जी । अब तो बन ते गाय आइवे को समय भयो है, तासों मंदिर में चलूँ तो गाय आइके मैरो सगरो अनाज खाइ जाय । तासों अब तुम सेन आरती के समय जताइयो ।' सूर फिर पहुँचे । बनिया ने कहा, 'सूरदास जी । आज तुमको बोहोत श्रम भयो है । परन्तु अब दीवा बारिवे को समय है, या समय लक्ष्मी आवत है, तासों दीवा न होय तो लक्ष्मी पाछी फिरि जाय । और कोई मैरी हाट ते अन्न चुराय लेय तो मैं कहा करूँ ? तासों अब मैं सवारे दरसन करि ता पाछे हाट खोलूंगी । तासों मोको मंगला के समय आइके खबर करियो ।' मंगला के समय सूरदास बुलाने पहुँच गए । बनिया का कहना था, 'अब ही तो हाट बुहारि के मांढनी है । तासों बोहनी के समय कोई गाहक फिरि जाय तो सगरो दिन खाली जाय, तासों हाट लगाइ के शृंगार के समय दरसन को चलूंगी ।' सूर फिर पहुँचे । बनिया का जवाब था, 'अब ही मैं आक्षी काहू की बोहनी कीनी नांही है, और गाय डोलत है । तासों अब राज भोग के समय दरसन अवश्य करूंगी ।' सूरदास इसी तरह तीन दिन तक चक्कर लगाते रहे परंतु बनिया को दर्शन करने की फुर्सत नहीं मिली । फिर सूर ने सोचा, 'जो या को भय दिखावनो, और दरसन करावनो ।' तब सूरदास जी ने वा बनिया सों कही - जो अब तो मैं तेरी बात सगरे

वैष्णवों में प्रकट कहेंगे, जो - यह बनिया भूठो बौहोत है, सो कबहू याने श्रीनाथ जी को दरसन नाहीं कियो । और यह वैष्णव हू नाहीं है । अब तेरे पास कोई वैष्णव सौदा लेन आवेगो तो मैं तेरे दोहा, चौपाई, पद कुटिलता के करि के वैष्णवों को सुनाऊंगी ।<sup>68</sup> सूर ने इस आशय का एक पद मैरवी राग में बनाकर सुनाया । बनिया पर अपेक्षित असर हुआ । उसे मंदिर में दर्शन करने जाना पड़ा । इस प्रकरण पर गुसाईं कटिलनाथ की टिप्पणी थी - 'सूरदास जी । तुमने भलो साठि बरस को बूढो बेल नाथ्यो । तुम बिना या बनिया को सगरो जनम यों ही जातौ ।'<sup>69</sup> इसके बाद श्री गुसाईं जी ने 'वा बनिया को बुलाइ के श्रीनाथ जी के सन्निधान बैठाइ के नाम ब्रह्म संबंध करवायो । सो वा बनिया की बुद्धि निरमल होय गई ।'<sup>70</sup> इस बनिया की वार्ता 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में भी है । उसमें कहा गया है कि बनिया ने सूरदास की एक पद-रचना - 'सूर साठी' पर अपने जीवन-भर की कमाई साठ हजार रुपया भेंट कर दिया - 'सो वे बनिया दुकान पे आय के साठ हजार रुपया काढ के श्री गुसाईं जी के यहां पठाय दीने'<sup>71</sup> बनिया की बुद्धि निर्मल हुई । इसलिए 'श्रीनाथ जी वा बनिया सुं बोल्ल लागे और आयके दूध दही ले जाय और दूसरो रूप धरके दाना लेके वा बनिया की दुकान पे सौदा ले जाय ।'<sup>72</sup>

जबकि सूरदास यह घोषणा करते हैं - 'अन्य देव सपनेहु न जानौ दम्पति को सिर नाऊं' तब यह तथ्य मुश्किल पैदा करता है कि उन्होंने राम से संबंधित पद क्योंकर बनाए । विद्वानों ने इस समस्या का अपने-अपने ढंग से समाधान देने की कोशिश की है । एक विद्वान का मत है कि सूरदास जी श्री बल्लभाचार्य जी के संपर्क में आने से पहले रामानंदी संप्रदाय में दीक्षित थे, अतः उनकी रामसंबंधी रचनाएं उनके जीवन के आरंभिक काल की हैं । जो विद्वान सूरसागर को भागवत का अनुवाद मानते हैं, वे सूर के राम काव्य को भागवत नवम स्कंध से अनूदित बतलाते हैं ।<sup>73</sup> लेकिन यह मानने का कोई आधार नहीं है कि सूर पहले रामानंदी वैष्णव थे और न ही सूर का रामकाव्य भागवत में वर्णित रामचरित्र का अनुवाद प्रतीत होता है ।

सूर के राम संबंधी पदों पर ध्यान दें तो पाएंगे कि उन्होंने राम जन्म संबंधी और रामरावण युद्ध संबंधी पद ही ज्यादातर रचे हैं । यह बात सूरदास की प्रकृति के विरुद्ध पड़ती है ; क्योंकि उनका मन जितना बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड संबंधी वात्सल्य और शृंगारादि रसों के प्रसंगों में रम सकता था, उतना सुंदर कांड और लंका कांड विषयक वीर रस के प्रसंगों में नहीं ।<sup>74</sup> तब इस उलझन को कैसे सुलझाया जाए ?

बल्लभ संप्रदाय की मान्यता है कि धर्म का व्यतिक्रम श्रीकृष्ण सहन नहीं करते । इसकी रक्षा के लिए वे बार-बार धरती पर अवतार लेते हैं । धर्म का व्यतिक्रम क्या है ? ब्राह्मण, गाय और वेद की अवमानना । गोस्वामी हरिराय का यह कथन फिर से याद करें --

‘ब्रह्मण्यो धेनु विप्रेशो वेद धर्मक पालकः ।

स कथं सहते कृष्णास्तद्विरोधं जनेः कृतम् ॥”

श्रीकृष्ण ब्राह्मण की रक्षा करिवे वारे हैं, धेनु और ब्राह्मण के ईश हैं, वेद धर्म के मुख्य पालक हैं, सो श्रीकृष्ण ब्राह्मण, गाय और वेद धर्म, इनको विरोध जिनने कियो है सो कैसे सहेंगे ?<sup>75</sup> ब्राह्मण, वेद और धेनु की रक्षा के लिए भगवान् कृष्ण हर युग में अवतार लेते हैं । छे चौबीस प्रमुख अवतार हुए हैं । इनमें कृष्ण का अवतार पूणावतार माना जाता है । शेष सभी अवतार कलावतार एवं अंशावतार हैं । कलावतारों में राम को सर्वोपरि माना गया है । उनके पश्चात् नृसिंह एवं वामन का स्थान है । इन चारों अवतारों की जयंतियों के वर्णोत्सव बल्लभ संप्रदायी मंदिरों में मनाये जाते हैं । इनमें कृष्ण जन्मोत्सव के पश्चात् राम-जन्मोत्सव ही अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है और उसे रामनवमी को सम्पन्न किया जाता है । उस अवसर पर भगवान् राम की जन्मबधाई सहित उन की आरंभिक लीलाओं के गायन द्वारा कीर्तन करने का नियम है । सांप्रदायिक वर्णोत्सवों में दशहरा को भी भगवान् राम से संबंधित माना



गया है। उस अक्सर पर अधिकतर लंका दहन, अंगद-रावण संवाद और रामरावण युद्ध से संबंधित पद गाये जाते हैं।<sup>76</sup> प्रभुदयाल मीतल जी का मानना है कि सांप्रदायिक उत्सवों की शुरुआत और कीर्तन गायन की परंपरा यों तो बल्लभाचार्य ने शुरू की थी पर उसे व्यवस्थित रूप दिया गुसाईं विठ्ठल नाथ ने। उन्होंने ऐसे आयोजन नियमित रूप से सं० 1602 विक्रमी से प्रचलित किया।<sup>77</sup> उनका निष्कर्ष है कि सूरदास ने सं० 1602 से अपने अंतिम काल सं० 1640 तक 38 बार 'रामनवमी' और 'दशहरा' के वर्णोत्सवों में राम संबंधी पदों का गायन किया था। यदि उन्होंने उन दोनों उत्सवों पर दो-दो चार-चार पद भी गाये हों तब भी उनके द्वारा राम संबंधी प्याप्त पद रचे जाने का प्रमाण मिलता है।<sup>78</sup> इन्हीं कीर्तनों को संप्रदाय के कीर्तन संग्रहों में संगृहीत किया गया। राम जन्म से संबंधित बधाई के पद अधिकतर बिलावल, कान्हरा और सारंग रागों में निबद्ध हैं, जबकि दशहरा सम्बन्धी 'करखा' के पद प्रसंगानुसार 'मालू' राग में रचे गए हैं। संप्रदाय की भक्ति भावना और सेवा विधि के अनुसार पद रचना करने के कारण ही सूर के राम संबंधी पदों में कथाक्रम का विधान नहीं है। जहां तक इन पदों के काव्योत्कर्ष का संबंध है; वह निश्चयपूर्वक उनके कृष्ण लीला विषयक पदों के काव्योत्कर्ष का समान नहीं है; यद्यपि दोनों प्रकार के पदों की रचना सूरदास की प्रौढ़ावस्था में ही हुई है। इसका कारण यह है कि सूरदास के रामसंबंधी पद बल्लभ संप्रदायी वर्णोत्सवों की सेवा-विधि के निर्वहण मात्र के लिए रचे गये हैं।<sup>79</sup>

सूरदास के ज्ञात जीवन और रचनाओं को देखते हुए इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि पुष्टि मार्ग में आने के बाद उनका पूरा जीवन संप्रदाय के अनुकूल ही रहा। वे कभी भी विचलन के शिकार नहीं हुए। लेकिन, यह भी सच है कि उन्होंने बल्लभाचार्य की स्तुति में कम ही पद रचे। साथ के अष्टकापी कवि जिस वक्त बल्लभाचार्य और उनके पुत्र विठ्ठलनाथ तथा विठ्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाई गाने में

ही अपने को धन्य समझ रहे थे, सूरदास ने बल्लभाचार्य के अलावा किसी और की स्तुति में पद रचने से परहेज किया । शरणा में आने के पूर्व वे एक संप्रदाय के स्वामी थे, व्यापक जन समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी तथा उनकी आयु भी कम नहीं थी । अष्टह्राप की स्थापना (संवत् 1602) के समय वे 67 वर्ष के थे । शायद इसीलिए विठ्ठलनाथ और उनके पुत्रों की बधाई गाना उन्हें गरिमा के अनुकूल नहीं लगा होगा । बल्लभाचार्य की ही स्तुति करते रहना उन्हें जंचा नहीं होगा । यह छोटी सी कमी सूर के 'पूर्ण समर्पण' को संदिग्ध बना सकती थी । इसलिए शंका समाधान की ज़रूरत आ पड़ी । उनकी निष्ठा की परीक्षा तब ली गई जब वे मृत्यु शैया पर लेटे हुए थे । गुसाईं विठ्ठलनाथ अपने सेवकों के साथ सूरदास को देखने उनके निवास स्थान परासोली पधारे । सूरदास जी उस वक्त अचेत थे । सो आगत ही श्री गुसाईं जी सूरदास जी सों पूछे, जो सूरदास जी कैसे हो ? तब तो सूरदास जी श्री गुसाईं जी को दंडवत करि के कह्यो जो - बाबा ! आर हो ? मैं महाराज की बाट देखत हतो । या समय आपने बड़ी कृपा करि के दरसन दियो, जो - महाराज ! मैं आपके स्वरूप को ही चिंतन करत हतो । या कहिके सूरदास जी ने एक पद गायो । सो पद --

देखो देखो हरिजू को एक सुभाइ ।

अति गंभीर उदार उदधि प्रभु जानि सिरौमनि राइ ॥

राई जितनी सेवा को फल मानत मेरु समान ।

समुझि दास अपराध सिंधु सम बूंद भये को जान ॥'...

80

चक्रभुजदास जी ने सूरदास जी सों कह्यो, जो - सूरदास जी ! तुमने बौहोत भगवद्जस वर्णन कियो । सहस्रावधि पद किये । परि कछु श्री आचार्य जी महाप्रभुन को हू वर्णन कियो हे ? तब सूरदास जी बोले जो - मैं तो यह जस सब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन को ही कियो हे । कछु न्यारो देखूं तो न्यारो कहूं । परि तेरे कहै ते कहत हों । सो या

कीर्तन के अनुसार सगरे कीर्तन जानियो । या भाँति कहिके सूरदास जी ने एक नयो पद करिके गायो । सो पद --

भरोसो दृढ़ इन चरनन करौ ।

श्री बल्लभ-नख चंद्र-कृपा बिन सब जग माँफ अंधरो ॥

साधन और नहीं या जग में जासों होत निबैरो ।

‘सूर’ कहा कहे दिवविध आंधरो बिना मोल को चैरी ॥<sup>81</sup>

माना जाता है कि सूरदास श्री बल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे । लोक-प्रसिद्धि में वे आचार्य जी महाप्रभु से कम नहीं थे । उनके कारण पुष्टि मार्ग के प्रचार-प्रसार में सहायता मिली । वार्ता के अनुसार वे खुद भी लोगों को सम्प्रदाय का सिद्धान्त हृदयंगम करवाते रहते थे ।<sup>82</sup> संप्रदाय के भीतर इस समर्पित व्यक्तित्व का सम्मान स्वाभाविक था । आचार्यों ने तो उनके सम्मान की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं की, लेकिन शायद सामान्य वैष्णवों का दबाव रहा होगा कि बल्लभाचार्य तथा किट्ठलनाथ के जन्मोत्सवों की तरह सूरदास का जन्म दिवस मनाया जाने लगा । किन्तु सूर कितने भी प्रसिद्ध, संप्रदाय के लिए कितने उपयोगी क्यों न रहे हों, थे तो आखिरकार दास ही । स्वामी के साथ दास का भी जन्म-दिवस मनाया जाए, यह बात स्वामी के कद को छोटा करती है । आचार्यों की तरह सूर का भी जन्मदिवस मनाया जाता रहे इसके लिए सुरक्षित तरीका खोजा गया । डा० दीनदयालु गुप्त लिखते हैं - नाथद्वार में सूरदास का जन्म-दिवस गुप्त रूप से वैशाख सुदी पंचमी को आचार्य जी के जन्मदिवस के दस दिन बाद मनाया जाता है । भक्तों के जन्म-दिवसों के उत्सव प्रत्यक्ष समारोह के साथ इसलिए नहीं मनाए जाते कि संप्रदाय के आचार्यों के सामने दासों का जन्म दिवस मनाना उत्कर्ष का कार्य नहीं समझा जाता । सूर के जन्म दिवस मनाने की परंपरा नाथद्वार में बहुत प्राचीन काल से चली आती है ।<sup>83</sup>

### परमानंददास

आलोचकों ने कवि के रूप में परमानंददास का स्थान सूरदास के बाद माना है । इन दोनों कवियों को संप्रदाय में 'लीला सागर' कहा जाता है । सूर की तरह परमानंददास भी बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले 'स्वामी' थे और सेवक बनाते थे । इन्हें कवीश्वर कहा जाता था । कवीश्वर परमानंददास ने सूर की तरह अपने जीवन के बारे में कुछ खास नहीं लिखा है । उनका जीवन वृत्तांत जानने के लिए संप्रदाय की सूचनाओं, विशेषकर वार्ता साहित्य पर निर्भर रहना पड़ता है ।

'भाव प्रकाश' के अनुसार परमानंददास का जन्म कन्नौज में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उनके पिता को एक सेठ ने उसी दिन दान स्वरूप बहुत द्रव्य दिया । ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर कहा 'यह पुत्र बड़ा भाग्यवान है, जाके जन्मत ही मोकों परम आनंद भयो' । सो मैं या पुत्र को नाम परमानंददास ही धरूँगा ।' परमानंददास के जन्म की सांप्रदायिक व्याख्या करते हुए 'भाव प्रकाश' में कहा गया है कि जब आचार्य जी महाप्रभु देवी जीवों के उद्धारार्थ पृथ्वी पर प्रकट हुए तो उनके समस्त परिकरों का भी देश-देशांतर में प्रकटन हुआ, 'सो ये परमानंददास बड़े कृपापात्र भगवदीय हैं, लीला मध्य पाती श्रीठाकुर जी के अंतरंग सखा हैं, सो जब श्री आचार्य जी आपु श्री गोवर्धन नाथ जी की आज्ञा तें देवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर प्रकट भए, तैसे ही श्री ठाकुर जी सहित सगरो परिकर प्रकट भयो । सो देवी जीव अनेक देशांतर में प्रकट भए ।'<sup>84</sup>

एक बार अकाल पड़ा । कन्नौज के हाकिम ने कर कसूलने में बढ़ी सख्ती दिखाई । उसने परमानंददास के पिता ब्वारा संग्रह किया गया धन लूट लिया । लूट और अकाल से क्रुत माता पिता ने परमानंददास से कहा, 'हम तेरो व्याह हू न करन पाए और सब द्रव्य यों ही गयो, तासो अब तू कमाइवे को उपाय कर ।'<sup>85</sup> परमानंददास ने विवाह करने से मना कर दिया और माता पिता से कहा कि धन संग्रह की चाह

ठीक नहीं । मुझसे साने भर का अनाज ले लिया करो और बैठे-बैठे श्री ठाकुर जी का नाम लिया करो । पिता ने कहा कि 'तुम तो वैरागी हुए । तुम्हारी संगति भी वैरागियों की है । पर हम तो गृहस्थ हैं । द्रव्य नहीं रहना तो खर्च कैसे निबाहेंगे ।' पिता धन कमाने परदेस चले गए और वहीं बस गए । इधर परमानंददास कीर्तन गायन की वजह से गांव-गांव में मशहूर होने लगे । 'सो परमानंददास' स्वामी' कहाक्ते । आप कीर्तन बोहोत गावते । आप सेवक करते, तातें परमानंददास जी के पास समाज बोहोत रहती ।'<sup>86</sup>

मकर स्नान करने परमानंददास एक बार कन्नोज से प्रयाग आए । वहां उनके कीर्तनों की चर्चा होने लगी । प्रयाग के पास ही अईल नामक गांव है । श्री आचार्य जी उन दिनों वहीं रह रहे थे । कुछ लोगों ने परमानंददास की प्रशंसा उनसे भी की । आचार्य जी का सेवक जलधरिया कपूर परमानंददास जी का भजन सुनना चाहता था लेकिन जाने का साहस नहीं कर पा रहा था, 'जो श्री आचार्यजी आप सुनेंगे तो सीजेगी जो तू सेवा छोड़ि के क्यों गयो ?'<sup>87</sup> जलधरिया कीर्तन सुनने का प्रलोभन सभाल न सका । एक रात उसने तैर कर नदी पार की और प्रयाग पहुंच कर परमानंददास का कीर्तन सुना । परमानंद स्वामी के कीर्तन सुनिके बोहोत प्रसन्न भए और परमानंद स्वामी सो कह्यो जो जैसे हम सुने ह्ये, तातें अधिक देखे । तू ऊपर भगक्त कृपा अनुग्रह पूर्ण है ।'<sup>88</sup> उसी रात स्वप्न में परमानंद स्वामी को नवनीतप्रिय जी के दर्शन हुए । नवनीतप्रिय जी ने बताया कि आज मैंने तुम्हारा कीर्तन सुना । मैं आचार्यजी के सेवक के साथ आया था । स्वयं ठाकुरजी की प्रशंसा सुनकर परमानंद स्वामी जलधरिया सेवक से मिलने प्रयाग चले आए । सुबह का वक्त था । आचार्य जी महाप्रभु यमुना जी के किनारे संध्यावंदन कर रहे थे । 'सो इन परमानंद स्वामी को श्री आचार्य जी महाप्रभुन को दरसन भयो । सो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चंद्र एसो दरसन परमानंद स्वामी को भयो ।'<sup>89</sup> ऐसा दर्शन पाकर परमानंदस्वामी चकित हो गए । मन में आया कि श्री आचार्य जी

से विनती कहं कि वे मुझे सेवक बना लें पर साहस न हुआ । परमानंद अपने मन में विचार कर ही रहे थे कि श्री आचार्य जी महाप्रभु का आदेश हुआ, 'परमानंददास कहूँ भगवद् जस कर्ण करो ।' परमानंद स्वामी ने आचार्य जी को साष्टांग दंडवत करके विरह के पद गाए । महाप्रभु बल्लभ ने कहा कि परमानंददास कुछ बाललीला के पद भी गावो । परमानंद स्वामी बोले, 'जो महाराज बाललीला में कहूँ समझत नाहीं ।' महाप्रभु जी ने कहा कि स्नान करके आओ, तुमको हम समझावेंगे । तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कृपा करि के नाम सुनायो पाछे मंदिर में पधारि श्री नवनीत प्रिय जी के सनिधान परमानंददास को ब्रह्म-सनिधान ब्रह्म संबंध करवायो । पाछे अनुग्रह करि के परमानंददास को अनुक्रमणिका सुनाई ।<sup>90</sup> ... अनु-क्रमणिका द्वारा श्री भागवतरूपी समुद्र श्री आचार्य जी महाप्रभु ने परमानंद दास के हृदय में धर्यो ।<sup>91</sup> गौस्वामी हरिराय 'भाव प्रकाश' में लिखते हैं, 'परमानंददास को दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये ताको कारण यह है जो - सर्वोत्तम ग्रंथ श्री गुसाई जी प्रकट किये हैं । ता में श्री आचार्य जी को नाम कहे हैं जो 'श्री भागवत-पीयूष-समुद्र-मंथनक्षमः' सो श्री भागवत को श्री गुसाई जी अमृत को समुद्र करिके वर्णन किये, सो श्री आचार्य जी आप अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवतरूपी समुद्र परमानंददास के हृदय में स्थापन कियो । सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय में अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवत रूपी समुद्र स्थापन कियो हतो । तासों वैष्णव तो अनेक श्री आचार्य जी के कृपा पात्र हैं, परन्तु सूरदास और परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये । इन दोऊन के कीर्तन की संख्या नाहीं, सो दोऊ सागर कहवाये ।'<sup>92</sup>

'भागवत' के दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाने के बाद महाप्रभु ने परमानंददास के बाललीला के पद गाने की पुनः आज्ञा दी । परमानंद दास ने इस बार बाललीला के कई पद गाये । महाप्रभु बल्लभ ने परमानंद को परीक्षा में तरा पाया, इसलिए उन्हें यह दायित्व सौंपा - अब समय-समय के पद नित्य श्री नवनीत प्रिय जी को सुनायो करो, सो यह

तुम को कीर्तन की सेवा दीनी । परमानंद ने इस जिम्मेदारी का भली भांति निर्वह किया । वे आचार्य जी महाप्रभु से सुबोधिनी (भागवत की बल्लभाचार्य द्वारा की गई व्याख्या) की कथा रोज सुनते और अंतरसे अपने पदों में उतार देते - सो परमानंददास श्री नवनीतप्रिय जी को नित्य नये भांति-भांति के पद करिके सुनाये । जब अनौसर<sup>83</sup> होइ तब परमानंद दास श्री आचार्य जी महाप्रभु के आगे कीर्तन करते । श्री आचार्य जी महाप्रभु नित्य श्री सुबोधिनी जी की कथा कहते । सो जा समय जा प्रसंग की कथा श्री आचार्य जी के श्रीमुख तें सुनते ताही प्रसंग के कीर्तन (कथा भये पीछे) परमानंददास श्री आचार्य जी को सुनावते ।<sup>84</sup> एक पद में परमानंद दास ने बल्लभाचार्य जी से विनती की कि उन्हें अगले जन्मों में मानुष तन मिले, हरि भक्ति दृढ़ हो, ब्रज में वास हो और सबसे बढ़ कर बल्लभाचार्य जी के वंश की सेवा करने का अवसर मिले --

इह मांगों गोपीजन-वल्लभ ।

मनुष्य जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजै मोहि सुलभ ॥

श्री वल्लभ कुल को हो चरो वैष्णव जन को दास कहाऊँ ।

श्री यमुना जल नित प्रति न्हाऊँ मन क्रम वचन कृष्ण-गुन गाऊँ ॥

श्री भागवत श्रवन सुनो नित, इन तजि चित्त कहूँ अनत न लाऊँ ।

‘परमानंददास’ यह मांगत नित निर खों कबहुँ न आऊँ ॥<sup>85</sup>

परमानंददास पर विस्तृत और गंभीर शोध कार्य करने वाले डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने ‘परमानंद सागर’ का संपादन भी किया है । शुक्ल जी का निष्कर्ष है कि भागवत का तामस प्रकरण (दशम स्कंध) जिसे आचार्य वल्लभ ने परमानंददास के हृदय में स्थापित किया था (सांप्रदायिक मतव्यों के सर्वथा अनुकूल होने के कारण) उनकी पद रचना का आधार बना -  
‘तामस प्रकरण निःसाधन भक्तों के निरोध के लिए है । इस प्रकरण में पूतना वध से लेकर युगल गीत तक की समस्त लीलाएं आ जाती हैं । परमानंददास जी के सम्पूर्ण काव्य का यही केन्द्र बिन्दु है । यही लीलाएं उनके पदों

का विषय रही है ।<sup>96</sup> अपने एक पद में महाप्रभु बल्लभ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए परमानंद दास उन्हें लीला अवतार बताते हैं - 'पुरुषोत्तम सब ही के ठाकुर यह लीला अवतार ।'<sup>97</sup> एक अन्य पद में वे कहते हैं --

श्री बल्लभ रतन-जतन करि पायो ।

बह्यो जात मोहि राखि लियो है ये सुनि हाथ गहायो ॥

दुष्ट संग सब दूरि किये हैं चरननि सीस नवायो ।

'परमानंददास' को ठाकुर नैननि प्रगट दिखायो ॥<sup>98</sup>

अहिल से ब्रज आते हुए महाप्रभु बल्लभ कन्नौज में रुके थे । यहां परमानंददास विनती करके सभी सेवकों के साथ आचार्य जी को अपने घर पधराए ।

भोजन करके जब महाप्रभु 'गादी तकियान ऊपर विराजे' तो उन्होंने परमानंद दास को भगवद जस कर्णन करने को कहा । परमानंददास ने विरह का पद गाया - 'हरि तेरी लीला की सुधि आवति'<sup>99</sup> । सो सुनि के श्री आचार्य जी महाप्रभुन को मुर्छा आई । सो जा लीला को परमानंद दास ने पद गायो ता लीला में मग्न भये । सो देहानुसंधान न रह्यो । सो तीन दिन ताई श्री आचार्य जी महाप्रभुन को मुर्च्छा रही ।<sup>100</sup> और परमानंददास मन में हारये जो फेरि एसो पद न गाऊं । ताते पाहें परमानंददास ने सूधे पद गाये ।<sup>101</sup>

परमानंददास शरण में आने से पहले चूंकि स्वयं एक संप्रदाय चलाते थे इसलिए उनके बहुत से सेवक थे । उन सेवकों को उन्होंने बल्लभ संप्रदाय में मिला दिया - परमानंद दास ने जो सेवक किये हते, तिन सबन को श्री आचार्य जी के पास लाइ विनती कीनी जो महाराज । इन जीवन को अंगीकार करिये । तब श्री आचार्य जी आप परमानंददास सो कहें जो इनको तुम नाम सुनाइ के सेवक किये हैं, ताते अब हम पास तुम इनको सेवक क्यों करावत हो ? तब परमानंददास कहें जो महाराज । यह तो पहली दशा में स्वामीपनो हतो तासों सेवक किये । और अब तो में आपको दास हों । 'स्वामीप्रद' तो जो - स्वामी हैं तिनही को सोहत है । दास होय स्वामीपद चाहे सो मूरख है । तासों में अज्ञान दशा में सेवक किये, सो अब आप इनको



श्ररणा लैके उद्धार करिये । तब सबन को श्री आचार्य जी ने नाम सुनाइ सेवक किये ।<sup>102</sup>

पुष्टिमागीय सेव्य स्वरूपों में यमुनाजी की बड़ी मान्यता है । बल्लभाचार्य जी ने यमुना जी की स्तुति में 'यमुनाष्टक' प्रकरण ग्रंथ की रचना की थी । भागवत-टीका सुबोधिनी में उन्होंने यमुना जी को पुष्टिभक्ति<sup>103</sup> की साधिका और श्रीमुकुंद में रति बढ़ाने वाली बताया था । इसलिए यमुना जी की महिमा का गायन अष्टहापी कवियों के लिए आवश्यक था । सूरदास ने कई पद यमुनाजी की स्तुति में रचे हैं । परमानंददास की वार्ता में कहा गया है - श्रीआचार्य जी ने 'यमुनाष्टक' को पाठ परमानंददास को सिखायो । तब परमानंददास के हृदय में यमुनाजी को स्वरूप स्फुर्यो ।<sup>104</sup> यमुनाष्टक में महाप्रभु बल्लभ ने लिखा कि जो भक्त यमुना-जल-पान करते हैं उन्हें यमराज की यातना नहीं फेलनी पड़ती । क्योंकि यमुना धर्मराज की बहन हैं और भाई अपने बहन के पुत्रों को, भले ही वे दुष्ट क्यों न हों, कैसे मार सकता है -

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं  
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः ।  
यमोऽपि भगिनीसुतान्कथमुहन्ति दुष्टानपि  
प्रियो भवति सेवनात्त्रव हरेर्यथा गोपिकाः ॥<sup>105</sup>

परमानंददास ने इसके अनुकरण पर लिखा :

तू जमुना गोपालहिं भावै ।  
जमुना-जमुना नाम उचारै धर्मराज ताकी न चलावै ॥  
जे जमुना को दरसन पावें जे जमुना-जल-पान करे ।  
सो प्राणी जमलोक न देखें चित्रगुप्त लेखो न धरें ॥<sup>106</sup>

अष्टहाप कवियों को पद रचना (और उसके विषय वस्तु) का निर्देश बल्लभाचार्य के अलावा विट्ठलनाथ भी दिया करते थे । सूरदास को उन्होंने

‘पालना’ लिखने की रीति बताई थी, परमानंददास को ‘मंगलान्त’ रचने का निर्देश दिया। ‘पालना’ की रचना विट्ठलनाथ ने संस्कृत में की थी, ‘मंगल काव्य’ भी संस्कृत में ही लिखा। इस तरह, दोनों कवियों ने भाषा काव्य संस्कृत रचना के अनुकरण पर बनाया। वार्ता में लिखा गया है कि गुसाईं विट्ठलनाथ को संप्रदाय चलाना था वे भाषा में रचना कर ही कैसे सकते थे ? आशय यह कि आचार्य लोग देववाणी में ‘माडल’ तैयार करेंगे, उसे भावगम्य बनाने का, ‘भासा’ में उतारने का दायित्व सेवकों का है।

एक दिन परमानंददास श्री गुसाईं जी के और श्री नवनीत प्रिय जी के दर्शन को गोपालपुर तें श्रीगोकुल आये, सो दर्शन करिके रात्रि तहां रहे।

पाछे प्रातःकाल श्री गुसाईं जी स्नान करिके श्री नवनीतप्रिय जी के मंदिर में पधारे तब परमानंददास को बुलाए। तब परमानंददास आगे आइ दंडवत किए। तब गुसाईं जी आप परमानंददास सों कहे जो - श्रीठाकुर जी को सगरी लीला ब्रज की बेहोत प्रिय है। सो नित्यलीला ब्रज की श्री ठाकुर जी को सुनावे, सो तो कोई काल में हू पार पावे नांही। सो काहें ते ? जो - एक लीला को पार प्ये तो सगरी लीला कौन गावे। परंतु मैं एक कीर्तन करि दैत हूं, तामें सगरी ब्रज की लीला को अनुभव है। सो तुम या समय नित्य गाइयो।

तब परमानंददास कहे जो - महाराज। वह पद कृपा करिके बताइये। सो श्री गुसाईं जी तो मार्ग के चलाइवे वारे हैं सो भाषा के पद करे नांही। तासों संस्कृत में कीर्तन गायो। सो पद : मंगल-मंगलं  
ब्रज-भुवि मंगलम् सो यह पद आप गाइके परमानंददास को गवाये। तब मंगलरूप परमानंददास ने और हू पद गाये। सो पद :

- 1) मंगल माधो नाम उचार।
- 2) मंगल आरती करि मन मोर

सो या प्रकार श्रीगुसांई जी कृत 'मंगल-मंगल' के अनुसार परमानंददास ने  
बोहीत कीर्तन किए और श्रीगुसांई जी कृत मंगल-मंगल पद नित्य गावते ।<sup>107</sup>

परमानंददास ने एक बार श्री वल्लभाचार्य से प्रार्थना की कि वे उन्हें  
अपने चरणारविंद की सेवा से अलग न करें<sup>108</sup> --

1) यह मागों जसोदा नंदन ।

चरण कमल मेरी मन मधुकर या हृदि नैननि पाऊं दरसन ।  
चरण कमल की सेवा दीजे दोऊ तन राजत बिज्जु लताधन ।<sup>109</sup>

+ + +

2) जब लगि जमुना गाय गोवर्धन, तब लगि गोकुल गाम गुसांई । ...

जब लगि रस सेवक सेवा रस, नंदनंदन सो प्रीति निबाही ।

'परमानंद' ताते हरि क्रीडत, श्री वल्लभ चरण रेणु जन पाई ॥<sup>110</sup>

एक अन्य पद में परमानंददास ने महाप्रभु वल्लभाचार्य की स्तुति इस  
प्रकार की है :

जे श्रीवल्लभ देव धनी ।

रास विलास करत गोवर्धन मूरति ललित बनी ॥

पुरुषोत्तम मुख कमल विकसित रसिकन-मध्य मनी ।

वरन निवेदन देवि-जीवनि को कृपा करी जु धनी ॥

श्रीभागवत-सुधा-निधि मथि कैं बानी निगम बनी ।

लीला-सृष्टि सिंधु सब पूरित देवी निज अपनी ॥

श्री विट्ठल प्रगटित 'परमानंद' भजन-प्रचार बनी ।

श्री जमुना-पुलिन-केलि वृंदावन गिरिधर गुनित गुनी ॥<sup>111</sup>

महाप्रभु वल्लभाचार्य के अलावा परमानंददास ने अपना जीवन कृतार्थ  
करने के लिए गुसांई विट्ठलनाथ की बधाई भी गाई, उन्हें 'भजनानंद' और  
'रास-विलासी' कहा :

(1) श्रीवल्लभनंदन आनंदकंद ।

मायावाद-निवारण-कारण फ्राटे दिन्न वृंदावन चंद ॥

भजनानंद निकुंज निवासी रास-विलासी परम आनंद ।

परमानंद प्रभु अगणित महिमा पार न पावत है श्रुति हृंद ॥<sup>112</sup>

(2) श्रीवल्लभ गृह सदा बधाई ।

जबते फ्राट भये श्री वल्लभ तब ते महानिधि आई ॥

+ +

परम भजन पुरुषोत्तम-लीला प्रगट ब्रह्मादिक गाई ।

लाल गोवर्द्धन धर की पद-रज परमानंद बलि जाई ॥<sup>113</sup>

दास भी स्वामी से बराबरी से बातें कर सकता है बशर्ते समय ने उसकी एकनिष्ठता प्रमाणित की हो - वह लंबे वक्त तक दत्तचित्त सेवा में लगा रहा हो । चार दिन पहले सेवा में आया हुआ भक्ति-भाव के स्तर पर भी समकक्षता की इच्छा रखे तो उसे उसकी दक्षिणत बता दी जाएगी । परमानंददास को महाप्रभु ने इसी तरह एक बार शिक्षा दी थी । राज-समाज सहित एक राजा श्रीनाथ जी का दर्शन करने आया । राजाने तो दर्शन कर लिया पर रानी का मन था कि वे एकांत में दर्शन करेंगी । उन्होंने अपनी मंशा राजा से बतायी । राजा ने कहा कि ठाकुर जी से क्या परदा ? रानी को फिर भी भीड़ में दर्शन करना स्वीकार न हुआ । डरते-डरते राजा महाप्रभुवल्लभ के पास पहुंचा और अपनी समस्या रखी । महाप्रभु ने आश्वस्त किया, 'जो - हां, हां वाकों बुलावो । प्रथम एकांत में वाकों दरसन करावेंगे । पाछे सब लोग दरसन करेंगे ।'<sup>114</sup> रानी एकांत पाकर दर्शन के लिए गई । इतने में आइके श्रीनाथ जी ने (सिंहासन सों उठि के) सिंध पोरि के किवाड खोलि दिए । सो सब भीड़ दोरि के रानी के ऊपर परी । सो रानी के वस्त्र सब निकसि गए । बोहोत निर्लज्ज भई ।<sup>115</sup> रानी ने राजा से आकर सब वृत्तान्त कहा । राजा बोले, 'ये ब्रज के ठाकुर हैं । इनने काहू को परदा राख्यो नाहीं' ।<sup>116</sup> इस प्रसंग पर परमानंददास ने एक पद बनाकर गाया :

कौन इह खेलिवे की बानि ।

मदनगोपाल लाल काहू की राखत नांहरि कानि ॥

परमानंददास पद पूरा करते कि महाप्रभु ने उन्हें रोक दिया । बल्लभ प्रभु बोले कि 'परमानंददास । ऐसे कहो जो 'भली इह सैलिवे की बानि' । परमानंददास ने ऐसा ही गाया । महाप्रभु के इस आदेश का स्पष्टीकरण करते हुए वार्ता में लिखा गया है -

'सो काहे तैं ? जो अब ही परमानंददास को 'दास' पदवी दिये हैं । सो दास-भाव सो रहै, और बोलै, तो प्रभु आगे कृपा करें । जब परम भाव दृढ़ होय, तब बराबरी सो वार्ता होय । तासों बिना अधिकार अधिकार अधिक भाव नाही है । जो करै तो नीचे गिरै । सो जब श्री ठाकुर जी सरलभाव को दान करें, तबही बनै ।'<sup>117</sup>

परमानंददास ने संप्रदाय की रीति के अनुसार नित्योत्सवों और वर्षोत्सवों के पद गाए । महाप्रभु ने उन्हें बाललीला कर्णिका का जिम्मा विशेष रूप से दिया था । परमानंद ने इसीलिए बाललीला पर सर्वाधिक पद बनाए । पद-रचना के लिए महाप्रभु बल्लभ और गुसाईं कट्ठलनाथ से समय-समय पर निर्देश मिलते रहे । परमानंददास ने उनका पालन किया । कृष्णलीला के अतिरिक्त परमानंददास ने संप्रदाय की ज़रूरतों के अनुसार अक्षर-विशेष के पद बनाए । ऐसे पदों की सूची में अज्ञाय-तृतीया, स्नान-यात्रा, रथ-यात्रा, वर्षा-ऋतु, हिंडोरा, पवित्रा, रक्षाबंधन, दशहरा, रामोत्सव, नरसिंह जी तथा वामन जी के पद गिने जा सकते हैं ।<sup>118</sup> जब परमानंददास का अंत समय निकट आया तो वे सुरभी कुंड पर चले गए । उनका हालचाल लेने गुसाईं जी वहां पहुंचे । परमानंददास ने उन्हें 'साष्टांग दण्डवत्' करके यह पद गाया - 'प्रीति तो श्री नंद-नंदन सो कीजे'<sup>119</sup> वहीं एक वैष्णव ने परमानंददास से पूछा, 'मोको कछु साधन बताओ सो में कहूं जातै श्री ठाकुर जी आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइके कृपा करें ।'<sup>120</sup> परमानंददास ने कहा, 'जो सुगम उपाय है सो में कहूं या बात को मन लगाइके सुनौगे तो फल सिद्ध होयगी ।'<sup>121</sup> परमानंद ने उसी समय श्री आचार्य जी, श्री गोस्वामी जी और उनके सात बालकों के चरणों की वंदना का निम्नलिखित पद गाया :

प्रातःकाल उठि करि करिये श्री लक्ष्मन सुत गान ।  
 प्रकट भये श्री बल्लभ प्रभु देत भक्ति दान ॥  
 श्रीविठ्ठल पुरन कृष्ण रूप के निधान ।  
 श्रीगिरिधर श्रीगिरधर उदय भयो भान ॥  
 श्रीगोविंद आनंद कंद कहा बरनौ गुन गान ।  
 श्रीबालकृष्ण बाल केलि रूप ही सुजान ॥  
 श्रीगोकुल नाथ प्रगट कियो मारग बखान ।  
 श्री रघुनाथ लाल देखि मनमथ ही लजान ॥  
 श्री जदुनाथ महाप्रभु पुरन भगवान ।  
 श्रीधन श्याम पुरन-का पौथी में ध्यान ॥  
 पांडु रंग विठ्ठल करत वेद गान ।  
 परमानंद निरखि लीला थके सुर-विमान ॥<sup>122</sup>

### कुंभनदास

बल्लभाचार्य की शरण में आने को वरिष्ठता क्रम का आधार माना जाए तो कुंभनदास अष्टछापी कवियों में वरिष्ठतम थे । श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राक्त्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मुखारविंद का प्राक्त्य संवत् 1535 वि० केसास बदी एकादशी बृहस्पतिवार को हुआ । इस हिसाब से कुंभनदास जी का जन्म संवत् लगभग 1525 वि० (सन् 1468 ई०) सिद्ध होता है । संवत् 1549 वि० में श्री बल्लभाचार्य जी ने श्री नाथ जी को छोटे मंदिर में पाट बैठाया । चौरासी वार्ता तथा गोवर्धन नाथ जी के प्राक्त्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि उसी समय कुंभनदास जी स्त्री सहित आचार्यजी की शरण आए । इस प्रकार कुंभनदास जी का शरणागति काल संवत् 1549 वि० (सन् 1492 ई०) है ।<sup>123</sup> कुंभन दास गौरवा क्षत्रिय कहे गए हैं ।<sup>124</sup> ये साधारणकिशान थे । इनका परिवार पर्याप्त बड़ा था । सात पुत्र थे और उतनी ही बहुरं । इसके अलावा विधवा भतीजी भी इन्हीं के पास रहती थी । कुंभनदास का जीवन अभावों

में ही गुजरता था।<sup>125</sup>

शरण में आने के बाद श्री आचार्य जी ने कुंभनदास को श्रीनाथ जी की सेवा का भार सौंपा । उन्होंने कुंभनदास को आज्ञा दी, 'तुम देव-दमन के दर्शन बिना प्रसाद मति लीजियो ।'<sup>126</sup> कुंभनदास श्री आचार्य जी महाप्रभुन की आज्ञा ते नित्य जमुना कते तें श्रीगौवर्धननाथ के दर्शन को आवते । सो वे कुंभनदास कीर्तन बौहोत नीके गावते । गरी कुंभनदास को बौहोत सुंदर हतो । सो जब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन ने कुंभनदास को ब्रह्म-संबंध करवायो तब कुंभनदास को सब लीला-स्फूर्ति भई ।<sup>127</sup> सो कुंभनदास नित्य नए पद करिके श्रीगौवर्धननाथ जी को सुनायो करें ।

जिस तरह सूरदास को मान लीला और परमानंददास को बाल लीला के पद गाने का निर्देश था, उसी तरह कुंभनदास को निकुंजलीला के पद गाने का । लेकिन पहले दोनों कवि 'लीला-सागर' थे इसलिए वे निर्देशित लीला के अतिरिक्त अन्य लीलाओं के पद भी गाते थे । कुंभनदास आजीवन निकुंजलीला के पद ही गाते रहे । श्री आचार्य जी आप कहे जो - कुंभनदास । निकुंज लीला संबंधी रस को अनुभव भयो ? तब कुंभनदास ने दंडवत कीनी और कह्यो जो - महाराज आपकी कृपा तें ।<sup>128</sup> सो कुंभनदास सगरे कीर्तन जुगल स्वरूप संबंधी किए । सो ब्याई, फलना, बाललीला गाई नाही । सो एसे कृपापात्र भगवदीय भए ।<sup>129</sup> जुगल स्वरूप या निकुंज लीला के कीर्तन मधुर भाव के कीर्तन हैं । पुष्टि मार्ग में माधुर्य भावना पर अधिक बल गुसाईं विट्ठल नाथ जी ने दिया था । तब से भक्ति के अन्य प्रकारों की अपेक्षा माधुर्य भावना की ओर भक्तों का अधिक झुकाव हो गया था । स्वयं विट्ठलनाथ जी ने 'शृंगार रस मंडन', 'स्वामिनी अष्टक' और 'स्वामिनी स्तोत्र' की रचना माधुर्य भाव के आधार पर की थी ।<sup>130</sup> कुछ विद्वानों का मानना है कि पुष्टिमार्गीय भक्ति में माधुर्य भावना का समावेश गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव से हुआ था ।<sup>131</sup> प्रभुदयाल भीतल जी ने इस मान्यता का खण्डन करते हुए बताया है कि

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दो माधुर्यमूलक काव्य 'मधुराष्टक' एवं 'परि-  
बृढाष्टक' रचे थे । इनकी रचना संवत् 1550 वि० के कुछ ही समय  
पश्चात् हुई थी । उस समय गौड़ीय संप्रदाय के संस्थापक प्रचारक श्री  
चैतन्य देव का बाल्यकाल था ।<sup>132</sup> मीतल जी ने यह भी लिखा है  
कि, 'पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि कुंभनदास, पद्मनाभ  
दास और श्रीभट्ट श्री आचार्य जी के आरंभिक शिष्यों में से थे। उनकी जो  
रचनाएं उपलब्ध हैं, वे सभी माधुर्य भावना से ओत-प्रोत हैं, यहाँ तक कि  
उनमें वात्सल्य भाव के पद ढूँढ़ने पर भी कदाचित् ही मिलें ।'<sup>133</sup>

वार्ता ग्रंथों की रचना असल में वैष्णवों की अगाध अक्विलि  
निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए की गई है । संप्रदाय के भविष्य को सुरक्षित  
रखने के लिए यह उपक्रम ज़रूरी था । सूरदास को तो अकबर ने बुलाया ही  
था, कुंभनदास को भी एक बार बुलवा भेजा । अकबर की कुंभनदास से भेंट  
संवत् 1638 वि० के लगभग हुई थी ।<sup>134</sup> कुंभनदास का देशाधिपति से  
मिलने फतेहपुर सीकरी जाने का मन नहीं था, पर उन्होंने क्वारा, 'अब  
उहाँ जाइवे बिना न चलेगो ।' उनको लेने आए सरकारी मुलाजिमों ने  
कहा, 'अब बाबा साहिब । असवारी में बैठके चलिए ।' कुंभनदास ने मन्ना  
कर दिया । वे पैदल ही फतेहपुर सीकरी आए । देशाधिपति ने कुंभन से  
गाने के लिए कहा । तब कुंभनदास के मन में बहुत बुरी लगी सो क्वारे  
जो - गाए बिना छुटकारो होइगो नाहीं और या म्लेच्छ के आगे तो  
श्रीठाकुर जी की लीला के पद गाए जाएं नाहीं ... मेरी वाणी के  
भोक्ता तो श्रीगोवर्धनधर हैं, परि कछू गाए बिना तो गोहन न होइगो ।  
तातेँ एसो गाँउ जो - यह कुठि के मेरो नाम कबहू न लेइ ।'<sup>135</sup> कुंभनदास  
जी ने एक नया पद वहीं बनाकर गाया :

भक्त कौ कहा सीकरी सो काम ।

आक्त जात पन्हैया टूटी क्सरि गयो हरि नाम ॥

जाकौ मुख देखत दुख उपजै ताकों करन परी प्रनाम ।

'कुंभनदास' लाल गिरधर बिनु यह सब भूठो धाम ॥<sup>136</sup>

कुंभनदास का यह पद भक्ति काल के बारे में जिस सामान्य धारणा



(राजसत्ता से दूरी) के निर्माण में सहायक हुआ है, उससे हम परिचित ही हैं। पिछले अध्यायों में हमने राजसत्ता से वल्लभ संप्रदाय की निकटता के पर्याप्त प्रमाण देते हैं। अकबर के अलावा अन्य मुगल बादशाहों—जहांगीर और शाहजहाँ ने भी वल्लभ संप्रदाय की रियायतों, माफियों के फरमान जारी किए थे। विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद भी ऐसे फरमान जारी होते रहे हैं। ये फरमान विट्ठलनाथ के नाम पर ही जारी किए जाते थे, पर उनमें उनके वंशजों के लिए 'नसल बाद नसल' या 'नसलनदरनसल' शब्द और ला दिए गए।<sup>137</sup> कुंभनदास का उक्त पद वास्तव में उनकी अनन्यता का सूचक है। सिद्धान्ततः सीकरी (राजसत्ता) से संबंध दास के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। स्वामी ही राजा से संबंध बना, बढ़ा सकता है। देशाधिपति से संपर्क साधने का काम 'महाराज' का है। सेवक यह काम करे तो उससे उसके महाराज की हेठी होगी। सेवक का काम अपने स्वामी की सेवा करना है, सीकरी से उसका क्या वास्ता ?

पुष्टिमार्ग में श्रीनाथ जी का प्राक्त्य दिक्स बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इसके साथ महाप्रभु वल्लभ और गुसाईं विट्ठल के जन्म-दिवस भी समारोहपूर्वक आयोजित होते हैं। कुंभनदास की वार्ता में आया है कि गुसाईं विट्ठलनाथ का जन्म दिक्स मनाने का आदेश श्रीनाथ जी ने स्वयं दिया था,<sup>138</sup> और एक समय श्री गुसाईं जी को जन्म दिक्स आयी। तब श्रीगोवर्धननाथ जी अपने मन में विचारे जो - मेरी जन्म-दिवस श्री गुसाईं जी सब वैष्णव सहित जगत में प्रगट किये। तासों में हू अब गुसाईं जी को जन्म दिक्स प्रगट करूं।<sup>138</sup> श्री गोवर्धननाथ जी ने सेवकों से कहा, 'मोको श्री गुसाईं जी को जन्मदिवस मनानो है। सो तुम सगरे मिलिके श्री गुसाईं जी के जन्म दिन को मंडान करो।'<sup>139</sup> जन्म दिक्स मनाने के लिए वैष्णव सेवकों को बंदा करना पड़ा। किसी वैष्णव ने एक रुपया किया, किसी ने दो। सद्गु पाडे नामक वैष्णव ने घी और आटे का बंदोबस्त किया। अब बचे कुंभनदास - पाडे कुंभनदास तत्काल घर आए।

तब घर तो कल्लु हतो नाहीं, सो दोइ पाडा और दोइ पडिया एक ब्रजवासी के पास बेचिके पांच रुपैया लाइके कुंभनदास ने रामदास जी को दिये ।<sup>140</sup> गुसाईं जी को जब इस उत्सव का पता चला तो उन्होंने मंदिर के भीतरिया रामदास जी को बुलाकर पूछा, 'जो सामग्री बौहोत है और सेवक (मंदिर के) तो थोरे हैं और निष्किंवन हैं, सो सामग्री कौन प्रकार सो भई है ?' जिस सेवक ने जितना दिया था, रामदास भीतरिया ने गुसाईं जी को बताया । गुसाईं जी ने कुंभनदास को बुला कर पूछा, 'कुंभनदास तुम पांच रुपैया कहाँ से लाये ? जो तिहारे घर की कात तो हम सब जानत हैं ।' कुंभनदास ने कहा, 'महाराज । मेरी घर कहाँ है ? मेरी घर तो आपके चरणारविंद में है, जो - यह तो आपको है ।... अपनी शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके आपके अर्थ लो, तब वैष्णव धर्म सिद्ध होय ।'<sup>141</sup> सहज ही समझा जा सकता है कि ऐसा समर्पित सेवक सीकरी से संपर्क की बात सोच भी नहीं सकता । गुसाईं जी के जन्म दिवस पर कुंभनदास ने बधाई गार्ह थी । यह बधाई बाद के दिनों में भी बहुत श्रद्धा से गार्ह जाती रही -

- ( अ ) आजु बधाई श्रीवल्लभ द्वार ।  
 ( ब ) प्रकट भये श्री वल्लभ आप ।<sup>142</sup>  
 ( स ) प्रकटे श्री विट्ठलेश लाल गोपाल ।

कलियुग जीव उधारन कारन संत जनन प्रतिपाल ।

दिवज कुल मंडन तिलक तैलंग श्री वल्लभ कुल जो अति रसाल ।  
 कुंभनदास प्रभु गोवर्धन धर नित्य उठ नैह करत ब्रज बाल ॥<sup>143</sup>

गुसाईं विट्ठलनाथ के अलावा कुंभनदास ने महाप्रभु वल्लभाचार्य की बधाई भी गार्ह थी --

इलम्प श्री वल्लभलालहिं फुलावे ।

लाल फुलावे मनहुल्लावे प्रमुदित मंगल गावे ॥

गृह कर डार पाटकी करसों मन ही मन हुल्लावे ।

कुंभन प्रभु की कृषि निरखत ब्रज-जन मंगल गावे ॥<sup>144</sup>

(इलम्प महाप्रभु वल्लभ की माता का नाम था और लक्ष्मणभट्ट पिता का)

### कृष्णादास अधिकारी

कृष्णादास अष्टहाप के कवि होने के साथ-साथ श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी भी थे । इनका जीवन घटनाओं, विवादों से भरा रहा । 'भाव प्रकाश' में कहा गया है कि गुजरात के चिलौतरा गांव में एक कुन्बी पटेल के यहाँ इनका जन्म हुआ था । जब कृष्णादास बारह-तेरह वर्ष के थे तब इनके गांव में एक व्यापारी आया था । कृष्णादास के पिता गांव के हाकिम थे । उन्होंने व्यापारी के चौदह हजार रुपये लुटवा लिए । कृष्णादास से यह अन्याय देखा न गया । उन्होंने राजा के सामने जा कर सचाई बयान कर दी । पिता को व्यापारी के पैसे वापस करने पड़े । पिता ने कृष्णादास के सामने प्रस्ताव रखा, 'जो - तू कहीं सरचीले घर तें कहीं दूरि चलो जा, न तोकों देखी, न दुख होइगी ।' <sup>145</sup> कृष्णादास घूमते-घूमते गोवर्धननाथ चले आए । यहाँ इनकी भेंट आचार्य जी से हुई और ये पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर लिए गए ।

कृष्णादास बहुत दबंग थे । इन्हें पहले 'भेटिया' नियुक्त किया गया था । ये दूर-दूर के सेवकों से श्रीनाथ जी के लिए भेंट लेकर आते थे । ऐसे ही एक बार ये द्वारिका से वापस लौट रहे थे । रास्ते में मीरा का गांव आया । मीरा चूंकि पुष्टिमार्गीय नहीं थी, इसलिए कृष्णादास उनके यहाँ गए तो पर भेंट स्वीकार नहीं की । वार्ता से साफ जाहिर होता है कि ये मीरा के यहाँ उनका अपमान करने ही गए थे । <sup>146</sup> इस घटना से इनका पुष्टिमार्ग के प्रति अगाध समर्पण सिद्ध होता है । श्रीनाथ जी के मंदिर का वैभव बढ़ाने के लिए कृष्णादास ने बंगाली ब्राह्मणों को जिस तरह मंदिर की सेवा से निकाल बाहर किया था, उससे इनकी रणनीतिक समझ तथा राजनीतिक संपर्कों का पता चलता है । <sup>147</sup>

और कृष्णादास ने कीर्तन बोहोत किए । सो एक सभै सूरदास ने

कृष्णादास सों कह्यो जो तुम पद करत हो, तामें मेरी छाया आवत है ।  
 तब कृष्णादास ने सूरदास सों कह्यो जो - अबके ऐसी पद करूं तामें तुमारी  
 छाया न आवे तब कृष्णादास एकांत बैठिके एकाग्र चित्त करिके नयो पद  
 करन लागे । सो तामें तीन तुक तो किए, और चौथी तुक बने नाहीं ।  
 तब कृष्णादास ने मन में कह्यो जो आगे तुक नहीं चलत तोलों प्रसाद  
 लेके फेरि विचारेंगे ... तब श्रीनाथ जी ने चौथी तुक लिख दीनी ।<sup>148</sup>  
 कृष्णादास ने वह पद सूरदास के सामने गाया । सो सूरदास तीन तुक ताईं  
 तो बोलै नाहीं जब तीन तुक आगे कहन लागे तब सूरदास ने कृष्णादास  
 सों कह्यो जो कृष्णादास । मेरे तुम सों वाद है प्रभुन सों वाद नाहीं ।  
 में प्रभुन की बानी पहिचानत हों । तब कृष्णादास चुप करि रहे ।<sup>149</sup>

वैष्णाव जन एक बार कुंभनदास से मिलने आए । कुंभनदास ने उन  
 का स्वागत किया और आने का कारण पूछा । वैष्णावों ने कहा कि हम  
 आपसे मार्ग की रीति सुनने आए हैं । कुंभनदास का जवाब था, "मार्ग की  
 रीति में तो कृष्णादास अधिकारी निपुण हैं सो उन्हीं से पूछो ।"<sup>150</sup> वैष्णावों  
 ने जो कहा उससे लगता है कि कृष्णादास अधिकारी से बात करना सब के  
 वश का नहीं था, "उन वैष्णावन ने कही जो हमारी सामर्थ्य नाहीं है,  
 जो कृष्णा दास सों पूछि सकें ।"<sup>151</sup> कुंभनदास ने कहा कि चलो, तुम्हारी  
 तरफ से मैं पूछूंगा । वैष्णावों को पुष्टिमार्ग का भाव समझाने के लिए  
 कृष्णादास ने अष्टाक्षर और पंचाक्षर मंत्रों पर आधारित दो कीर्तन बनाए।  
 वार्ता में इन दोनों कीर्तनों की पहली पंक्तियाँ (मुखड़े) उद्धृत हैं :

(क) कृष्णा श्रीकृष्णा शरणं मन उच्चरै ।

(ख) कृष्णा ये कृष्णा मन माहिगति जानिये ।<sup>152</sup>

कृष्णादास अधिकारी का गंगाबाई क्षत्राणी से बहुत स्नेह था ।  
 गुसाईं विठ्ठलनाथ को इस संबंध पर आपत्ति थी । एक बार गुसाईं जी  
 ने कृष्णादास को टोक दिया । कृष्णादास मंदिर के अधिकारी थे ।  
 उन्होंने गुसाईं जी का मंदिर में प्रवेश निषिद्ध कर दिया । गुसाईं जी

के बड़े पुत्र गिरिधर जी से यह सूचना बीरबल को मिली । बीरबल ने फौज भेजकर कृष्णादास को कैद करवा लिया । गुसाईं जी की इच्छा से फिर उन्हें छोड़ा गया । कृष्णादास नतमस्तक हो गए । उन्होंने गुसाईं विट्ठल नाथ जी की स्तुति में यह पद गाया :

श्री विट्ठलजी के चरननि की बलि ।

हमसे पतित उधारन कारन परम कृपाल आपु आये बलि ॥

+ + +

अतिसय मृदुल सुगंध सुसीतल परसत त्रिविध ताप डारत मलि।

कहि 'कृष्णादास' बार इक सिर धरि तेरी कहा करंगो रिपु कलि॥<sup>153</sup>

कैद से छूटने के बाद कृष्णादास को गुसाईं जी अपने घर ले गए । वहां उन्हें महाप्रसाद लेने को कहा । कृष्णादास ने कहा पहले आप भोजन कीजिए बाद में मैं प्रसाद ले लूंगा । गुसाईं जी भोजन करने बैठे । कृष्णादास ने उस वक्त यह पद गाया :

ताही को सिर नाइये श्रीवल्लभ सुत-पद-रज-रति होइ ।

कीजे कहा अति ऊंचे पद तिनसों कहा सगाईं मोइ ॥

जाके मन में उग्र भ्रम है श्री विट्ठल श्रीगिरिधर दोइ ।

ताकों संग विषम विष होते भूले चतुर करो जिनि कोइ॥

'कृष्णादास' <sup>+</sup>सुर ते <sup>+</sup>असुर भए, असुर ते <sup>+</sup>सुर भए चरननिं होइ ॥<sup>154</sup>

यह पद सुनिके श्री गुसाईं जी बोहोत प्रसन्न भए । पाकें भोजन करि के श्री गुसाईं जी उठे, तब कृष्णादास भीतर गए तब श्री गिरिधर जी ने श्री गुसाईं जी की जूठन की पातरि कृष्णादास के आगे धरी तब कृष्णादास ने प्रसाद लियो ।<sup>155</sup>

गुसाईं जी ने कृष्णादास को फिर से अधिकारी का पद दिया ।

कृष्णादास ने श्रीनाथ जी के समक्ष एक पद पुनः बनाकर गाया :

परम कृपालु श्रीवल्लभ नंदन करत कृपा निज हाथ दै माथे ।  
 जे जन सरन आइ अनुसरहीं गहि सौंपत श्री गोवर्धन नाथे ॥  
 परम उदार चतुर चिंतामनि राखत भक्धारा तैं साथे ।  
 भज 'कृष्णादास' कारज सब सरहीं जो जानै श्री विट्ठलनाथे ॥<sup>156</sup>

कृष्णादास की लेखनी न सिर्फ विट्ठलनाथ के महिमा गान में जुटी रही अपितु वल्लभाचार्य की स्तुति करके स्वयं को धन्य करती रही :

श्रीमद् वल्लभ नमो नमो ।  
 विमल बाहु जिन दिक्क वपु धार्यों पुराणोत्तम जय नमो नमो ॥

+ + +

शिव सनकादिक नारद मुनि जन पार न पाक्त नमो नमो ।  
 में मतिमंद नाहिं मति मोटी, कृष्णादास प्रभु नमो नमो ॥<sup>157</sup>

इसके अलावा कृष्णादास ने गुसाईं विट्ठलनाथ के सात पुत्रों की बधाइयां भी गाई हैं । बधाई का एक पद नीचे दिया जाता है :

जे श्री वल्लभनंदन गाऊं ।  
 श्री गिरधरन सदा सुखदायक श्री गोविंद सिर नाऊं ॥  
 बालकृष्ण बालक संग विहरत गोकुलनाथ लड़ाऊं ।  
 श्री रघुनाथ प्रताप विमल जसु श्वनन सदा सुनाऊं ॥  
 गोकुल में यदुनाथ विराजत लीला पार न पाऊं ।  
 कृष्णादास को करौ हो कृपा, घनश्याम चरण लपटाऊं ॥<sup>158</sup>

कृष्णादास की मृत्यु कुएं में गिरने के कारण हुई । मरने के बाद उन्हें प्रेत योनि की प्राप्ति हुई । सो श्री गुसाईं जी कहे जो - हमारी अक्ल करी । सो या शरीर सो लौकिक भोग भुगतनो है । सो कुवा में गिरत मात्र कृष्णादास को लौकिक शरीर सिद्ध होइके पूररी की ओर एक पीपर को रख है, ता ऊपर प्रेत होइके रह्यो, भोग भुगतवे को ।<sup>159</sup>  
 प्रेत कृष्णादास ने एक ग्वाले के माध्यम से गुसाईं जी से क्षमा-याचना

की । गुसाईं जी को दया आ गई । तब श्रीगुसाईं जी आपु धुवघाट ऊपर आइके (अपने श्रीहस्त सों) कृष्णदास को कर्म करवाइके उद्धार कियो तब कृष्णदास को दिव्य शरीर भयो और लीला में प्राप्त भये ।<sup>160</sup>

### चत्रभुजदास

कुंभनदास के पांच पुत्र थे । पांचों लौकिक विषयासक्त । ठाकुर जी से बहिर्मुख पुत्रों से कुंभनदास कभी बोलते नहीं थे । पुत्रों की दशा से उनका मन उदास रहता । पीछे कृष्णदास नाम का एक पुत्र हुआ । उसका मन श्रीनाथ जी की सेवा में लगता था । उसे ठाकुर जी की गाय चराने का काम मिला । कुंभनदास इसे आधा पुत्र ही मानते क्योंकि कृष्णदास की कीर्तनों में कोई गति नहीं थी । कुंभन की उदासी देखकर गोवर्धन नाथ जी ने उन्हें भगवद् भक्त पुत्र का वरदान दिया । इस तरह चत्रभुजदास का जन्म हुआ । कुंभन ने चत्रभुजदास को बालपने में ही गुसाईं विट्ठलनाथ से नाम दिलवा दिया । बालक चत्रभुजदास ने उसी समय गुसाईं जी की स्तुति में यह पद बनाया :

सेवक की सुख-रासि सदा श्री वल्लभ राज कुमार ।  
 दरसन करत प्रसन्न होइ मन पुरुषोत्तम अवतार ॥  
 सुदृष्टि ही चितै सिद्धांत बतायो सेवा जग विस्तार ।  
 यह तजि अन्य ज्ञान को धावे भूलै कुमति विचार ॥  
 'चत्रभुजदास' उद्धरे पतित सब श्रीविट्ठल कृपा उदार ।  
 जाके हाथ गहि भुज दृढ करि गिरिधर नंद दुलार ॥<sup>161</sup>

इस तरह चत्रभुजदास ने बचपने से ही अपनी अनन्यता सिद्ध कर दी । उन्हें मार्ग की 'गोप्य रीति' की जानकारी भी हो गई । एक बार कुंभनदास और चत्रभुजदास अपने गांव जमुनावती में बैठे हुए थे, 'सो अद्वैतात्रि के समय श्रीनाथ जी के मंदिर में दीवा बरत देखे । तब कुंभनदास ने चत्रभुजदास

कों सुनाइके कह्यो जो -

‘वे देखो बरत फर्रोखन दीपक, हरि पौदे ऊंची चिन्तारी’  
इतनी कहिके (कुंभनदास) चुप करि रहे । सो इह सुनि के चक्रभुजदास ने  
कह्यो जो -

‘सुंदर वदन निहारन कारन राखे बौहोत जतन करि प्यारी’  
यह सुनि के कुंभनदास ने चक्रभुजदास सों पूछी जो या लीला कौ अनुभव  
तोकों भयो ? तब चक्रभुजदास ने कह्यो जो - श्री गुसाईं जी की कृपा तें  
श्री महाप्रभु जी की कानिते (यह लीला कौ अनुभव) श्रीनाथ जी कृपा करि  
के जनाए हैं ।<sup>162</sup>

एक दिन गुसाईं जी ने चक्रभुजदास से कहा कि अपहरा कुंड जा  
कर रामदास भीतरिया को बुला लाओ और मिलें तो कुछ फूल भी लेंते  
आना । चक्रभुजदास ने जाकर रामदास से गुसाईं जी का संवाद कहा और  
आप फूललेने श्री गोवर्धनाथ जी के कंदरा के पास चले आए । तहां देखें  
तो श्रीस्वामिनी जी सहित श्रीनाथ जी कंदरा में ते उनीदे बाहिर पधारत  
हैं । तब तहां चक्रभुजदास ने पद गायो । सो पद :

श्री गोवर्धन गिरि सघन कंदरा । रैन-निवास कियो पिय प्यारी ॥  
उठि चले भौर सुरति-रंग भीने । नंद नंदन वृषभानु दुलारी ॥...  
धूमत आवत रविरन जीते । करनी के संग गज गिरिवरधारी ॥  
‘चक्रभुजदास’ निरखि दपति सुख।तन मन धन कीनो बलिहारी ॥<sup>163</sup>

यह पद सुनकर श्रीनाथ जी ने आज्ञा दी, ‘चक्रभुजदास । कहु और  
गावो ’ । चक्रभुजदास ने उसी समय दूसरा कीर्तन गाया - ‘रजनी राज  
कियो निकुंज नगर की रानी’ चक्रभुजदास ने यह कृतांत गुसाईं जी से कहा ।  
‘ता दिन तें श्री गुसाईं जी श्रीमुख तें आज्ञा करी, जो - चक्रभुजदास को  
शृंगार होत समय दर्शन होइ । सो जब श्रीनाथ जी कौ शृंगार होतो तब  
चक्रभुजदास ठाढे ठाढे कीर्तन करते । सो श्री गुसाईं जी, श्रीनाथ जी  
चक्रभुजदास पे एसी कृपा करते ।’<sup>164</sup>



चक्रभुजदास ने श्री गुसाई जी को अपनी तरफ से प्रसन्न रखने में कोई कसर न छोड़ी । एक पद में वे लिखते हैं कि विट्ठलनाथ गोकुल के राजा हैं । भक्तों के उद्धार के लिए उन्होंने कलियुग में अवतार लिया है । इनकी लीलाएं अनेक हैं । कृष्ण और विट्ठलनाथ वस्तुतः एक हैं, फर्क सिर्फ रूप का है :

श्री विट्ठलनाथ गोकुल भूप ।

भक्त हित कलियुग कृपा करि धरे प्रकट स्वरूप ॥

+ + +

आपु ही सेवा सिखावत, सकल रीति अनूप ।

भोग राग सिंगारु नाना चरिचि दीप अरु धूप ॥

चतुर्भुज प्रभु गिरधरन युग वपु लीला अनूप ।

नंद नंदन श्री वल्लभ नंदन एक मन द्वै रूप ॥ 165

एक पद में चक्रभुजदास ने बल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ तथा उनके सातों पुत्रों की स्तुति करते हुए अपने पूर्ण समर्पण का परिचय दिया है । कवि की कामना है कि उसे प्रतिदिन प्रातः प्राणपति (विट्ठल) के सम्पूर्ण कुल का चरणामृत मिले :

श्री वल्लभ सुजसु संतत नित गाऊं ।

मन क्रम बचन किनु एक न बिसराऊं ।

पुरुषोत्तम अवतार सुकृत फल फलित जगत बंदन श्री विट्ठलेश दुलराऊं ।

परसि पदकमल रज निरखि सौंदर्यनिधि प्रेम पुलकित कलहू कोटिक नसाऊं ।

श्री गिरिधरन देवपति मानमर्दन करन घोष रक्तक सुखदलीला सुनाऊं ।

श्री गोविंद ग्वाल संग गायले चलत बन रसिक रचना निरखि नैनन सिराऊं ।

श्री बालकृष्ण सदा सहज बालक दसा कमल लोचन सुहित रुचि बटाऊं ।

भक्ति मारग सुदृढ़ करन गुन रासि ब्रज मंडल श्री गोकुलनाथहि लड़ाऊं ।

श्री रघुनाथ धर्म धुरन्धर शोभा सिंधु रूप लहरीनि दुख दूर बहाऊं ।

पतित उद्धारन महाराज श्री यदुनाथ विशद अम्बुज हाथ सिर परसाऊं ।

श्री घनश्याम अभिराम रूप बरखा स्वाति आसि ज्यों रसचातक रटाऊं ।

चतुर्भुजदासप्रभु पर्यो द्वारे प्राणापति को सकल कुल चरणामृत भोर उठि पाऊँ<sup>166</sup>

जब गुसाईं विट्ठलनाथ लीला में पधारे तो चतुर्भुजदास को अपार दुख हुआ । अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति उन्होंने इस पद में की :

फिरि ब्रज बसहु श्री विट्ठलेश ।

करि कृपा मोहि दस दीजे उह लीला उह बस ॥

+ + +

श्रीवल्लभ नंदन दुख निकंदन सुनियो सुचित सदेस ।

‘चतुर्भुज’ प्रभु घोषजन के हरहु सकल कलेश ॥<sup>167</sup>

गुसाईं जी के विरह में अत्यंत आर्च भाव से चतुर्भुजदास ने यह क्विती की, ‘जो महाराज । अब मोको इहां मति राखो और आप तो अंतरजामी हो आप बिना इहां कौन को देखे ।’<sup>168</sup> विरह व्यथित चतुर्भुज दास ने यह पद गाया :

श्री विट्ठलेश प्रभु भए न होइ हैं ।

पाहे सुनेन आगे देखे यह कबि फेरि न बनहैं ॥

मानुष देहधरि भक्तहेतु कलिकाल जन्म को ले हैं । ...

श्रीवल्लभ सुत दारसन कारन अब सबही पक्षित हैं ।

चतुर्भुजदास आस या तन की उह सुमिरत जनम सिरै हैं ॥<sup>169</sup>

इस तरह विरह के कई पद बनाकर चतुर्भुजदास ने अपने प्राणापति गुसाईं विट्ठलनाथ के वियोग में देह छोड़ी । तब श्री गुसाईं जी के निकट लीला में आए ।<sup>170</sup>

नंददास

-----

नंददास गुसाईं विट्ठलनाथ की श्रृंखला में आए थे । ये अष्टकापी कवियों में सर्वाधिक पढ़े-लिखे कवि माने जाते हैं । वाता में इन्हें तुलसीदास

का भाई बताया गया है । विभिन्न प्रमाणों की समीक्षा करने के बाद प्रभुदयाल मीतल जी का कहना है, 'हमारे मतानुसार नंददास को तुलसीदास का भाई मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।'<sup>171</sup> वार्ता से ज्ञात होता है कि पुष्टिमार्ग में आने से पूर्व नंददास एक स्त्री की स्त्री पर आसक्त थे । उस स्त्री के परिवार वाले लोकापवाद से बचने के लिए गोकुल चले गए । पीछा करते हुए नंददास भी यहां आ पहुंचे । यहीं उनकी भेंट विट्ठलनाथ जी से हुई और वे गुसाईं जी के सेवक बन गए । 'ता सभ श्री गुसाईं जी को स्वरूप नंददास के हृदयालु भयो, सो गुसाईं जी के संनिधान एक पद करि के गायो । सोपद --

जयति रुक्मिणी नाथ, पद्मावती-प्राण-पति, विप्रकुलहृत्र आनंदकारी ॥  
दीपवल्भवंश, जगत क्लमस हरन, कोटि उडुराज सम तापहारी ॥  
जयति भक्त पतित पावन करन, काम पूरन चारी ॥  
मुक्ति-कांक्षीय जन भक्ति-दायक प्रभु, सकल सामर्थ्य गुण-गननि भारी ॥  
जयति सकल तीरथ फलें नाम सुमिरत मात्र, ब्रजवासनित गोकुलबिहारी ॥  
'नंददास' निज नाथ, पिता गिरिधर आदि, प्रगट अवतार गिरिराजधारी<sup>172</sup>

(गुसाईं विट्ठलनाथ की पहली पत्नी रुक्मिणी जी तथा दूसरी पत्नी पद्मावती जी थीं ।)

अष्टहाप के बहुप्रशंसित समर्थ कवि नंददास अपने स्वामी विट्ठलनाथ के स्तुति गायन में कभी थके नहीं । एक पद में वे कहते हैं कि प्रातः विट्ठल जी का दर्शन करना चाहिए । ये तीनों लोक में वंदित पुरुषोत्तम हैं । इनकी उपमा कैसे दी जाए । श्री वल्लभ के कुल का चंद्रमा उदित हुआ है, चकोर बनकर ह्म ह्मि का पान करना चाहिए । इन पर अपना तन, मन, धन, सब न्योहावर कीजिए :

प्रातः सभे श्री वल्लभ सुत को, वदन कमल को दर्शन कीजे ।  
तीन लोक वंदित पुरुषोत्तम, उपमा काहि जो पटतर दीजे ॥  
श्री वल्लभ सुत कुल उदित चंद्रमा, लखि ह्मि नैन चकोरन पीजे ।  
'नंददास' श्री वल्लभ सुत पर, तन मन धन न्योहावर कीजे ॥<sup>173</sup>

एक दिन प्रातःकाल श्री गुसाईं जी आपु नंददास के पास पधारे । तब आपने नंददास के कान में कही, जो - (उठो नंददास ॥) दर्शन को समी भयी है । तब नंददास तत्काल उठि के श्री गुसाईं जी को दंडवत करके ताही समे पद करिके गायो ॥<sup>174</sup> पद इस प्रकार है :

प्रात समे श्री वल्लभ सुत को उठत ही रसना लीजिये नाम ॥  
 आनंदकारी प्रभु मंगलकारी, अमुभ हरन जन पूरन काम ।  
 इहलोक परलोक के बंधु को कहि सके तिहारे गुन-ग्राम ॥  
 नंददास प्रभु रसिक सिरौमनि राज करौ गोकुल सुल्लभाम ॥<sup>175</sup>

यदि गुसाईं विठ्ठलनाथ को 'पूरण पुरुषोत्तम का दिक्क अवतार' न माना जाए तो नंददास का यह पद (तथा दूसरे अष्टछापी कवियों के तमाम पद) चारण-काव्य की श्रेणी में गिने जायेंगे ।

नंददास ने विठ्ठलनाथ के अतिरिक्त उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर की वंदना में यह पद लिखा :

सुंदर सुभग वदन गिरिधर को, निरखि निरखि मैं दृगन सिराऊं ।  
 मोहन मधुर बचन श्रीमुख के श्रवननि सुनि सुनि हृदय बसाऊं ॥  
 तन मन प्राण निवेदन करिके सकल अपुनपौ सुफल कराऊं ।  
 रहौं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद सो जूठन पाऊं ॥<sup>176</sup>

### क्षीत स्वामी

क्षीतस्वामी मथुरा के चौबे थे। इन्हें क्षीतू चौबे कहा जाता था । वार्ता में इनके बारे में लिखा गया है, 'क्षीत स्वामी मथुरिया ब्राह्मण होते, तिन सों सब कोऊ 'क्षीतू चौबे' कहते । सो मथुरा में मथुरिया चौबे नामजादी हैं, तिन में ए पांच चौबे तो महाई कुटिल हैं । तिन में क्षीतू

चौबे सिरदार हते, सो बड़े गुंडा हते। सोविश्रांतिघाट ऊपर बैठे रहते,  
 लुगाइन को देखते, उन सो मसखरी करते ।<sup>177</sup> इन पांच चौबों ने गुसाईं  
 विट्ठलनाथ की परीक्षा लेनी चाही । एक छोटा रुपया लिया और एक  
 खाली नारियल । गोकुल पहुंच कर हीतू चौबे ने साधियों से कहा कि तुम  
 लोग बाहर रुको में भीतर जा कर 'टोना-टमना' देखकर आता हूं ।  
 हीतू भीतर पहुंचे । गुसाईं जी पीढ़े हुए थे और ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरस्वामी  
 जी वहीं बैठे हुए थे। उन्हें देखते ही हीतू का मन बदल गया, 'ये तो  
 साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ईश्वर हैं । मोको धिक्कार है, में ईश्वर सो  
 कुटिलता करन आयो ।'<sup>178</sup> हीतू चौबे को देखते गुसाईं जी ने कहा, 'हीत  
 स्वामी । आगे आउ । बोहोत दिनन में देखे।' हीत स्वामी ने विनती  
 की, 'महाराज । मेरो अपराध क्षमा करो, और मोको सरनि लीजिए ।  
 हम नाहीं जानत जो कौन अपराध तें स्वामी भए हैं ? हमारे अब भाग्य  
 खुले हैं जो आपके दर्शन पाए । अब ऐसी कृपा करो जो स्वामित्व छूटे ।  
 जो - आपके दास कहाइवे की इच्छा है ।'<sup>179</sup> गुसाईं जी ने हीत स्वामी  
 पर कृपा की और उन्हें नाम सुनाया । इधर बाहर बैठे बाकी चार साधियों  
 को लगा कि हीतू चौबे तो टोना के शिकार हो गए हैं इसलिए यहां से  
 भाग जाना ही बेहतर है ।

शरण में आने पर हीत स्वामी ने यह पद गाया :

हों चरणात पत्र की बहियां ।

कृपासिंधु श्री वल्लभ-नंदन, बहयो जात राख्यो गहि बहियां ।।

नव नखचंद्र सरद राका ससि, त्रिविध ताप मैटत छिन महियां ।

'हीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल, सुजस बखान सकति श्रुति नहियां ।<sup>180</sup>

'यह कीर्तन सुनि के श्री गुसाईं जी बोहोत प्रसन्न भए । तब हीत स्वामी ने  
 दण्डवत करिके कही जो - महाराज । आपु तो प्रभु हो, आप को श्रुति  
 जो - वेद है सोउ पार पावत नाहीं, तो और की कहा सामर्थ्य है, जो  
 आप को जस गान करे ?'<sup>181</sup> श्रीनाथ जी और गुसाईं जी को एक स्वरूप

जानकर ह्रीत स्वामी ने यह पद गाया :

जे वसुदेव किए पूरन तप, तेई फल फलित श्री वल्लभ देह ।  
 जे गोपाल हते गोकुल में, तेई सब आइ बसे करि गेह ॥  
 जे वे गोप बधू ही ब्रज में, तेई अब वेद-रिचा भई एह ।  
 'ह्रीत स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल, एई-तेई तेई-एई कहु न सदेह ॥<sup>182</sup>

ह्रीत स्वामी बीरबल के पुरोहित थे । गुसाईं जी की शरण में आने के बाद प्रतिवर्ष की भांति वार्षिक वृत्ति - 'बरसौठी' लेने बीरबल के यहां गए । बीरबल ने अपने पुरोहित को घर में ठहराया । प्रातःकाल उठकर ह्रीत स्वामी माहाप्रभु का नाम स्मरण कर यह पद गाने लगे :

जे श्रीवल्लभ राजकुमार ।  
 पर पासंड कपट खंडन करि सकल वेद धुरि धार ॥  
 परम पुनीत तपोनिधि पावन तन सोभा जितमार ।  
 श्रीमुख वाक्य कथित लीलामृत सकल जीव निस्तार ॥...  
 'ह्रीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल प्रगट कृष्ण अवतार ॥<sup>183</sup>

बीरबल को विट्ठलनाथ की यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी । लेकिन उन्होंने ह्रीत स्वामी से कुछ कहा नहीं । यद्यपि बीरबल इसके पूर्व ही पुष्टि संप्रदाय से प्रभावित होकर उसकी कई उलझी हुई राजनैतिक गुत्थियां सुलझा चुके थे, उनकी पुत्री श्री गुसाईं जी की शिष्या और संप्रदाय में दीक्षित थी। वे गुसाईं जी को पूज्य आदर भाव से देखते और उन्हें एक महापुरुष समझते थे । पर ह्रीत स्वामी की 'प्रगट कृष्ण अवतार' वाली भावना उन्हें कुछ उचित नहीं जंची ।<sup>184</sup> थोड़ी देर बाद ह्रीत स्वामी ने प्रभु की प्रशंसा में एक पद और गाया : 'जे वसुदेव किए पूरन तप, तेई फल फलित श्रीवल्लभ देह । ह्रीत स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल तेई एह, एह तेई कहु न सदेह ॥' इस बार बीरबल से न रहा गया । उन्होंने कहा, 'देसाधिपति तो मलेच्छ हैं, सो सुनि पावैगो और तुमको पूछैगो, तब तुम कहा जवाब

देउगे ?<sup>185</sup> बीरबल की इस शंका पर क्षीत स्वामी भड़क उठे । 'तब क्षीत स्वामी ने बीरबल सों कह्यो जो देसाधिपति सुनेगो तो जब पूछेगो तब की बात तब, परि मेरे भाए तो तुम ही मलेच्छ हो, जो तोकों एसी बुद्धि उपजी । जो - जा (मैं तो आज तैं) तेरो मुख न देखुंगो । एसो बीरबल को तिरस्कार करिके उहां ते चले ।'<sup>186</sup> जब गुसाईं जी को पता चला कि क्षीत स्वामी बीरबल से वार्षिक वृत्ति लिए बिना ही चले आए हैं तो उन्होंने प्रैकल्पिक व्यवस्था की । लाहौर के कुछ वैष्णवों के यहां चिट्ठी लिखकर आदेश दिया कि क्षीत स्वामी जब जाएं तो उन्हें भली भांति विदा करना । गुसाईं जी ने क्षीत स्वामी से लाहौर जाने को कहा । क्षीत स्वामी का जवाब था, 'अब मैं कहा यह कर्म करुंगो जो वैष्णव होइके वैष्णव के पास भीख मांगूं ?' गुसाईं जी ने दुबारा लाहौर पत्र लिखा, 'क्षीत स्वामी तो इहां ते आइ सकत नाहीं है तासों यह ब्राह्मण गरीब हैं, जो - तुम तैं याकी टहल बनि आवै तो इहां ही मनुष्य के हाथ हुंड़ी कराइ पठाइ दीजो ।' तब उन वैष्णवन ने वह पत्र बांचि के रुपिया (1000) की हुंड़ी कराइके पठाई और उन वैष्णवन ने श्री गुसाईं जी को यह पत्र बिनती को लिख्यो, जो महाराज । इतनी हुंड़ी तो हम वर्ष पर्यन्त पठावेंगे । आप की हुंड़ी के साथ इनकी हुंड़ी पठावेंगे सदा ।'<sup>187</sup> इस वार्ता-प्रसंग पर गो० हरिराय ने भाव-प्रकाश में लिखा है, 'तातें क्षीत स्वामी उन बीरबल को त्याग करिके श्री गुसाईं जी को जस बढ़ायो । तो आप्नेहू बीरबल की बरसोइ जितनी क्षीत स्वामी करें कराइ दीनो । तातें वैष्णवन को तो दृढ विश्वास राखनो तो श्री गोवर्धनाथ जी के ऊपर ।'<sup>188</sup>

पो० कंठमणि शास्त्री ने क्षीत स्वामी के पदों पर विचार करते हुए लिखा है - 'क्षीत स्वामी ने अपनी संगीतमयी काव्य रचना में 'वर्षौत्सव' एवं नित्य लीला संबंधी सभी प्रकार के पद गाये हैं । संख्या-परिगणना के अनुसार उनके सबसे अधिक पद श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरणा-संबंधी समुपलब्ध होते हैं ।'<sup>189</sup>

### गोविंद स्वामी

गोविंद स्वामी आंतरी गांव में रहते थे । दीनदयालु गुप्त के अनुसार आंतरी गांव भरतपुर क्षेत्र में है ।<sup>190</sup> गोविंद 'स्वामी' थे । वे लोगों को दीक्षा देकर सेवक बनाया करते थे । इनके कीर्तन बहुत प्रसिद्ध थे । कई वैष्णवों ने इनके द्वारा रचे कीर्तन गुसाईं विट्ठलनाथ को सुनाया था । गुसाईं जी इन कीर्तनों की प्रशंसा करते थे । जब गोविंद स्वामी गुसाईं जी की शरण में आए तो वे गुसाईं जी के पास ही निरंतर रहते । श्री गुसाईं जी गोविंद दास को अपनी ही करि जानते ।

गोविंददास की पूर्व ख्याति के आधार पर कुछ लोग उनसे दीक्षा लेने गोकुल आए । गोविंददास ने उनसे कहा, कि गोविंद स्वामी को मरे बहुत दिन हो गए । अब मैं स्वामी नहीं दास हूँ । तब वे लोग कहे, जो - हमको नाम देत । तब गोविंददास ने कह्यो जो - अब तो मैं नाम देत नाही, अब तो दास हूँ । तातें तुम श्री गुसाईं जी पास नाम पाओ ।... पाछे गोविंददास उनको अपने संग ले जाइके श्री गुसाईं जी पास नाम दिवायो ।<sup>191</sup>

गोविंद स्वामी गुसाईं विट्ठलनाथ के प्रति पूर्णतया समर्पित थे । एक बार उनकी पुत्री मिलने आई । गोविंददास उससे कुछ नहीं बोले । 'बोलने से ध्यान बंट जाता' ऐसा गोविन्ददास का मानना था । उन्होंने वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ तथा वल्लभ कुल की स्तुति में तमाम पद लिखे । कुछ पद नीचे दिए जाते हैं :

(क) श्रीवल्लभ चरन लग्यो चित भैरो ।

इन बिन और कछु नहिं भावे इन चरननि को चैरो ॥

इनहिं छाहि जो और धावे सो अति मूढ धैरो ।

'गोविंद' इहि निश्चै करि लीनो सोई ज्ञान भलेरो ॥<sup>192</sup>



(ख) भोर भए सुमरहु श्रीवल्लभ सुत अथ मोचन है नाम अनूप ।  
 करि करुना अक्कीतल प्राटे विट्ठलनाथ श्री गोकुल भूप ॥  
 निज जन हेतु भक्ति भूतल सों कियो प्रचार धरि दिवजवर रूप ।  
 मायावाद निवारन कारन प्रगट्यौ आइ निगम को धूप ॥ <sup>193</sup>

(ग) जो पे श्री विट्ठल रूप न धरतै ।  
 तो कैसेक घोर कलियुग के महापतित निस्तरतै ॥  
 सेवा प्रीति रीति ब्रजजन की श्रीमुख तैं विस्तरतै ।  
 श्रीविट्ठल नाथ अमृत जिन लीनो रसना सरस सुफल तै ॥  
 कीरति बिसद सुनी जिनि सवननि विश्व विषै परिहरतै ।  
 'गोविन्द' बलि दरसन जिन पायो उमगि-उमगि रस भरतै ॥ <sup>194</sup>

इस अध्याय से गुजरते हुए पुष्टिमार्गी कवियों के व्यक्तित्व पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है । हम इस राय पर पहुँचते हैं कि मध्यकालीन कवियों को लौकाश्रयी और राज्याश्रयी खानों में बाँट कर भक्ति और रीतिकालीन रचनाकारों के अध्ययन की जो पारंपरिक दृष्टि है, उस पर पुनर्विचार की ज़रूरत है । भक्तिकालीन (अष्टछापी) कवि शब्द-सर्जना के क्षेत्र में उतने स्वतंत्र नहीं थे जितना हम आम तौर पर समझते रहे हैं । वे संप्रदाय के नियमों से बंधे हुए थे, सांप्रदायिक उत्सवों के लिए कीर्तन बनाते थे, सांप्रदायिक सिद्धांतों का पथानुवाद भी करते थे और आचार्यों की बधाइयाँ अनिवार्य रूप से गाते थे । बल्लभ संप्रदाय के विस्तार में इन कवियों का भारपूर सदुपयोग हुआ था । अगले अध्याय में हम इस संप्रदाय के विस्तार पर किंचित विचार करेंगे ।

संदर्भ

1. 'सूरदास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० 16
2. 'अष्टछाप परिचय' - प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, संवत् 2006, पृ० 57

3. वही, पृ० 57
4. वही
5. वही, पृ० 66
6. वही, पृ० 68
7. वही, पृ० 34
8. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० 194
9. वही, पृ० 195
10. अष्टहाप परिचय, पृ० 69
11. वही
12. वही, पृ० 35
13. 'कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय' - गोवर्धनाथ शुक्ल,  
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, संवत् 2020, पृ० 67
14. सर्वोत्तम स्तोत्र, पृ० 9
15. कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय, पृ० 118
16. वही, पृ० 117
17. वही, पृ० 114
18. षोडश ग्रंथ, संपादक श्री वागीश कुमार जी, वाक्पति फाउंडेशन,  
बड़ौदा, पृ० 41
19. वही, पृ० 56
20. कविवर परमानंददास, पृ० 118
21. 'सूर-सर्वस्व', प्रभुदयाल मीतल, राजपाल एंड सन, दिल्ली-6,  
1983, पृ० 11
22. 'वार्ता साहित्य एक वृहत अध्ययन', डा० हरिहरनाथ टंडन,  
पृ० 112 तथा 'सूर-सर्वस्व', मीतल, पृ० 52
23. वही, पृ० 124
24. वही, पृ० 125
25. वही, पृ० 125
26. 'अष्टहाप', प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, संपादक पो०  
कंठमणि शास्त्री, कांकरौली, सं० 2009, पृ० 6

27. वही, पृ० 10
28. वही, पृ० 11
29. सूर-सर्वस्व, मीतल, पृ० 135
30. अष्टहाप, पृ० 12
31. सूर-सर्वस्व, पृ० 143
32. अष्टहाप, पृ० 14
33. वही, पृ० 17-18
34. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० 250
35. वल्लभ संप्रदाय में 'नाम' और 'समर्पण' दो प्रकार की दीक्षा-विधियाँ प्रचलित हैं। इनमें 'नामदीक्षा' सामान्य है, और 'समर्पण दीक्षा' विशिष्ट है। नाम दीक्षा के लिए गुरु दीक्षार्थी के कान में 'श्रीकृष्णः शरणां मम' इस अष्टाक्षर मंत्र को तीन बार सुनाते हैं। इसे 'नाम सुनाना' कहा गया है। समर्पण दीक्षा में दीक्षार्थी को संसार की अहंता-ममता का परित्याग कर परब्रह्म श्रीकृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करने का संकल्प ही लेना होता है। इस दीक्षा की प्राप्ति करने वाले को विशेष प्रकार के रहन-सहन और आचार-विचार का पालन करना पड़ता है। समर्पण मंत्र का आशय इस प्रकार है - 'मैं श्रीकृष्ण की शरणा में हूँ। सत्सुखों वशों से मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है। वियोगजन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है, अतः मैं भगवान् श्रीकृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्जित करता हूँ। हे कृष्ण ! मैं आपका दास हूँ, मैं आपका ही हूँ।' - सूर-सर्वस्व - प्रभुदयाल मीतल, पृ० 145
36. अष्टहाप, पृ० 19
37. वही, पृ० 20-21
38. वही, पृ० 21
39. वही, पृ० 22

40. वही, पृ० 26
41. वही, पृ० 26
42. 'अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय', दीनदयालु गुप्त, पृ० 82
43. वही, पृ० 83
44. 'अष्टहाप' प्राचीन वार्ता रहस्य, पृ० 27
45. 'सूर-सर्वस्व', पृ० 158
46. वही, पृ० 158
47. 'अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय', पृ० 84
48. 'बड़े शिक्षा पत्र', पृ० 148
49. 'विवेक ध्याश्रय' (षोडश ग्रंथ में संकलित) पृ० 33
50. 'बड़े शिक्षा पत्र', पृ० 228
51. सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, पद संख्या 208 और 'सूर-सर्वस्व' में संकलित, पृ० 145
52. 'अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय', पृ० 84
53. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत विष्णुदास कृषी की वाता, पृ० 195-96
54. अष्टहाप और वल्लभ-संप्रदाय (एक गवेषणात्मक अध्ययन) - डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, दूसरा भाग, प्रथम संस्करण, संवत् 2004, पृ० 393-515
55. कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय - डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, अलीगढ़, पृ० 91
56. 'अष्टहाप', पृ० 30
57. 'सूरसागर', वैकटेश्वर प्रेस, संवत् 1964, पृ० 17 ; डा० दीनदयालु गुप्त द्वारा पूर्वोक्त में उद्धृत, पृ० 84
58. 'अष्टहाप', पृ० 37
59. 'अष्टहाप परिचय', मीतल, पृ० 137
60. 'अष्टहाप', पृ० 57
61. वही, पृ० 58-59

62. वही, पृ० 44-45
63. वही, पृ० 51
64. वही, पृ० 54
65. वही, पृ० 78
66. वही, पृ० 79
67. वही, पृ० 80
68. वही, पृ० 85
69. वही, पृ० 88
70. वही, पृ० 88
71. 'दो सौ बावन वैष्णव की वाता', पृ० 341
72. वही, पृ० 341
73. 'सूर-सर्वस्व', मीतल, पृ० 478
74. वही, पृ० 478
75. 'बड़े शिक्षा पत्र', पृ० 260
76. 'सूर-सर्वस्व', पृ० 479
77. वही, पृ० 479
78. वही, पृ० 479
79. वही, पृ० 480
80. 'अष्टहाप', पृ० 103-104
81. वही, पृ० 105-106
82. वही, पृ० 92-93
83. 'अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय', भाग एक, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० 166
84. 'अष्टहाप' (प्राचीन वाता रहस्य), पृ० 111
85. वही, पृ० 112
86. वही, पृ० 114
87. वही, पृ० 116

88. वही, पृ० 125
89. वही, पृ० 132
90. वही, पृ० 139-40
91. वही, पृ० 141
92. वही, पृ० 143
93. 'अनोसर' - इसे अनोसरु (अनक्सर) अर्थात् 'न अन्यस्य अक्षरः = अनक्सरः' कहा जाता है। वास्तव में यह अंतरंग सखाओं का ही समय होता है। यह ठाकुर जी के मध्याह्न विश्राम का समय है - 'कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय' - डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पृ० 177
94. अष्टहाप, पृ० 146-47
95. वही, पृ० 148 ; यह पद 'परमानंद सागर' में भी है। पद संख्या 1350
96. 'कविवर परमानंददास और वल्लभ संप्रदाय', डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, पृ० 121
97. वही, पृ० 67
98. 'परमानंद सागर', प्र० संपादक श्री ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, कांकरोली, पृ० 557
99. वही, पृ० 401 ; अष्टहाप, पृ० 151
100. 'अष्टहाप', पृ० 152
101. वही, पृ० 157-58
102. वही, पृ० 157-58
103. 'सूर-सर्वस्व', पृ० 374
104. 'अष्टहाप', पृ० 159
105. 'षोडश ग्रंथे', 'यमुष्णाष्टके', पृ० 6
106. परमानंद सागर, पृ० 619
107. 'अष्टहाप', पृ० 184-86 - परमानंद दास कृ त मंगल पद  
'परमानंद सागर' में पृष्ठ संख्या 26, 27, 37, 38, 609 पर देखे जा सकते हैं।

108. 'अष्टहाप', पृ० 164-65
109. वही, पृ० 164
110. वही, पृ० 165
111. 'परमानंद सागर', पृ० 556, पद संख्या 1236
112. वही, पृ० 525, पद संख्या 1187
113. वही, पृ० 525, पद संख्या 1188
114. 'अष्टहाप', पृ० 176
115. वही
116. वही
117. वही, पृ० 178
118. 'परमानंद सागर', पौ० कण्ठमणि शास्त्री द्वारा लिखित  
भूमिका से ।
119. 'अष्टहाप', पृ० 195
120. वही, पृ० 196
121. वही
122. वही, पृ० 197, पूरा पद 'परमानंद सागर' से, पृ० 555,  
पद संख्या 1235
123. 'अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय', डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० 242
124. वही, पृ० 231
125. वही
126. अष्टहाप, पृ० 210
127. वही, पृ० 211
128. वही, पृ० 212
129. वही
130. 'सूर-सर्वस्व', मीतल, पृ० 331
131. वही
132. वही
133. वही, पृ० 330

134. 'अष्टकाप परिचय' प्रभुदयाल मीतल, पृ० 102
135. 'अष्टकाप' प्राचीन वार्ता रहस्य, पृ० 232
136. वही, पृ० 233 ; यह पद 'संतन को कहा सीकरी सों काम'  
इस रूप में प्रचलित है । लेकिन, पुष्टि मार्ग में वैष्णवों को  
भक्त कहने का चलन है, संत नहीं ।
137. 'अष्टकाप और वल्लभ संप्रदाय', भाग एक, डा० दीनदयालु  
गुप्त, पृ० 78-79
138. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 309
139. वही, पृ० 310
140. वही, पृ० 310-11
141. वही, पृ० 314
142. वही, पृ० 311 - इस वार्ता ग्रंथ में पूरा पद प्राप्त नहीं है ।
143. पूर्वोद्धृत, डा० दीन दयालु गुप्त, पृ० 96
144. वही, पृ० 95-96
145. 'अष्टकाप', पृ० 337
146. वही, पृ० 340-41, मीरा-प्रसंग अध्याय तीन में विस्तार से  
आया है ।
147. इस प्रसंग की पर्याप्त चर्चा अध्याय एक व दो में हो चुकी है ।  
'अष्टकाप', पृ० 344-371
148. वही, पृ० 377
149. वही, पृ० 380
150. वही, पृ० 393
151. वही, पृ० 394
152. वही, पृ० 396
153. वही, पृ० 425
154. वही, पृ० 426
155. वही
156. वही, पृ० 429
157. 'अष्टकाप और वल्लभ संप्रदाय', दूसरा भाग, दीन दयाल गुप्त,  
पृ० 688



- 15 8. वही, पहला भाग, पृ० 97
159. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 439
160. वही, पृ० 450
161. वही, पृ० 467
162. वही, पृ० 475
163. वही, पृ० 490
164. वही, पृ० 491
165. 'अष्टकाप और वल्लभ संप्रदाय', पहला भाग, डा० दीनदयाल गुप्त, पृ० 102
166. वही, पृ० 101
167. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 518
168. वही, पृ० 519
169. वही, पृ० 520
170. वही, पृ० 521
171. 'अष्टकाप परिचय', प्रभुदयाल मीतल, पृ० 302
172. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 555
173. दीनदयालु गुप्त, पृ० 97
174. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 557
175. वही
176. दीनदयालु गुप्त, पृ० 97
177. 'अष्टकाप' (प्राचीन वार्ता रहस्य), पृ० 593
178. वही, पृ० 595
179. वही, पृ० 596
180. वही, पृ० 602
181. वही
182. वही, पृ० 606
183. वही, पृ० 610

184. क्खीत स्वामी - जीवनी और पद संग्रह, पो० कंठमणि शास्त्री  
द्वारा लिखित चारित्रिक विश्लेषण, विद्या विभाग,  
कांकरौली, पृ० 22
185. 'अष्टकूप', पृ० 612
186. वही
187. वही, पृ० 620
188. वही, पृ० 621
189. क्खीत स्वामी - जीवनी और पद संग्रह, पृ० 19
190. 'अष्टकूप और वल्लभ संप्रदाय', दीनदयालुगुप्त, पृ० 266
191. 'अष्टकूप', पृ० 634
192. गोविंद स्वामी : वार्ता एवं पद संग्रह, प्रधान संपादक गो० श्री  
ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, कांकरौली, पृ० 212
193. वही, पृ० 212
194. वही, पृ० 46

### पुष्टि मार्ग का विस्तार : राग, भोग और शृंगार की त्रयी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पुष्टि मार्ग के विस्तार पर अपनी राय व्यक्त करते हुए 'इतिहास' में लिखा, "रामानुजाचार्य के समान बल्लभाचार्य ने भी भारत के बहुत से भागों में पर्यटन और विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया था । अंत में अपने उपास्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में जाकर उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की और अपने शिष्य पूरनमल खत्री द्वारा गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का बड़ा भारी मंदिर निर्माण कराया तथा सेवा का बड़ा भारी मंडान बांधा । बल्लभ संप्रदाय में जो उपासना पद्धति या सेवा पद्धति ग्रहण की गई, उसमें भोग, राग तथा विलास की प्रभु सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही । मंदिरों की प्रशंसा 'केसर की चक्कियां चलें हैं' कहकर होने लगी । भोग विलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक सेविकाओं पर कहां तक अच्छा पड़ सकता था ।" <sup>1</sup> पुष्टि मार्ग का अध्ययन सिर्फ अतीत में घटी घटना का अध्ययन नहीं है, वह वर्तमान का भी विषय है । हमारे वक्त में पुष्टिमार्ग न केवल जीवित है अपितु उसका ऐश्वर्यपूर्ण विस्तार भी बना हुआ है । राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश में इसकी मुख्य गद्दियां तथा बैठकें हैं । इसके अलावा कुछ अन्य राज्यों में भी इसकी शाखाएं-प्रशाखाएं सक्रिय हैं । इस तरह देखा जाए तो बल्लभाचार्य के समय (सन् 1478-1530 ई०) से लेकर आज तक पुष्टि मार्ग निरंतर गतिशील है । अच्छा होता कि इसका संपूर्ण इतिहास एक साथ प्रस्तुत किया जाता, पर अध्ययन और शोध-प्रबंध की सीमा को देखते हुए ऐसा संभव नहीं लगता । प्रस्तुत अध्याय में हम आचार्य बल्लभ से लेकर गोस्वामी हरिराय (सन् 1590-1715 ई०) तक पुष्टि मार्ग का विकास-क्रम दर्शाने की चेष्टा करेंगे ।

आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि पुष्टिमार्ग के गठन और विस्तार के प्रारंभिक दिनों में तीन चीजों ने केन्द्रीय भूमिका निभाई थी :

- (1) आचार्य बल्लभ की यात्राएं और शास्त्रार्थ ।
- (2) गौवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण ।
- (3) राग, भोग और शृंगार की त्रयी से युक्त सेवा-विधान ।

पुष्टि संप्रदाय के अधिकारी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया है कि आचार्य बल्लभ की यात्राओं का पुष्टिमार्ग के प्रचार में सर्वाधिक योगदान रहा है । आचार्य जी महाप्रभु की यात्राएं संप्रदाय में 'पृथ्वी प्रदक्षिणाएं' कहलाती हैं । इन 'पृथ्वी प्रदक्षिणाओं' के दौरान उन्होंने शंकर के मायावाद का खण्डन करके भक्ति मार्ग का पक्ष स्थापित किया था । अपने मत प्रतिपादन में बल्लभाचार्य ने प्रतिपक्षी आचार्यों को पराजित किया था । यात्रा करते हुए उन्होंने तमाम शिष्य-सेवक बनाए थे । प्रभुदयाल मीतल ने आचार्य जी की तीन विस्तृत यात्राओं की चर्चा की है । उनके अनुसार आचार्य जी के बहुत से ग्रंथ इन्हीं यात्राओं में रचे गए थे ।<sup>2</sup>

आचार्य जी की प्रथम यात्रा सन् 1489 ई० में, पिता लक्ष्मण भट्ट की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् आरंभ हुई थी । इस समय आचार्य जी की आयु 12 वर्ष की थी । इस यात्रा में काशी से उज्जैन होते हुए वे दक्षिण की ओर गए थे और वहां विभिन्न वैष्णवाचार्यों के वेदांत विषयक सिद्धांतों का अध्ययन किया था । क्विया नगर में हुए शास्त्रार्थ में उन्होंने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का प्रतिपादन कर मायावादियों को परास्त किया । सन् 1493 ई० में वे घूमते-घूमते ब्रज पहुँचे और ब्रजमंडल की यात्रा पूरी की । यहीं उन्होंने ठकुरानी घाट पर अपने शिष्यों को 'ब्रह्म संबंध' की दीक्षा देना आरंभ किया । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि दामोदर दास हरसानी उनके प्रथम शिष्य बने । यह यात्रा लगभग 7 वर्ष में पूरी हुई ।<sup>3</sup>

बल्लभाचार्य की दूसरी यात्रा सन् 1497 में शुरू हुई । प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रचार को समर्पित यह यात्रा सन् 1501 में पूरी हुई । इस यात्रा में महाप्रभु बल्लभ गोवर्धन पहुंचे और 1499 ई० में श्रीनाथ जी के स्वरूप का प्राकट्य कर उसकी सेवा पूजा के लिए ब्रजवासियों को आवश्यक आदेश दिया<sup>4</sup> । इस यात्रा की समाप्ति के साथ बल्लभाचार्य का विवाह एक सजातीय ब्राह्मण की कन्या महालक्ष्मी से हुआ । संप्रदाय में महालक्ष्मी अक्काजी के नाम जानी जाती हैं ।

संवत् 1558 वि० (सन् 1501 ई०) के पौष महीने में महाप्रभु की तीसरी यात्रा शुरू हुई । यात्रा के आरंभ में वे गोवर्धन गए । यहीं पर श्रीनाथ जी का विशाल मंदिर बनाने की योजना तैयार हुई । महाप्रभु ने अंबाला के धनाढ्य सेठ पुरनमल खत्री को मंदिर निर्माण के लिए प्रेरित किया । मंदिर की नींव 1502 ई० में डाली गई । सन् 1506 ई० में महाप्रभु बल्लभ काशी पहुंचे और 'पत्रावलंबन' की रचना करके मायावादियों को परास्त किया । काशी से वे पुनः ब्रज पहुंचे । वहां सन् 1507 ई० में पुरनमल खत्री द्वारा बनवाए हुए नए मंदिर में श्रीनाथ जी का स्वरूप स्थापित किया । यहां से दक्षिण पहुंच कर उन्होंने सन् 1508 में विधानगर में आयोजित सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षियों को निरुत्तर किया । इस विजय पर राजा कृष्णादेव राय ने उनका कनकाभिषेक किया । यह यात्रा सन् 1509 ई० में पूरी हुई ।

'संप्रदाय कल्पद्रुम' के अनुसार विवाह के समय बल्लभाचार्य की आयु प्रायः 23 वर्ष की थी :

किय विवाह प्रभु वेद विधि, मधुमंगल दिक्क गेह ।  
गुण विंशति में वर्ष मधि, विट्ठलेश लसि नेह ॥<sup>5</sup>

इस वक्त उनकी पत्नी की आयु अनुमानतः 8 वर्ष की थी । 7 वर्ष पश्चात् सन् 1509 ई० में उनकी पत्नी का दिवरागमन हुआ । उस समय

तक वे अपनी तीनों यात्राओं की पूर्ति, दक्षिण विजय और आचार्यत्व ग्रहण कर चुके थे । वे गृहस्थाश्रम के निर्वाहार्थ प्रयाग के दूसरी ओर, यमुना के दक्षिण तट पर स्थित अडैल नामक ग्राम में अपना स्थायी निवास बनाकर रहने लगे । उनका दूसरा स्थायी निवास काशी के निकटवर्ती चरणाट नामक ग्राम में भी था ।<sup>6</sup>

बल्लभाचार्य जी के दो पुत्र हुए । कंठमणि शास्त्री के अनुसार उनके प्रथम पुत्र गोपीनाथ जी का प्राकट्य सं० 1568 ई० (सन् 1511 ई०) में अडैल नामक ग्राम में तथा छोटे पुत्र विट्ठलनाथ जी का प्राकट्य सं० 1572 वि० (सन् 1515 ई०) में चरणाट ग्राम में हुआ था ।

#### श्रीनाथ जी का प्राकट्य और मंदिर निर्माण

ब्रजमंडल में श्रीकृष्ण के लीला-स्थल पहले विलुप्त थे । सोलहवीं सदी के शुरू में यहाँ दो महान धर्म सुधारक - महाप्रभु बल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु पहुँचे और उन्होंने ही इन लीला स्थलों की पहचान की ।<sup>8</sup> इन स्थलों के विलुप्त होने के पीछे ग्यारहवीं शताब्दी से शुरू हुए मुस्लिम आक्रमणों को जिम्मेदार ठहराया जाता है । शालोतवाद केल के अनुसार 1017 ई० में अपने नवें आक्रमण के दौरान महमूद गजनवी ने मथुरा शहर को बीस दिनों तक लूटा था । शहर में बड़े पैमाने पर तबाही मचाई गई थी । सोने और चांदी की बहुत सी मूर्तियाँ लूट ली गई थीं । कुछ शताब्दियों पश्चात् कट्टर सुल्तान सिकन्दर लोदी (1488-1516 ई०) ने मथुरा नगर को पुनः लूटा और नष्ट किया था ।<sup>9</sup>

अपनी प्रथम ब्रजयात्रा में महाप्रभु बल्लभ सन् 1493 के लगभग ब्रज में आए थे । उस समय उन्होंने गोकुल, मथुरा, वृंदावन और गोवर्धन में निवास कर श्रीमद् भागवत का पारायण किया था और समस्त ब्रज की यात्रा की थी । कंठमणि शास्त्री के अनुसार श्रीनाथ जी ने स्वं महाप्रभु बल्लभ को 'आंतरिक आज्ञा' दी थी - 'आप ब्रज में आकर मेरा प्राकट्य करिये ।'<sup>10</sup>

श्रीनाथ जी की इच्छा को महत्व देते हुए बल्लभाचार्य ने अपनी यात्रा बीच में ही रोक दी थी और मथुरा पहुँचे थे । गिरिराज की तलहटी में आन्यौर नामक गाँव है । वहाँ सद्गु पाँडे के घर के सामने महाप्रभु ने ढेरा डाला । वहाँ आचार्य जी महाप्रभु को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ -

संवत् 1446 श्रावण कृष्ण 3 रविवार के दिन प्रातः काल गिरिराज पर्वत में सहसा श्रीनाथ जी की ऊर्ध्ववाम भुजा का प्रादुर्भाव हुआ । इस समय किसी भी व्यक्ति को इसकी खबर न हुई । श्रावण सुदी 5 नाग पंचमी के दिन एक ब्रजवासी अपनी गाय खोजता हुआ जब गिरिराज पहुँचा, तो वहाँ उसने ऊपर की ओर निकली हुई केवल भुजा के दर्शन किये । किसी मूर्ति की इस प्रकार निकली हुई भुजा को देखने के लिए प्रतिदिन ब्रजवासियों का समूह आने लगा, और सब लोग अपनी श्रद्धा भक्ति के कारण दूध-दही चढ़ाकर उसकी पूजा करने और मानता मानने लगे । इस प्रकार प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन वहाँ एक बड़ा मेला लगने लगा । धीरे-धीरे देवदमन, श्रीनाथ जी अथवा श्री गोवर्धन नाथ जी की चारों ओर ख्याति होने लगी, और कालक्रम से शनैः शनैः श्रीनाथ जी के स्वरूप का भी प्रादुर्भाव होने लगा । जिस दिन बल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ - सं० 1535 वैशाख कृष्ण 11, उसी दिन मध्याह्न काल में श्रीनाथ जी के मुखारविंद का भी प्राकट्य हुआ और लोगों ने उपस्थित होकर बड़ा उत्सव मनाया । ब्रजवासी लोग श्रीनाथ जी की बड़ी भक्तिपूर्वक आराधना करने लगे । उस समय से ब्रज में श्रीनाथ जी का नाम देवदमन, इन्द्रदमन और नागदमन रूप में प्रख्यात हुआ । आन्यौर-निवासी सद्गु पाँडे प्रतिदिन अपनी गाय का उत्तम दूध ले जाकर श्रीगोवर्धन नाथ जी को भोग लगाने लगा ।<sup>11</sup> इस वृत्तान्त से स्पष्ट है कि बल्लभाचार्य ने पहले से प्रकटित श्रीनाथ जी के स्वरूप को लोक-विश्रुत किया और अपनी सेवा-विधि से उनकी पूजा शुरू करवाई ।

ब्रज के लीला स्थलों के प्राकट्य के संदर्भ में 'चैतन्य चरितामृत' में कहा गया है कि अपनी ब्रजयात्रा (सन् 1516 ई०) से पहले चैतन्य ने अपने दो पट्ट शिष्यों रूप और सनातन गोस्वामी को ब्रज भेजा था । इसका

उद्देश्य उन पवित्र स्थलों और मूर्तियों को सौज कर उनकी देखभाल करना था जो बहुत पहले विलुप्त हो गई थीं।<sup>12</sup> कठमणि शास्त्री ने भी लिखा है कि महाप्रभु बल्लभ को सूचना मिली थी कि गौडीय संप्रदाय के विरक्त वेष्ठाव-माधवानंद ने उनके पहुंचने से पहले श्रीनाथ जी की सेवा करनी शुरू कर दी थी - उन्होंने बड़े प्रेम से श्रीनाथ जी की सेवा की और मोर-चंद्रिका तथा गुंजा की माला पहना कर भोग लाया। माधवानंद स्वामी इस प्रकार वहां रहकर प्रतिदिन श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए भगन्नामो-च्चारण द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करने लगे।<sup>13</sup> चैतन्य और बल्लभ दोनों प्रतिद्वन्दी संप्रदाय थे। दोनों का दावा है कि उनके आचार्यों ने ब्रज के लीला-स्थलों का प्राकट्य किया।<sup>14</sup> बल्लभ संप्रदाय के मंदिर गोकुल-महाका और गोवर्धन में बने और चैतन्य संप्रदाय ने वृंदावन में अपनी पीठ स्थापित की। चैतन्य संप्रदाय में माधुर्य-भाव की भक्ति पर जोर था। इनका मुकाबला निंबार्क संप्रदायियों से हुआ क्योंकि निंबार्क संप्रदाय में राधा को सर्वोपरि मान कर युगल किशोर की भक्ति की जाती थी।<sup>15</sup>

प्रभुदयाल मीतल के अनुसार सद्गु पांडे ने महाप्रभु बल्लभ को श्रीनाथ जी के स्वरूप का दर्शन कराया। बल्लभाचार्य ने एक छोटा सा कच्चा मंदिर बनवा कर उसमें उसे विराजमान कर दिया। उस समय सद्गु पांडे, रामदास चौहान, कुंभनदास प्रभृति अनेक ब्रजवासी बल्लभाचार्य जी के सेवक हुए।<sup>16</sup> बल्लभाचार्य ने सद्गु पांडे से श्रीनाथ जी की सेवा-पूजा करने को कहा, किन्तु उन्होंने अपने को ग्रामीण ब्रजवासी कहते हुए ठाकुर जी की सेवा विधि से अपने को अपरिचित बताया। तब बल्लभाचार्य ने रामदास चौहान से श्रीनाथ जी की सेवा करने को कहा। रामदास चौहान बुदेलखण्ड के एक राजपूत थे, जो ब्रज में आकर विरक्त भाव से अप्सरा कुंड के पास गिरिराज की कंदरा में भगवद्भजन किया करते थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा भक्तिपूर्वक श्रीनाथ जी की सेवा करना आरंभ किया। सद्गु पांडे सेवा-पूजा और भोग की सामग्री एकत्रित कर देते थे और कुंभनदास श्रीनाथ जी के सम्मुख कीर्तन किया करते थे।<sup>17</sup>



बल्लभाचार्य ने तृतीय यात्रा के अक्सर पर अंबाला के पुरनमल खत्री को श्रीनाथ जी का विशाल मंदिर बनवाने को कहा । इसके लिए आगरा से कुशल कारीगर बुलवाए गए । सन् 1502 ई० (संवत् 1559 वैशाख शु० 3) को मंदिर का निर्माण कार्य शुरू हुआ किन्तु द्रव्याभाव के कारण बीच में रुक गया । इस अधूरे मंदिर में ही आचार्य जी महाप्रभु ने श्रीनाथ जी को विराजमान किया । इस समय तक रामदास चौहान का देहांत हो जाने के कारण बंगाली वैष्णवों को सेवा का दायित्व मिला । चौरासी वैष्णवों की वार्ता में मंदिर निर्माण की कथा इस तरह मिलती है - 'सो पुरनमल की गांठि में द्रव्य बहुत हुताँ सो पुरनमल को श्रीनाथ जी की आज्ञा भई हुती जो तू मेरो मंदिर समराउ तब पुरनमल श्री आचार्य जी महाप्रभुन के पास आयो और आज के कह्यो महाराज मोको श्रीनाथ जी की ऐसी आज्ञा भई है तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने कह्यो जो मंदिर बेग समरावो तब पुरनमल ने श्री आचार्य जी महाप्रभुन सो नाम पायो पाकेँ मंदिर उठाका लाग्यो सो द्रव्य हुताँ सो सब नींव खोदबे में लग्यो जब सब द्रव्य निकट्यो पाकेँ पुरनमल चाकरी को पूरब गये तब राजसी लोगन ने श्रीआचार्य जी महाप्रभुन सो पूछे जो महाराज आज्ञा देउ तो हम मंदिर समरावे ... तब श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने नाहीं कीनी तब वे फिर गये तब कितेक दिन में पुरन मल पूरब ते बहुत द्रव्य कमाय के लायो तब पुरनमल ने कितनेकदिन में मंदिर समराय के सिद्ध करवायो पाकेँ श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने आछो मुहूर्त देखि के श्रीनाथ जी के मंदिर में पाट बैठाये तब पुरन मल ने बहुत द्रव्य खरचो ।।' <sup>18</sup> प्रभुदयाल मीतल के अनुसार मंदिर पूरा होने में 17 वर्ष लगे । मंदिर संवत् 1576 की वैशाख शुक्ल तृतीया को (सन् 1519 में) बनकर तैयार हुआ । <sup>19</sup> मीतल जी के अनुसार - श्रीनाथ जी का नवीन मंदिर पूर्णतया बन जाने पर एक समारोह किया गया, जिसमें बल्लभाचार्य जी भी सम्मिलित हुए । तब तक श्रीनाथ जी का वैभव पूर्व की अपेक्षा बहुत कुछ बढ़ गया था । मंदिर में सेवा सामग्री यथेष्ट परिमाण में एकत्रित होती थी । श्रीनाथ जी के दूध घर की सेवा के लिए सैकड़ों गायें एकत्रित

हो गई थीं, जिनके कारण निकटवर्ती ग्राम गोपालपुर कहा जाने लगा । कृष्णादास भेंटिया की अपेक्षा अधिकारी हो गए थे । श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में कुंभनदास के अतिरिक्त सूरदास भी सम्मिलित हो चुके थे । सेवा-पूजा का कार्य तब भी बंगाली वैष्णव करते रहे ।<sup>19</sup>

बल्लभाचार्य ने अपना ऐहिक जीवन समाप्त समझ कर शास्त्रानुसार संन्यास लेने का विचार किया । संन्यास हेतु पत्नी की अनुमति आवश्यक थी । पत्नी ने अनुमति नहीं दी । संन्यास का विचार महाप्रभु को कुछ दिनों के लिए स्थगित करना पड़ा । एक दिन जब बल्लभाचार्य अडैल में अपने निवास-स्थल में बैठे थे, घर के चारों ओर अग्नि का प्रकोप हो गया । इस उपद्रव को देख कर इनकी पत्नी ने घर छोड़ कर बाहर निकल जाने की प्रार्थना की । उन्होंने इस बात को ही संन्यास के लिए पत्नी की आज्ञा मान ली । संवत् 1587 ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष दशमी के दिन अडैल से वह प्रयाग आये और यहाँ नारायणोद्वेग तीर्थ स्वामी से सविधि संन्यास लेकर कुछ दिनों में काशी पधारे ।<sup>20</sup> काशीवास करते हुए उन्होंने वाक्-संन्यास का पालन किया । जब उनके दोनों पुत्रों ने वहाँ पहुँच कर अपने कर्तव्य के विषय में आज्ञा मांगी तो महाप्रभु बल्लभ ने उन्हें कुछ श्लोक लिखकर दिये । यही श्लोक आगे चल कर 'शिष्या श्लोक' के नाम से प्रख्यात हुए । संवत् 1587 के आषाढ़ शुक्ल द्वितीया (तदुपरांत तृतीया) को बल्लभाचार्य ने भगवान की नित्य लीला में प्रवेश किया । इस तिरोधान को संप्रदाय में 'आसुर-व्यामोह-लीला' कहते हैं ।<sup>21</sup>

आचार्य बल्लभ के तिरोधान के पश्चात् कृष्णादास अधिकारी ने श्रीनाथ जी के मंदिर की नई व्यवस्था करनी चाही । कृष्णादास की वार्ता में लिखा है कि मंदिर का वैभव बढ़ाने में बंगाली वैष्णव बाधक थे । बंगाली ब्राह्मणों की शिकायत कृष्णादास ने गुसाईं विठ्ठलनाथ से की । विठ्ठलनाथ पहले तैयार नहीं हुए । जब कृष्णादास ने यह कहा कि बंगालियों से सेवा का अधिकार लिए बिना श्री नाथ जी के मंदिर की सुव्यवस्था और उनके वैभव का विस्तार होना संभव नहीं है, तो उन्होंने उनको हटाने की

स्वीकृति दे दी ।<sup>22</sup> कृष्णादास ने इस निमित्त विठ्ठलनाथ से दो पत्र लिखवाये। आगरा पहुंच कर उन्होंने एक पत्र राजा टोडरमल को दिया, दूसरा राजा बीरबल को । पत्र पढ़कर उन्होंने कृष्णादास अधिकारी को इच्छानुसार कार्य-संपादन की अनुमति दे दी । कृष्णादास ने गोवर्धन पहुंच कर बंगाली ब्राह्मणों की झोंपड़ी जला दी । विरोध करने पर उनकी लाठियों से पिटाई भी की । बंगाली भाग कर रूप सनातन के पास पहुंचे । उनका पीछा करते हुए कृष्णादास भी वहां आ गए । तब रूप सनातन ने कृष्णादास के ऊपर खीज कें कह्यो जो क्यों रे शूद्र तू कोन जो इन ब्राह्मण को मारे तब कृष्णादास ने कही जो हूं शूद्र हों परि तुमहू तो अग्निहोत्री नाहीं तुमहू तो कायस्थ हां तब सनातन ने कह्यो जो यह बात पात्साह सुनेगो तां तू कहा जबाब देयंगो तब कृष्णादास ने कह्यो जो हों तो नीके जबाब देउंगो परि तुमको जुबाब देत में दुःख होयगो और तुमको जबाब आवैगो जो तुम कायस्थ होयके इन ब्राह्मण सों दंडांत करवाक्त हो तब रूप सनातन तो चुप ह्वे रहें और बंगालीन सों कह्यो जो तुम जानो ये जाने तब बंगाली मथुरा के हाकिम के पास गये तब कृष्णादास जाय ठाढे भये तब हाकिम ने कह्यो जो भयो सो तो भयो परि अब इनको राखी तब कृष्णादास ने कह्यो जो अब तो इनको न रखेगे ।<sup>23</sup> थकहार कर बंगाली ब्राह्मण गुसाईं जी की शरण में आए । गुसाईं जी ने कृपा करके उन्हें मदनमोहन की सेवा सौंपी । बंगालियों को गोवर्धन छोड़ना पड़ा । श्रीनाथ जी की सेवा में गुजराती ब्राह्मण रहे गए । ध्यान रहे कि कृष्णादास भी गुजराती ही थे ।

बंगाली ब्राह्मणों को निकालने के बाद मंदिर की नई व्यवस्था में भीतरिया ब्राह्मणों और मंदिर के सेवकों को नियमित समय पर नेग दिया जाने लगा । तब ते श्रीनाथ जी की सेवा प्रमालिका ते होन लागी और कृष्णादास अधिकार करन लागे ।<sup>24</sup>

### उत्तराधिकार का भगड़ा

बल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी गंभीर प्रकृति के व्यक्ति कहे गए हैं।<sup>25</sup> उन्हें एकांतवास और श्रीमद् भागवत आदि ग्रन्थों का अनुशीलन विशेष प्रिय था।<sup>6</sup> वे सांप्रदायिक एवं गृहस्थ के कार्यों की देखभाल अपने छोटे भाई विट्ठलनाथ जी को सौंप कर जगन्नाथपुरी एवं द्वारिका जैसे सुदूर स्थानों की यात्रा करने चले जाते थे।<sup>26</sup> गोपीनाथ जी का विवाह पायम्मा नामक सजातीय कन्या से बल्लभाचार्य की विधमानता में हुआ था। गोपीनाथ जी की तीन संतानें थीं - पुरुषोत्तम नामक पुत्र और सत्यभामा एवं लक्ष्मी दो पुत्रियाँ। बल्लभाचार्य जी के तिरौधान के बाद गोपीनाथ जी पुष्टि मार्ग के आचार्य हुए। उन्होंने गुजरात, काठियावाड़ और पूर्व की यात्राएं कर संप्रदाय का प्रचार किया और वहाँ के अनेक व्यक्तियों को पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया। इन यात्राओं में उनके शिष्यों द्वारा जो द्रव्य प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने श्रीनाथ जी को अर्पित कर दिया।<sup>27</sup> गोपीनाथ जी का असामयिक देहावसान हुआ था। प्रभुदयाल मीतल ने विभिन्न स्रोतों से हानबीन करके उनके देहावसान का समय संवत् 1599 (सन् 1542 ई०) निश्चित किया है।<sup>28</sup> जिन दिनों गोपीनाथ जी जगन्नाथ जी के दर्शनकरने जगदीशपुरी गए हुए थे, उसी दौरान वहीं पर उनका देहावसान हुआ। गुसाईं विट्ठलनाथ की रुचि शुरू में खेलकूद में अधिक थी। बाद में, पुष्टि मार्गीय सेवा-प्रकारों की जानकारी उन्होंने महाप्रभु के अंतरंग सेवक दामोदरदास हरसानी से ली थी। सांप्रदायिक ग्रंथों में कहा गया है कि विट्ठलनाथ अपने अग्रज की अपेक्षा पुष्टिमार्ग के अधिक अनुकूल थे। प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है, "वार्ता" से ज्ञात होता है कि बल्लभाचार्य की विधमानता में भी गोपीनाथ जी के साम्प्रदायिक विचार उनके सिद्धांतों के पूर्णतया अनुकूल नहीं थे। बल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग का प्रचार किया था, किंतु गोपीनाथ जी "मयादा मार्गीय" कहलाते थे। संप्रदाय में यह भी मान्यता चल पड़ी थी कि विट्ठलनाथ जी कृष्ण के और गोपीनाथ जी बलदेव के अवतार हैं। अतः सांप्रदायिक व्यक्तियों का आकर्षण गोपीनाथ

जी की अपेक्षा विट्ठलनाथ जी की ओर विशेष रहता था । वार्ता में ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं, जबकि शिष्यों ने गोपीनाथ जी का चरणोदक न लेकर विट्ठलनाथ जी का लिया था । उस समय पुष्टिमार्ग के जो शिष्य बनते थे, वे भी अपनी प्रायः विट्ठलनाथ जी से लेते थे, गोपीनाथ जी से नहीं । यही कारण है कि अष्टहाप के तीन व्यक्ति गोविंद स्वामी, ह्रीतस्वामी और चतुर्भुजदास गोपीनाथ जी के आचार्य गद्दी पर रहते हुए भी विट्ठलनाथ जी से ही दीक्षित हुए थे । इन सब बातों से सिद्ध है कि विट्ठलनाथ जी अत्यंत लोकप्रिय और पुष्टि संप्रदाय के सेवकों में अत्यंत आदरणीय थे ।<sup>29</sup> स्पष्ट है कि सांप्रदायिक ग्रंथ यह बताना चाहते हैं कि गोपीनाथ जी का अप्रत्याशित देहावसान संप्रदाय के लिए अगर अच्छा नहीं तो बहुत क्षातिकारक भी नहीं रहा ।

गोपीनाथ जी के लीला-गमन के समय उनके पुत्र पुरुषोत्तम की आयु 12 वर्ष की थी । नियमानुसार उन्हें ही संप्रदाय का आचार्य बनना था किन्तु उनके अवयस्क होने का तर्क देकर संप्रदाय के प्रमुख लोगों ने विट्ठलनाथ जी को आचार्य की गद्दी सौंपी । गोपीनाथ जी की विधवा पत्नी इससे रुष्ट थीं । लेकिन, विट्ठलनाथ की प्रसिद्धि और संप्रदाय पर उनकी पकड़ के कारण चुप रहीं । सन् 1548 ई० में जब पुरुषोत्तम जी 18 वर्ष के हुए तो उनकी मां ने उन्हें पुष्टिमार्ग का आचार्य बनाना चाहा । इससे पारिवारिक कलह बढ़ गई । अधिकारी कृष्णादास भी चाहते थे कि संप्रदाय के आचार्य पद पर पुरुषोत्तम जी ही आरूढ़ हों । कृष्णादास की स्थिति संप्रदाय के भीतर मजबूत थी । बंगालियों को श्रीनाथ जी की सेवा से बाहर निकाल कर उन्होंने अपनी धाक जमा ली थी । अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए कृष्णादास ने विट्ठलनाथ का श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रवेश पर रोक लगा दी । द्वारिकादास पारिख का अनुमान है कि यह पारिवारिक कलह सं० 1602 में आरंभ हुई, सं० 1605 (सन् 1548 ई०) में इसने उग्र रूप धारण किया और सं० 1606 (सन् 1549 ई०) के लगभग गुसाईं विट्ठलनाथ जी की ड्यौढी बंद की गई ।<sup>30</sup> विट्ठलनाथ जी की ड्यौढी बंद होने का कारण कृष्णादास अधिकारी की वार्ता में इस तरह आया है, "कृष्णादास

को गंगाबाई सों बहुत स्नेह हुतो सो श्रीगुसांई जी को न सुहावतो सो एक दिन श्रीगुसांई जी श्रीनाथ जी को भोग समर्पित हुते सो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टी परी ताते श्रीनाथ जी आरोगे नाहीं परि भोग तो समर्प्यो ता पाहे समय भयो तब भोग सरायो तब आरती करि अनो सरि करिकें श्री गुसांई जी आप नीचे पधारे तब सेवक आदि भीतरिया सब ने प्रसादलीयो तब श्री गुसांई जी आप तो भोजन करिक पोढे तब श्रीनाथ जी ने भीतरिया को लात मारिके जगायो और वासूं कहे जो हुं तो भूखो हूं तब वा भीतरिया ने कह्यो जो महाराज श्री गुसांई जी ने भोग समर्प्यो है और तुम भूखे क्यों रहै तब श्रीनाथ जी ने कही जो राजभोग में तो गंगाबाई की दृष्टी परी हुती ताते राजभोग आरोग्यो नाहीं तब वह भीतरिया उठि के श्री गुसांई जी के पास आयो आहके श्री गुसांई जी के चरण दाबै तब श्रीगुसांई जी चौंकि उठे तब देखें तो श्रीनाथ जी को भीतरिया है तब वा भीतरिया सों पूछो जो यहां इतनी देर कहां आयो हो तब वा भीतरिया ने कह्यो जो महाराज आज श्रीनाथ जी भूखे हैं मोको लात मारिके जगायो ... तब गुसांई जी सुनत ही तत्काल स्नान करिके पर्वत ऊपर पधारे सो वह भीतरिया हू स्नान करिके श्री गुसांई जी के साथ ही आयो तब श्री गुसांई जी ने वा भीतरिया सों कही जो भात और बढी करो जो तत्काल सिद्ध होय आवै तब भात और बढी करी... तब श्रीनाथ जी को भोग समर्प्यो ... पाहें सब सेवकन को वह बढी भात को महाप्रसाद रंचक रंचक बाटि दीनों ता पाहे श्री गुसांई जी आपहू आरोगे सो वह बढी भात को प्रसाद अति अद्भुत भयो अति अलौकिक स्वाद भयो सो श्री गुसांई जी आप सरायो तब कृष्णादास ठाढे हुते तब कृष्णादास ने कही जो महाराज आपही करनहारे आप ही आरोगनहारे तो क्यों न उत्तम होय तब श्री गुसांई जी ने हंस के कही जो यह तुम्हारे ही कीये भोगत हैं ।।

अब जो यह बात श्री गुसांई जी ने कही जो यह तुम्हारे ही कीये फल भोगत हैं सो यह बात सुनके कृष्णादास ने श्रीगुसांई जी सों बिगाड़ी

तब श्री गुसाईं जी सों कृष्णादास ने कही जो तुम पर्वत ऊपर मति चढौ  
 तब श्री गुसाईं जी आप तौ तहां ते फिरे सौ पारसौली में आय रहै... 31  
 प्रभुदयाल मीतल कृष्णादास और गंगाबाई के बीच 'अनुचित संबंध' की बात  
 नहीं मानते । उनके अनुसार 'गंगाबाई श्रीनाथ जी की सेविका और वल्लभा-  
 चार्य जी की शिष्या थी । वह एक धनाढ्य महिला थी और उसके द्रव्य  
 का कोई उत्तराधिकारी भी नहीं था । उन दिनों श्रीनाथ जी की परि-  
 वर्तित सेवा प्रणाली के कारण कृष्णादास को मंदिर के व्यय के लिए द्रव्य  
 की अधिक आवश्यकता रहती थी, अतः उन्होंने गंगाबाई से घनिष्ठता बढ़ा  
 कर उसके द्रव्य को श्रीनाथ जी के उपयोग में लेना आरंभ कर दिया । गंगा  
 बाई कृष्णादास की यहां तक कृपापात्र हुई कि श्रीनाथ जी के भोग के समय  
 में भी उसे वहां से हटाने का किसी को साहस नहीं होता था । श्रीनाथ  
 जी के भोग के समय उसका वहां पर रहना पुष्टि संप्रदाय की सेवा के विरुद्ध  
 था, इसलिए विट्ठलनाथ जी इससे असंतुष्ट थे... अतः उन्होंने कृष्णादास  
 से इस विषय में कुछ पूछताछ किये बिना ही गंगाबाई का श्रीनाथ जी के  
 मंदिर में आना-जाना बंद करवा दिया । 32 उधर कृष्णादास का प्रभाव  
 बढ़ा हुआ था । वे मंदिर की व्यवस्था में किसी अन्य का हस्तक्षेप बर्दाश्त  
 नहीं करते थे । कृष्णादास यह भी मानते थे कि संप्रदाय की गद्दी के  
 वास्तविक अधिकारी गुण विट्ठलनाथ नहीं, पुरुषोत्तम जी हैं । इन  
 सब कारणों से उन्होंने विट्ठलनाथ जी की गंगाबाई सम्बन्धी आशा की  
 ही अवहेलना नहीं की, बल्कि स्वयं उनको ही श्रीनाथ जी के मंदिर में जाने  
 से रुकवा दिया । 33

विट्ठलनाथ जी को पूरे छः महीने तक मंदिर में आने की अनुमति  
 नहीं मिली । इसके बाद गुसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी राजा बीरबल  
 से मिले और सारा वृत्तांत कहा । बीरबल के निर्देश पर मथुरा के हाकिम  
 ने पांच सौ सिपाहियों को भेज कर कृष्णादास अधिकारी को कैद कर लिया ।  
 गिरिधर जी ने यह समाचार गुसाईं विट्ठलनाथ को दिया । गुसाईं जी को

कृष्णादास अधिकारी पर दया आ गई । उन्होंने राजा बीरबल से कहलवा कर कृष्णादास को मुक्त करा दिया । कृष्णादास गुसाईं जी की इस उदारता के कायल हो गए । गुसाईं जी ने उन्हें फिर से मंदिर का अधिकारी बना दिया । प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं, 'संवत् 1606 (सन् 1549 ई०) के आषाढ कृष्ण पक्ष में दैव योग से पुरुषोत्तम जी का असामयिक निधन हो गया । जिस पारिवारिक कलह के कारण पूर्वोक्त अप्रिय घटना हुई थी, पुरुषोत्तम जी के निधन से वह स्वतः शांत हो गई । पुरुषोत्तम जी के निधन दिवस से तेरह दिन पश्चात् सं० 1606 को आषाढ शुक्ल पंचमी को विठ्ठलनाथ जी ने पुनः श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रवेश किया ।'<sup>34</sup> यह भी दैवयोग ही कहा जाएगा कि पुत्र पुरुषोत्तम की मृत्यु के साथ ही गोपीनाथ जी की दोनों पुत्रियां भी विधवा हो गई । इस तरह अग्रेज का सम्पूर्ण वंश ही नष्ट हो गया । सभी फफटों की समाप्ति के बाद संवत् 1607 (सन् 1550 ई०) में गुसाईं विठ्ठलनाथ जी ने विधिवत 'आचार्य' पद ग्रहण किया ।<sup>35</sup> गोपीनाथ जी की पत्नी हताश होकर अपने पितृ-प्रदेश चली गई । कहा जाता है कि वे अपने साथ श्री गोपीनाथ जी एवं श्री आचार्य जी महाप्रभु के अनेक ग्रंथों की मूल प्रतियां भी लेती गई । इस क्रम में गोपीनाथ जी के लिखे हुए ग्रंथ नष्ट हो गए । विठ्ठलनाथ जी ने आचार्य जी के सेवकों सासकर आगरा के कन्हैया शाल से कई ग्रंथों की प्रतिलिपि प्राप्त करके उन्हें सुरक्षित रखा ।<sup>36</sup>

### संप्रदाय का प्रचार

पुष्टिमार्ग का सर्वाधिक विस्तार गुसाईं विठ्ठलनाथ के समय में हुआ । पारिवारिक विवाद से मुक्ति के बाद गुसाईं जी ने अपना सर्वाधिक ध्यान अनुयायियों की संख्या बढ़ाने पर दिया । इसके लिए उन्होंने दूर-दूर की यात्राएं कीं, राजसत्ता से संपर्क बनाया, मुसीबत के



वक्त अपने सेवकों की सहायता की और संप्रदाय के विरोधियों को परास्त किया । 'कांकरोली का इतिहास' में कंठमणि शास्त्री ने लिखा है, 'श्री विट्ठलनाथ जी ने अनेक बार भारत भ्रमण किया जिसमें वह गुजरात में विशेष पधारे । गुजरात-यात्रा सर्वप्रथम संवत् 1600 में और दूसरी बार संवत् 1613 में अहेल से प्रारंभ हुई । सं० 1619 में तीसरी बार गढ़ा से तथा चौथीबार संवत् 1623 में मथुरा से गुजरात होकर दक्षिण-यात्रार्थ पधारे । यहां से मथुरा आकर उन्होंने उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा की । पांचवीं बार संवत् 1631 में और छठी बार संवत् 1638 में वह गोकुल से गुजरमच गये ।'<sup>37</sup> इस तरह उन्होंने 40 वर्ष तक घूम-घूम कर पुष्टिमार्ग का प्रचार किया । जिस तरह महाप्रभु की 84 बैठकें हैं, उसी तरह गुसाईं विट्ठलनाथ की 28 बैठकें प्रसिद्ध हैं, जिनमें 16 ब्रज में तथा 12 देश के अन्य स्थानों में स्थित हैं । जिन स्थानों पर ये बैठकें बनी हुई हैं, वहां गोस्वामी जी ने समय-समय पर श्रीमद्भागवत तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या की थी ।<sup>38</sup>

विट्ठलनाथ जी को सेवकों की संख्या बढ़ाने की चिंता हमेशा लगी रहती थी । उनकी प्रतिज्ञा थी कि वे एक दिन में कम से कम दो लोगों को सेवक बनाएंगे । उनके बनाए हुए सेवकों में से दो सौ बावन सेवकों को चुनकर वार्ता ग्रंथ तैयार किया गया है । 'दो सौ बावन वैष्णवान की वार्ता' में लिखा है कि जिस दिन गुसाईं जी को दो सेवक नाम सुनाने को नहीं मिलते थे, उस दिन वे भोजन नहीं करते थे - एक समय गुसाईं जी गुजरात पधारे होते तब मही नदी पूर आई होती उहां गुसाईं जी के डेरा भये, जंगल हतो उहां सामग्री भई तब भोजन को समय भयो तब श्री गुसाईं जी भोजन न करें तब चाचा हरिवंश जी ने वीनती करी जो भोजन क्यों नहीं करें तब श्री गुसाईं जी ने आज्ञा करी आज कोई जीव शरण नहीं आयो है कमती सो कमती दो जीव नित्य शरण आये चहीये हमकुं श्री ठाकुर जी की आज्ञा है याते भोजन नहीं करेंगे तब चाचा जी जायके एक वृद्धा पे सुं कबूतर कबूतरी की जोड़ा लायो तब श्री गुसाईं जी ने कृपा करके बिनकुं नाम सुनायो तब वे उहां बैठ रहे और श्री गुसाईं जी

ने भोजन किये और विनकुं जूठन धरी विन कबूतर कबूतरी को ज्ञान भयो ।<sup>39</sup>

इसी तरह एक बार श्री गुसाईं जी अपने प्रवार अभियान पर निकले हुए थे । बद्रीकाश्रम के पास एक निर्जन स्थल पर उन्हें रुकना पड़ा । उसदिन भी कोई सेवक नाम लेने नहीं आया । गुसाईं जी को भूखे न रहना पड़े इसलिए चाचा हरिवंश ने यही उपाय दुहराया, 'एक दिन गुसाईं जी बद्रीकाश्रम पधारे हते उहां निर्जन बन हतो और मानसरोवर हतो और हंस बहुत हते वाईं दिन कोई जीव शरण न आयो हतो यातें श्री गुसाईं जी ने भोजन न किये तब चाचा हरिवंश जी पांच दस हंस पकड़ लाये और श्री गुसाईं जी ने विनकुं नाम सुनाये और छोड़ दिये ।'<sup>40</sup> सेवकों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने और शरण में आए सेवकों को विचलित होने से बचाने के लिए बल्लभ संप्रदाय को कुछ 'व्यावहारिक उपाय' भी अपनाने पड़े । इसमें से एक यह था कि जो पुष्टि मार्ग का खण्डन करे, उसे उचित दण्ड दिया जाए - 'सो (एक ब्राह्मण) श्रीनंद गाम में रहे तो हतो सो वह खण्डन ब्राह्मण शास्त्र पढ़्यो हतो सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सब को खण्डन करतो ऐंसी वाको नेम हतो याही ते सब लोगन ने वाको नाम खंडन पाड्यो हतो सो एक दिन श्रीमहाप्रभु जी के सेवक वैष्णवन की मंडली में आयो सो खंडन करन लग्यो वैष्णवन ने कही जो तेरे शास्त्रार्थ करनो होवें तो पंडित के पास जा हमारी मंडली में तेरे आयवे को काम नाहीं इहां खंडन मंडन नहीं है भगवद् वार्ता को काम है भगवद् यज्ञ सुननो होवें अथवा गावनो होवें तो इहां आवो तोहुं वाने मानी नहीं नित्य आय के खंडन करे ऐसे वाकी प्रकृति हती फेर एक दिन वैष्णवन को चित्त बहुत उदास भयो जब वो खंडन ब्राह्मण घर में सूतो तब चार जने वाकुं मुग्दर लैके मारन लगे जब वाने कही तुम मोकुं क्यों मारो हो जब चार जनेन ने कही तुम भगवद् धर्म खंडन करो हो और भगवद धर्म सर्वोपरि है सर्व धर्मन ते श्रेष्ठ है... ऐसे धर्मन कुं खंडन करे हैं, जासुं तोकुं मार देवे हैं ये सुनके खंडन ब्राह्मण विन चार जनेन केपावन पड्यो और दूसरे दिन भावन्मंडली में आयके वैष्णवन के पावन पड्यो ।'<sup>41</sup> संप्रदाय-रक्षा के लिए ऐसे उपायों

का सहारा तो लिया ही जाता था, लोक-ग्राह्यता बढ़ाने के लिए इस से उल्टे साधन भी अपनाए जाते थे । गौड देश के नारायणादास बादशाह के दीवान थे । एक बार सत्यभामा जी (गुसाईं जी की भतीजी) जगन्नाथ जी के दर्शन करके लौट रही थीं । नारायणादास का आग्रह देखकर उनके घर रुक गईं । नारायणादास के घर के पास ही जेलखाना था । कर न दे सकने वाले उस जेलखाने में भरे हुए थे । उनकी गुहार सुनकर सत्यभामा जी ने दीवान नारायणादास से कह कर बादशाह से उन लोगों को कारागार से मुक्त करवाया ।<sup>42</sup>

एक कायस्थ पिता-पुत्र गुसाईं जी के सेवक थे । उन्होंने सरकार से एक परगना इजारे पर लिया था । उसमें उन्हें बीस हजार का घाटा हुआ । रुपया न दे सकने के कारण बादशाह ने उन्हें बंदी बना लिया । यह सूचना विठ्ठलनाथ जी को मिली । उन्होंने चाचा हरिवंश को पत्र देकर बीरबल के पास भेजा । चाचा हरिवंश ने बीरबल से कहा, 'जो श्री गुसाईं जी बीस हजार रुपया के जामिन पढ़ेंगे (जमानतदार होंगे) इन बाप बेटान कुं कुडाय देवों तब बीरबल ने कहि में गुसाईं जी को दास हूं मेरे पास द्रव्य है सो श्री गुसाईं जी को है में जामिन पढ़ंगो तब बीरबल ने पातशाह को कह के कुडाय दीये और परगनो में पठाये फेर बाप बेटा ने कमायके द्रव्य भर दीयो ।'<sup>43</sup>

गोपालदास नामक एक वैष्णव ने अपना सर्वस्व श्री गुसाईं जी को अर्पित कर दिया । फेर एक म्लेच्छ की चाकरी करवे लो और वा म्लेच्छ को द्रव्य गोपालदास वैष्णवन मे खरच करते रहते ।<sup>44</sup> लोगों ने म्लेच्छ से इस बाबत शिकायत की । वार्ता में लिखा है कि म्लेच्छ की बुद्धि निर्मल थी उसने श्री नंदग्रामवासी गोपालदास को नौकरी से नहीं निकाला ।

प्रेमनिधि मिश्र आगरा में रहते थे । गुसाईं जी के अनन्य सेवकों में थे । बहुत लोकप्रिय कथावाचक थे। उनके घर पर भक्तों की भीड़ लगी रहती । पड़ोसियों से यह न देखा गया । उन्होंने पृथ्वीपति से शिकायत

कर दी । पृथ्वीपति ने चोबदार भेजकर प्रेमनिधि मिश्र को बंदी बना लिया । वाताकार का कहना है कि प्रेमनिधि मिश्र को बंदी खाने से छुड़ाने के लिए श्री ठाकुर जी को स्वयं कष्ट करना पड़ा ।<sup>45</sup>

पुष्टिमार्गीयों को कोई कष्ट न हो, इसका बहुत ध्यान रखा जाता था । गुसाईं जी ने एक बार ऐसा उद्यम किया कि उनकी धाक 'हिंदू जनता' के बीच जम गई । उन्होंने एक साहुकार की बहू को म्लेच्छ के हाथ में पड़ने से बचा लिया था । साहुकार सूरत का रहने वाला था । उसके बेटे की बहू बहुत सुन्दर थी । सो एक म्लेच्छ पादशाह को नौकर घोड़ा पर बैठके जातो हतो सो वाकी नजर वा स्त्री के ऊपर गई और देखके कामातुर भयो तब घोड़ा कुदाय के वाके घर के भीतर जाय पर्यो ।<sup>46</sup> बहू ने न केवल म्लेच्छ का आग्रह टुकराया वरन् उसे एक तमाचा मारकर विदा किया । म्लेच्छ ने तय किया कि वह इस स्त्री से विवाह करके रहेगा । उसने योजना तैयार की । पड़ोस की एक स्त्री से साहुकार के घर के बारे में सारी जानकारी इकट्ठी की । फिर, एक वेश्या की बेटि को पंसा देकर उसे साहुकार की बहू की भूमिका में उतार दिया । योजना के मुताबिक वेश्या की बेटि सूबेदार के यहां गई और उसने अपने को साहुकार की बहू बताकर म्लेच्छ के साथ शादी की रजामंदी दे दी । म्लेच्छ ने हाकिम से कहा कि हो सकता है यह स्त्री कल बदल जाए और मेरे साथ रहने से मना कर दे 'जासुं सरकार पक्का कर लेवें जब वा हाकेम ने वासुं पक्की लिखत कर लीनी ।'<sup>47</sup> म्लेच्छ ने वेश्या की बेटि को तो घर भेज दिया और खुद पन्द्रह दिन बाद 'वा सूबा के आगे पुकार करी जो वा साहुकार के बेटा की बहू ने मेरे संग खान-पान करके फेर वाके घर गई तब सूबा ने हुकुम करके वा बहू कुं पकड़वाई, फेर वाकी सुसरा वाकी बाप और सब गाम के पंच इकट्ठे होयके वा सूबा के पास गये परंतु सूबा ने मानी नहीं कह्यो ये बाई मेरे पास आयके लिखाय गई है ।'<sup>48</sup> फिर साहुकार ने तय किया कि न्याय के लिए अकबर बादशाह के पास दिल्ली चलेगी । साहुकार ने सूबा के हाकिम से यह आश्वासन लिया कि जहां सूधी हमारी दिल्ली में न्याय न होवै तहां सूधी वा बहू को धर्मभ्रष्ट न होवै और म्लेच्छ

या बहु कुं स्पर्श न करें ऐसे सूबा सों नक्की कर लियो ।<sup>१</sup> दिल्ली पहुँच कर उन्होंने बादशाह सलामत से न्याय की गुहार की , तब अकबर पादशाह ने न्याय कर्यो वा म्लेच्छ के लाभ में हुकुम कर्यो ।<sup>२</sup> अकबर के न्याय से निराश स्त्री जोर-जोर से विलाप करने लगी । अकबर को कुछ शंका हुई - कि अगर स्त्री म्लेच्छ पर मोहित होती तो ऐसे रुदन न करती । लेकिन न्याय तो एक बार हो चुका था । सो म्लेच्छ क्वेरी सुं ले चली और वे बहू ऊँचे स्वर सुं रुदन करे और छाती कूटे ह्वारन लोग तमाशा देखवे कुं एकट्ठे भये ।<sup>३</sup> संयोग से उसी वक्त अकबर से मिलने गुसाईं विट्ठल नाथ दिल्ली पधारे हुए थे । गुसाईं जी के डेरे से होकर वह म्लेच्छ गुजरा । मनुष्यों की भीड़ और स्त्री को रुदन करते हुए जब गुसाईं जी ने देखा तो उन्होंने प्रस्ताव की । सारा वृत्तान्त जानकर गुसाईं जी ने पृथ्वीपति को खबर भेजी 'जो हम याको न्याय पंदरे दिन में कर देवेंगे ।' पृथ्वीपति ने गुसाईं जी को न्याय करने के लिए एक महीने का समय दिया । गुसाईं जी ने दीवान बीरबल को बुलवाकर म्लेच्छ को अलग रखवाया और स्त्री को उसके सास ससुर के साथ कर दिया ।<sup>४</sup> फेर एक दिन श्री गुसाईं जी ने दो पींजरा मंगाये एक पींजरा में वा तुरक कुं बैठायो और एक पींजरा में वा बहू कुं बैठाई और दोनु पींजरा मैदान में धराय दिये और आखी रात वे पींजरा के पास कोई मनुष्य जाय नहीं ऐसी बंदोबस्ती कर दीनी और एक मनुष्य दिल्ली पती को खातरी को खानो खानो रात कुं वा पींजरे के पास बैठायो जैसे दोऊन कुं खबर न पहे ... मध्य रात पींके वह बहू म्लेच्छ सुं बोली जो अब में तेरी भई हुं और तेरे संग जन्म काढूंगी जासुं कहु तुमारो पराक्रम जाणुं तो मेरो चित्त प्रसन्न होवै... वो म्लेच्छ सुनके बहोत प्रसन्न भयो और बोली जो तुम मेरे पराक्रम अब सूधी जानें नहीं है जो तोकुं कहु खबर है नहीं तोहुं इतनो कर दिखायो है फेर वा म्लेच्छ ने सब वृत्तान्त कह्यो वा डोकरी की और वा वेश्या की खौरी की सब रीती ऐसी बनी हती सब कही ।<sup>५</sup> पास में कुपकर बैठे हुए सरकारी आदमी ने दोनों

की सारी बातचीत लिख ली । सुबह गुसाईं जी ने दोनों पिंजरे मंगवाये और बातचीत का ब्याँरा पढ़ा । फिर, उसे बादशाह के पास भेज दिया । 'सौ अकबर' बादशाह ये लिखत बाँच के वा तुरक कुं जन्म कैद दीनी और वा सूबा कुं दूर कियो... और वा वेश्या को और डोकरी को घर लूट लियो और वा बहू कुं लौड दीनी ।' गुसाईं जी के इस कार्य की प्रशंसा होने लगी । 'वा बहू ने अपने सगान सों कही जो मोकुं श्रीगुसाईं जी ने जीवती राखी है जासु में इनकी सेवक होउंगी फेर वह बहू श्री गुसाईं जी की सेवक भई और वाके सासु सुसरा और मां बाप वाको धणी और जितने वाके संग भये हते सब श्री गुसाईं जी के सेवक भये ।'<sup>48</sup> जैसा कि पहले अध्याय में चर्चा की गई है कि गुसाईं विठ्ठलनाथ को बादशाह अकबर ने 'मानद-न्यायाधीश' की पदवी दी हुई थी । अपने इस अधिकार के कारण ही वे बादशाह के न्याय में हस्तक्षेप कर सके थे । गुसाईं जी के इस हस्तक्षेप के दूरगामी असर समझे जा सकते हैं । उन्होंने एक असाहाय को न्याय ही नहीं दिलवाया वरन एक हिंदू स्त्री को प्लेच्छ से मुक्त भी करवाया । कहा जा सकता है कि इस घटना की खबर जन-सामान्य के बीच फैली (और फैलायी गई) होगी । और, इससे संप्रदाय-विस्तार में गुसाईं विठ्ठलनाथ को निश्चित ही मदद मिली होगी ।

गुसाईं जी ने तरह-तरह के लोगों को अपना सेवक बनाया था । गुजरात-यात्रा के समय लुटेरों का सरदार कटहरिया उनकी शरण में आया था ।<sup>49</sup> इसी तरह दो ठगों को उन्होंने अपना कृपापात्र बनाया था ।<sup>50</sup> गुजरात से ब्रज आते हुए गुसाईं जी रास्ता भूल गए । उन्हें एक बलाई मिला । बलाई ने सुरक्षित रास्ते से वैष्णव मंडली को मुकाम तक पहुँचाया । बलाई अकूत माने जाते हैं । गुसाईं जी ने इसपर भी कृपा की, 'श्री गुसाईं जी ने भोजन किये पाहें सब वैष्णव ने प्रसाद लिये और सब वैष्णवन ने वा बलाई कुं जूठन दीनी सों जूठन लेत मात्र ही वा बलाई को अंतःकरण निर्मल भयो और श्री गुसाईं जी के दर्शन साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के भये और श्री गुसाईं जी कुं विनती करी जो मोकुं आप शरण ल्यो

तब श्री गुसाईं जी ने कृपा करके नाम सुनायो ... तब श्री गुसाईं जी ने पादुका जी की सेवा विनके माथे पधराय दीनी तब आज्ञा करी तुम इनकी सेवा करौ ।<sup>51</sup>

### धन की व्यवस्था

संप्रदाय में सेवा का जो स्वरूप गुसाईं विट्ठलनाथ ने निश्चित किया, उसके लिए प्रचुर धन की आवश्यकता थी । बल्लभाचार्य के समय में जो सेवा-विधि अपनाई गई थी वह साधारण थी । सेवा का बड़ा भारी मंडान गुसाईं जी ने ही बाधा था । श्रीनाथ जी को वैभव बढ़ावनी हे के संकल्प के साथ ही वे आचार्य बने थे । इस संकल्प-पूर्ति में उनके सहयोगी बने अधिकारी कृष्णादास । उन्होंने श्रीनाथ जी के वैभव-विस्तार में आने वाली प्राथमिक दिक्कत (मंदिर के भीतरिया ब्राह्मणों) को बरलकर दूर की । मंदिर के लिए धन की व्यवस्था वस्तुतः संप्रदाय के शिष्य सेवकों से होनी थी । स्पष्ट था कि जितनी बड़ी संख्या में अनुयायी होंगे उतना ही अधिक धन आने की संभावना बनेगी । गुसाईं विट्ठलनाथ ने इसीलिए जोर-शोर से सेवक बनाने का अभियान चलाया था । अनुमान किया जा सकता है कि ऐसे में धनाढ्य सेवकों को खास तरजीह दी जाती रही होगी । गुसाईं जी के शिष्यों में अनेक धनाढ्य सेठ हैं, राजकर्मचारी हैं, छोटे-बड़े राजा हैं, धनी किंतु निःसंतान वैष्णव हैं । गुसाईं जी ने सर्वाधिक यात्राएं गुजरात प्रदेश में की थीं । इसका कारण यह रहा होगा कि यहां अन्य प्रदेशों की अपेक्षा संपन्नता का ग्राफ काफी ऊंचा था इसलिए आसानी से धन-संग्रह हो जाता था । स्वयं महाप्रभु वल्लभ ने ऐसे कई सेवक बनाए थे जो उन्हें समय-समय पर भेंट भेजा करते थे । ऐसे सेवकों में से एक थे त्रिपुरदास कायस्थ - सो त्रिपुरदास एक तुरक की चाकरी करते परगना बहुत कमायो जो कछु वस्तु आवती सो पहिले श्रीनाथ जी को पहुंचावते और सालनसाक पहुंचावते ऐसे सदा सर्वदा

करते एक दिन वा तुरक ने त्रिपुरदास को बंदी खाने में दिये और कह्यो जो तेने मेरी द्रव्य बहुत खायो हे सो जब वा तुरक सोयो तब कोऊ चार जने हाथ में मुगदर लेके आये सो आयके वा तुरक को खाट ते ओंधो पटक बहुत मार्यो ।<sup>52</sup> संभव हे इस कथा का पूर्वार्ध ही सही हो, या हो सकता हे, बल्लभ संप्रदाय के पास वैष्णवों को तंग करने वालों को दण्ड देने के लिए पहलवानों का एक समूह रहा हो । संप्रदाय की समृद्धि देखते हुए यह संभावना प्रबल जान पड़ती हे ।

अंबाला के एक नारायणदास थे । सो वे नारायणदास देशाधिपति के चाकर हुते तिनको राजद्वार को काम बहुत हुतौ ताते श्री आचार्य जी महाप्रभुन के दर्शन को आय सकते नाहीं परि अंतःकरण में श्री आचार्य जी महाप्रभुन के दर्शन की आतुरता बहुत हुती... और नारायणदास श्री आचार्य जी महाप्रभुन को भेंट बहुत पठाक्ते नारायणदास से भगवदीय हे... ।<sup>53</sup>

नारायणदास चौहान ठट्ठे के बादशाह के दीवान थे । किसी अज्ञात वजह से बादशाह ने नारायणदास चौहान को बंदीखाने में डाल दिया और ऊपर से पांच लाख रुपया जुमाना भी कर दिया । आदेशानुसार नारायणदास को पांच हजार रुपया रोज अदा करना पड़ता । जिस दिन किस्त न मिले उस दिन पांच सौ कोड़े मारे जाने का हुकुम था । नारायणदास की पूर्व ख्याति के आधार पर दो ज़रूरतमंद पुष्टिमागीरिय वैष्णव उनसे मिले आए । उन्हें अपनी कन्या का विवाह करना था । नारायणदास ने दंड की परवाह किए बिना उस दिन की किस्त - पांच हजार रुपया उन वैष्णवों को दे दिया । वैष्णव चले गए । इधर नारायणदास को कोड़े लगने थे । बादशाह ने जानना चाहा कि आज की किस्त क्यों नहीं आई । नारायणदास ने सच-सच बता दिया । बादशाह इससे प्रसन्न हुआ और उसने नारायणदास चौहान को फिर से अपना दीवान नियुक्त कर लिया । वाताकिार लिखता हे, तब नारायणदास ने छः हजार मोहर की एक थैली वैष्णवन के हाथ श्री आचार्य जी महाप्रभुन को भेंट पठाई ।<sup>54</sup>



पिछले मन्नों पर हमने देखा कि गंगाबाई सात्राणी का कृष्णदास की प्रेमपात्र होने और श्रीनाथ जी के मंदिर में महत्वपूर्ण बन जाने का कारण उसका धनाढ्य होना था । कृष्णदास इस महिला के धन का उपयोग मंदिर की समृद्धि के लिए कर रहे थे । गुसाई जी ने स्वयं कृष्णदास की मंदिर-व्यवस्था की तारीफ की थी ।<sup>55</sup>

गुसाई जी के सेवक थे नानचंद बनिया । नानचंद राजनगर(गुजरात) के निवासी थे । नानचंद द्रव्य पात्र होते और श्री गुसाई जी कुं पूर्ण पुरुषोत्तम जानते होते इतने में श्री गोकुल नाथ जी (विठ्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र) को विवाह आये तब नानचंद के ऊपर श्री गुसाई जी ने कुंकुम पत्री लिखी जब नानचंद ने सब देश में वैष्णवों को समाचार दिये । सब वैष्णव गुजरात के गोकुलनाथ जी के विवाह ऊपर श्री गोकुल आये सो जितने वैष्णव विवाह पर गये सबन के संग पांच-पांच रूपया भेंट के दिये और हजार रूपया की हुंडी (अला से) भेंट पठाई सो सब लोग कहवे लगे नानचंद लोभी है एक हजार रूपया भेंट पठाई है ये बात कोई ने श्री गुसाई जी के आगे कही तब श्री गुसाई जी ने आज्ञा करी जो नानचंद के अंतःकरण की हम जानत हैं वाको भाव गुप्त है लोगन के देखते हजार रूपया पठाये हैं परंतु दस हजार वैष्णव के संग पांच-पांच रूपया पठाये सो गुप्त रीति सुं पचास हजार पठाये हैं ।<sup>56</sup>

गुसाई जी की शरण में आने वाले दयालदास बनिया स्वभाव से कंजूस थे । उन्होंने गुसाई जी से प्रार्थना की थी, 'महाराज एक प्ला खर्च न होवे और मेरो कल्याण होवे ऐसी रीति सिखाओ ।' गुसाई जी ने उन्हें मानसी सेवा की रीति सिखाई । मानसी सेवा में एक दिन दयालदास ने खीर बनाई । खीर में खांड अधिक पड़ गई । दयालदास उसे निकालने लगे । ठाकुर जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि इसमें तुम्हारा कोई खर्च नहीं लगा है । दयालदास के अंतःकरण में प्रकाश पहुंचा । उनकी जिंदगी भर की कमाई 'लक्ष' रूपया होते सो श्री गुसाई जी कुं पढाय दिये जैसो वाको द्रव्य में चित्त हतो तैसो श्री ठाकुर जी में लग्यो ।<sup>57</sup>

एक चौर ने नवनीत प्रिय जी के मंदिर में चोरी करनी चाही । पर, पकड़ा गया । गुसाईं जी ने उसे क्षमा करके छोड़ दिया । चौर गुसाईं जी का सेवक हो गया । गुसाईं जी ने कहा अब आज से चोरी मत करना । चौर ने जवाब दिया, 'आदत पड़ गई है, छूटेगी नहीं ।' गुसाईं जी ने कहा - तो फिर सदा सत्य भाषण करना । चौर राजा के घर चोरी करने पहुंचा । द्वारपाल ने पूछा यहां क्यों आए ? 'चोरी करने आया हूं' चौर का उत्तर था । लोगों ने समझा यह मसखरी कर रहा है । चौर ने राजा के घर के हीरे जवाहरात बाधे और चला बत्ता । थोड़ी देर में चोरी की बात सात हुई । राजा ने सिपाहियों को दौड़ाया । चौर को पकड़ कर राजा के सामने पेश किया गया । राजा चौर की सत्यवादिता पर बहुत प्रसन्न हुआ । तब राजा ने वा चौर कुं नौकर राख्यो और सब काम सौंप्यो सो वे चौर ने राजा को सब काम माथे उठाय लीयो फेर श्री गुसाईं जी कुं पधराय के बहोत द्रव्य भेंट कर्यो ।<sup>58</sup>

अध्याय तीन में हमने चर्चा की थी कि गुसाईं जी ने राजा बीरबल की वार्षिक वृत्ति छोड़ने वाले हित स्वामी के आजीविका-निर्वाह के लिए गुजरात से प्रतिवर्ष हजार रुपये की व्यवस्था करवाई थी । स्वयं गुसाईं जी के पास सूरत से पांच हजार रुपये की हुंडी आया करती थी - 'एक दिन भंडारी ने वा ब्रजवासी सुं कही जो तुम सूरत गाम में जायके भेंट ले आवो... तब (ब्रजवासी) उहां ते चले फेर सूरत आये उहां गाम बाहेर ढेरा कीये और उहां श्री ठाकुर जी कुं बैठाय के वो ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो गाम में वैष्णव कुं पूंछ के दियो... तब वैष्णवन ने वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन में सब ठिकाने फिर के पांच हजार रूपैया इकट्ठे करके और हुंडी कराय के ब्रजवासी कुं दीनी ।'<sup>59</sup>

जमनादास दक्षिण (भारत) में रहते थे। फूलों के शौकीन थे । फलै वाले आदमी थे । एक बार चैत महीना में माली गुलाब बेचने आया । जमनादास ने पूछा, 'इन फूलों का क्या लोगे ?' माली ने एक रूपया बताया । तभी एक तुर्क आ पहुंचा । उसने अपने सरदार के लिए वही फूल लेने चाहे । वह माली को दो रूपया देने लगा । जमनादास ने पांच

रूपया देकर फूल लेना चाहा । तुर्क दस रूपया पर आ गया । दाम बढ़ता गया । आखिर में जमनादास ने एक लाख रूपया देकर फूल खरीदा और श्रीठाकुर जी को अर्पित किया । श्री गुसाईं जी ने समाचार सुना । वे बड़े प्रसन्न हुए । एक वैष्णव को पत्र देकर भेजा कि तुम्हारा अर्पित किया फूल श्रीनाथ ने भली भांति अंगीकार किया है । जमनादास पत्र बांच कर बहुत प्रसन्न हुए और पांच लाख रूपया को हीरा लेकर श्री गुसाईं जी को फटायो सो वे जमनादास वैष्णव श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते द्रव्य कुं तुच्छ जानते ॥<sup>60</sup>

‘दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता’ में गुसाईं जी के सेवकों में दस राजा हैं ।<sup>61</sup> इन राजाओं के नाम नहीं दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त नाम सहित राजाओं में राजा लाखा<sup>62</sup>, आसकरणा राजा<sup>63</sup>, राजा जोत सिंह जी<sup>64</sup>, भीमसेन राजा<sup>65</sup>, बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह<sup>66</sup>, मधुकर शाह राजा<sup>67</sup>, गुसाईं विट्ठलनाथ के सेवकों में बताए गए हैं । राजधराने से संबद्ध अजबकुंवर बाईं<sup>68</sup>, बीरबल की बेटी<sup>69</sup> और रत्नाक्ती राणी<sup>70</sup> गुसाईं जी की शिष्या हैं । कहने की ज़रूरत नहीं कि राजाओं की इतनी बड़ी संख्या संप्रदाय का वैभव बढ़ाने में सहायक थी । अकबर से गुसाईं जी की निकटता की चर्चा हम कई बार कर चुके हैं । बीरबल की बेटी की वार्ता<sup>71</sup> में गुसाईं जी और अकबर बादशाह का मिलन वर्णित है । एक बार बीरबल से बादशाह ने पूछा - ‘साहेब को मिलने कैसे होवे है’ बीरबल ने जवाब देने के लिए वक्त मांगा । बीरबल की बेटी ने सलाह दी कि गुसाईं जी इस प्रश्न का उत्तर भली भांति दे सकते हैं । तब बीरबल श्री गोकुल आये श्री गुसाईं जी कुं बीनती करी तब गुसाईं जी ने आज्ञा करी जो उत्तर पादशाह कुं एकांत में देउंगे जब बीरबल ने पादशाह सों कही तब पादशाह श्री गोकुल आये बीरबल हुं संग आये जब बीरबल आयके पादशाह के डेरा पर श्री गुसाईं जी कुं पधराय ले गये जब पादशाह ने एकांत में श्री गुसाईं जी सों पूंकी जो साहेब कैसे मिलता है सो उपाय बतावो जब श्री गुसाईं जी सों पूंकी जो साहेब कैसे मिलता है सो उपाय बतावो जब

श्री गुसाई जी ने लौकिक रीति सों उत्तर दियो, जैसे तुम हमकुं मिले ऐसे साहेब मिलते हैं तब पादशाह ने कही याको कारण समझावो, तब श्री गुसाई जी ने कही हम हजारन उपाय करें तो तुमको मिलने कठिन है और तुम विचार्यो तो घड़ी हुं न लगी तुत हमकुं मिल लिये ऐसे जीव हजारन उपाय करे तोहुं साहेब नहीं मिलता है और साहेब विचारे तो भट जीव कुं अपनी कर लेवे है, जीव के हाथ कहु नहीं है साहेब की मर्जी होवे तो क्षण न लो ये सुन के पादशाह बहुत प्रसन्न भये और श्री गुसाई जी कुं दंडवत करी और बीनती करी जो कहु मेरो अंगीकार करो तब श्री गुसाई जी ने कही जो हमकुं गोपालपुर एक घंटा में पहुँच्यो जाय ऐसी अस्वारी होवे तो ठीक जब पादशाह ने ऐसी घोड़ा भेंट कर्यो जो एक घंटा में दस कोस जाय और घोड़ा के खरच में श्रीगोकुल और गोपालपुर ये दो गाम दियो...।<sup>72</sup> 'कांकरोली का इतिहास' में पुष्टिमार्ग के अधिकारी विद्वान पो० कंठमणि शास्त्री ने लिखा है - 'बादशाह ने चाकदार बाग और कुलह नामक अपनी राजकीय पोशाक पहिने की इज्जत गुसाई जी को दी। इसके बाद गुसाई जी ने गोकुल में अपने संप्रदाय के मंदिरों की नींव लाई। संवत् 1634 से गुसाई जी को स्थायी और निर्भय रूप से गोकुल में रहने का आज्ञापत्र मिला, सं० 1638 में बादशाह और उसकी पुत्री हमीदा बानू बेगम की ओर से दो फरमान ब्रजमंडल में गाय चराने, आदि कितने ही करों की माफी का बादशाही हुक्म गुसाई जी को प्राप्त हुआ। ऐसा भी सुनने में आता है कि - बादशाह की और से औरंगजेब न्यायाधीश निर्वाचित होने पर उन्होंने अपने प्रांत में कई वर्ष तक इस पद पर रहकर काम किया। इन सब बातों से विदित होता है कि - गुसाई जी देशकाल और परिस्थिति के अनुसार चलकर अपने धर्म का प्रचार करने वालों में से एक थे। न्यायाधीश की वेशभूषा वाला इनका प्राचीन चित्र भी मिलता है।'<sup>73</sup> अध्याय एक में हमने अकबर और शाहजहाँ के फरमान उद्धृत किए हैं। यहां अकबर की पुत्री हमीदा बानू बेगम और खान बहादुर सिपह सालार खानखानान अकबर शाह के चेला के फरमान के हिंदी अनुवाद क्रमशः दिए जा रहे हैं :

(क) बेगम हमीदा बानू का हुकुम

शानशाह की राजधानी आगरा की सरकार में आये हुए महाक के करोड़ी हुशयार अमलदारों और दूसरों को मालूम हो कि महान और न्यायी शाहनशाह के फरमान के मुताबिक निःशंक भला चाहने वाले, पवित्र जनोई (फ़ाओपवीत, जनेऊ) पहिरने वाले विट्ठलेश राय की गायों को खालसा अथवा जागीर की किसी भी जमीन में जहां होय वहां दुखी नहीं करनी और न चरने से रोकनी । विट्ठलराय इस बाकत निश्चित रहे । सबकी फरज है कि वह इस हुकुम के मुताबिक बर्ताव करे और इसके विरुद्ध न चले । लिखा गया, रमजान उलमुबारक माह की 10 तारीख हि० सन् 989, रविवार ता० 8 अक्टूबर ई० सन् 1581, वि० सं० 1638 ।

(ख) खान बहादुर सिपहसालार का फरमान

औड परगना के कर्मान और भविष्य के अमलदारों को मालूम हो कि सावी वगैरह गामों में गाय और बैलों की चरागाह है, इससे उस पर निगरानी रखने और कर लेने अथवा गायों की गिनती करने के बहाने कोई भी उन्हें अटकावे नहीं, हेरान करे नहीं । कारण यह कि यह गाम समझ-सोचकर वसूली किया गया है । इस बड़ी आज्ञा के मुताबिक सब को बर्तना चाहिए और हर साल नया परवाना नहीं मांगना चाहिए ।

लिखा गया, रोज आजर सन् 33 तारीख 11 मोहर अउलहराम<sup>74</sup> माह हि० सन् 997, ता० 1 दिसंबर ई० सन् 1588, वि० सं० 1645 ।

शाहजहाँ ने एक फरमान जारी करके गुसाईं विट्ठल नाथ के ज्येष्ठ पुत्र गो० गिरिधारीलाल को टिकैत (तिलकायत) की उपाधि प्रदान की थी ।<sup>75</sup> तब से लेकर आज तक बल्लभ संप्रदाय के विभिन्न पीठों के आचार्य अपने नाम के आगे 'तिलकायत' लगाते हैं । आगरा से 'शाहजादा' द्वारा शिकौह ने 14 रबी उल अब्बल सन् 48 में जो फरमान जारी किया, उसमें

भी श्री विट्ठलनाथ जी को अपने मंदिर का शासनाधिकार, पूर्वाधिकार दिया गया है । अन्य कोई इस मामले में हस्तक्षेप न करे, इसके लिए एक व्यक्ति को मुकर्रर करने की आज्ञा भी दी गई है । शाहजहाँ के निर्देश पर जहानाबाद से महाराजा जसवंतसिंह ने चैत्र सुदी 14 शुक्रवार संवत् 1707 को जो फरमान जारी किया उसमें गोस्वामी जी को अपने मंदिर के हक-हुक्क व हुकुम हांसिल का पूर्ण अधिकार दिया गया ।<sup>76</sup>

मेवाड के राजा राजसिंह से लेकर जवानसिंह तक ही नहीं, वरन् अन्य रियासतों के राजा, महाराजाओं और उनके सामंतों तक ने कई गांव, कुएं, खेत और भूमि दान में दी । गोस्वामी इस भूमि अथवा गांवों के एक तरह से शासन संचालन कर्ता भी रहे ।

... परंपरानुसार ये सब गांव माफ़ी के या मंदिर के कहे जाते थे । ऐसे में इस सब गांवों को हांसल, भोग, लागत कलात का जिम्मा मंदिर के पास था और यह सब काम मंदिर के गोस्वामी-तिलकायत स्वयं देखते थे । इन गांवों से पर्याप्त आय होती थी । ... नाथद्वारा में पुष्कल मात्रा में भोग सामग्री का निर्माण तथा उत्सवादि के विराट वैभव के पीछे का यही रहस्य है, जिसे यहां के तिलकायतों ने बखूबी अंजाम दिया ।<sup>77</sup>

इस वैभव का असर गुसाइयों के अपने जीवन पर फ़ना ही था । परंपरा विट्ठलनाथ जी से शुरू हुई । उनका जीवन राजा-महाराजा जैसा हो गया । श्रीनाथ जी के मंदिर से ज्यादा सेवक उनकी तीमारदारी करने लगे । वे धर्म-गुरु से ज्यादा शासक हो गए । जब भी तिलकायतों का उदयपुर आना होता, महाराणा आवानी करते, स्वयं एक चादर पर बैठते और तिलकायत के लिए गाड़ी तकिया लगवाते थे । नाथद्वारा में ऐसे चित्र हैं। जब तिलकायत कोटा जाते तो वहां के महारावल सवारी के हाथी के आगे पैदल चलकर या हौदे की खयासी में बैठकर तिलकायत के लिए चंवर डुलाते थे । जोधपुर ने तो नाथद्वारा में विशेष कोठार की ही व्यवस्था कर वहां तिलकायत व मंदिर की सेवार्थ अपने आदमी

नियुक्त कर रखे थे । जब भी नए तिलकायत की गद्दी नशीनी होती तो जोधपुर राज्य की ओर से टीका की पोशाक में चीरा एक, दुपट्टा एक, कीमत्ताब के थान दो, भेट के रुपये 100, घोड़े के रुपये 100 तथा जुर्म के रुपये 200 प्रेषित किए जाते थे । नाथद्वारा के रिसाला चौक में रहने वाली सैनिकों की टुकड़ी का खर्च जोधपुर राज्य उठाता था ।<sup>78</sup> गुसाईं विठ्ठलनाथ और उनके वंशज ही शाही रंग-ढंग में नहीं पड़े, स्वयं उनके आराध्य श्रीनाथ जी तक इसकी छाया पहुंची । श्रीनाथ जी के शृंगारों में सेहरा का समावेश हुआ । अकबर ने गुसाईं जी को बादशाही पोशाक चाकदार बाग और कुलह पहनने की इजाजत दी थी । श्री नाथजी को भी कुलह धारण कराया जाने लगा ।

श्रीनाथ जी के खेलों में शतरंज कैसे पहुंचा, इसकी बड़ी रोचक कहानी है -- 'भाव सिंधु' में लिखा है कि अकबर के राजमहल में गुसाईं विठ्ठलनाथ जी का चित्र टंगा हुआ था । रोज-रोज चित्र देखकर बादशाह अकबर की एक बेगम ताजबीबी की 'वा' चित्र में स्वल्पासक्ति हवे गई । वह राजा बीरबल की बेटी शोभावती और राय वृंदावनदास की बेटी (दोनों गुसाईं जी की शिष्याएं कही जाती हैं) से सत्संग करने लगी । एक दिन ताजबीबी ने शोभावती से कहा कि मुझे कोई ऐसा यंत्र बनवा दो जिससे अकबर मेरे वश में हो जाएं । शोभावती ने गुसाईं जी को पत्र लिखकर अनुरोध किया । गुसाईं जी ने 'जंत्र' बना कर भिजवा दिया । ताजबीबी ने उसे गले में बांध लिया । 'जंत्र' का प्रभाव ऐसा पड़ा कि अकबर ताज के गुलाम हो गए । दुःखी सांतों ने इस रहस्य का पता लगाया । उन्होंने अकबर को इसकी जानकारी दी, 'जो हजरत साहब हम ऐसा सूने हैं जो ताज ने आपके ऊपर कामन (जादू, टोना) किया है । सो ताज के गरे में है । कबी आपके दील को वह जंत्र नक्लीम करेगा ।' अकबर ताजबीबी के पास पहुंचे । गले का 'जंत्र' देखना चाहा । ताजबीबी ने मना कर दिया । बादशाह हठ करने लगे । आखिरकार 'जंत्र' खोलकर बांचा गया । उसमें लिखा था :

कामन टोमन टोटिका, ए सब हारो धोय ।

पिया कहे सो कीजिए आपही ते वश होय ॥

सो अकबर बाचि के बहुत प्रसन्न भयो, ताज को धन्य-धन्य कहते भयो और कही जो ऐसा जंत्र कहाँ से मंगाया । तब कही जो यह जंत्र श्री दीक्षित जी ने भेजा है । अकबर ने सुन होकर कहा कि तुम मुझसे जो चाहो मांगो । ताजबीबी बोली कि मुझे दीक्षित जी से मंत्र लेने की अनुमति दीजिए । अकबर ने अनुमति दे दी । ताजबीबी ने पत्र देकर गुसाई जी को बुलाया । उसी सत्पात्र देखिके आपने शरण लीनी । और आपने वाको दासीभाव दान क्योँ । फेरि तन मन धन आपकी भेंट अर्पण क्योँ । और वीनती करी जो राज अब में कहा रीति सों निवाह कहं । तब आपने आज्ञा करी जो श्री महाप्रभु जी को चित्र बीराजे है । ताको दर्शन करियो । और शोभावती ओर राय कृदावनदास की बेटा को सत्संग करियो । इतनी आज्ञा ताज अपने माथे पे धारिके अपने महल में गई । सो ताज ने अपने दोय महल न्यारे करे । एक महल तो श्री महाप्रभु जी के चित्र को और सेवा सत्संग को और दूसरे महल में अकबर आवे । और श्रीनाथ जी ताज के संग सतरंज खेलें फेरि निज मंदिर में पधारें । ता दिन सों श्री गुसाई जी श्रीनाथ जी सो पूछें, जो ऐसे नेत्र आरक्त आलस्य भरे हैं । सो रात्र कहाँ रहे ? तब आज्ञा करी जो आज रात्र कों ताज के संग सतरंज खेलें, तहाँ रहे । तासों नेत्र आरक्त हैं । ता दिन सों श्रीनाथ जी के राजभोग में सतरंज बिछिवे लागी ॥<sup>79</sup>

### वैभव का प्रदर्शन : राग भोग और शृंगार

चौरासी वैष्णव की वार्ता के अंतर्गत वैष्णव संख्या-3 में लिखा गया है - उत्तम सामग्री होय सो श्री ठाकुर जी को समर्पि श्री ठाकुर जी तो उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं । उत्तम वस्तुओं के आवश्यक बंदोबस्त में बल्लभाचार्य आजीवन जुटे रहे । उनकी मेहनत रंग भी लाई । उत्तम वस्तुएं ठाकुर जी की सेवा में आने लगीं । लेकिन, उत्तम वस्तुओं



का अपार वैभव पहली बार गुसाईं विठ्ठलनाथ के समय में ही दिखता । गुसाईं जी ने संप्रदाय के लिए अकूत संपत्ति इकट्ठी की । उनका विचार था कि संप्रदाय का प्रचार पूरी तरह तभी हो सकता है जब पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना का पर्याप्त विस्तार किया जाए । बल्लभाचार्य के समय में सेवा-विधि सामान्य थी । गुसाईं जी ने इसका विस्तार किया । राग, भोग और शृंगार को अत्यंत भव्य आयोजन बनाया । इसके साथ संप्रदाय के नित्योत्सवों एवं वर्षोत्सवों की संख्या में वृद्धि करके उन्हें अत्यंत कर्मान्वयी एवं कलात्मक रूप दे दिया । उसका उन्होंने जो क्रम निर्धारित किया था, वह आज तक संप्रदायी मंदिरों में प्रचलित है ।  
यहां संक्षेप में उसका विवरण दिया जा रहा है <sup>80</sup> -

शृंगार : ठाकुर जी के वस्त्राभूषण और उनकी साज-सज्जा को 'शृंगार' कहते हैं । आचार्य जी महाप्रभु के समय में श्रीनाथ जी का शृंगार केवल पाग, मोरमुकुट और गुंजामाला से किया जाता था । विठ्ठलनाथ जी के समय में जहां शृंगार के उपकरणों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई, वहां उनका रूप भी राजसी हो गया । उन्होंने आठ उपकरण तो ठाकुर जी के श्रीमस्तक के ही निश्चित किये : मुकुट, सेहरा, टिपारा, कुल्हा, पाग, दुमाला, फेंटा और ग्वाल पग । इनके साथ-साथ ठाकुर जी और स्वामिनी जी के मस्तक, कान, नाक, वक्ष, हस्त, कटि, चरण आदि अंगों के आभूषण भी निश्चित किए गए हैं । सभी आभूषण स्वर्ण-निर्मित होते हैं । इनमें से अनेक बहुमूल्य रत्नों से जड़े हुए और मीनाकारी किए हुए भी हैं ।

ठाकुर जी और स्वामिनी जी के वस्त्र भी विविध प्रकार से निर्धारित हुए । ये रेशमी, ऊनी और जरीदार हुआ करते हैं । इन में ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन किया जाता है, जैसे शीतकाल में भारी व मोटे वस्त्र तथा रुई के गद्दे आदि तो उष्ण काल में हलके एवं पतले वस्त्र । धीरे-धीरे इन वस्त्राभूषणों की संख्या में क्रमशः वृद्धि होती गई ; और इन्हें किस प्रकार धारण कराया जाए, इसका एक सुनियोजित

निर्धारित किया गया । मुकुट की लटक किस ओर हो, इसका भी एक निश्चित विधान है ।

ठाकुर जी के मंदिर की साज-सज्जा के लिए रंग-बिरंगे परदों और कलात्मक पिछ्वाहियों आदि का आवश्यक प्रबंध किया गया है । इनमें भी उत्सवों और ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन करने के नियम बनाए गए हैं । इन सब के कारण जहां भक्त जनों में ठाकुर जी की भावकियों का आनंद प्राप्त करने का आकर्षण बढ़ा है, वहां कई महत्वपूर्ण कलाओं की उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है । इन कलाओं में पिछ्वाई कला, पुष्प कला, सांझी कला एवं भित्ति-लांगिनी जा सकती हैं । प्राप्त सूची के अनुसार ठाकुर जी एवं स्वामिनी जी को पहनाए जाने वाले वस्त्रों की संख्या 41 तथा आभूषणों की संख्या 121 है ।<sup>81</sup>

**भोग** : खान-पानादि के विविध पदार्थों को सुंदर और शुद्ध रूप में प्रस्तुत कर उन्हें ठाकुर जी को समर्पण करने को 'भोग' कहते हैं । समर्पित पदार्थ 'प्रसाद' कहलाता है । वैष्णवों को अनप्रसादी भोजन करने पर सख्त पाबंदी है । बल्लभाचार्य जी के समय में सखरी, अनसखरी और दूध की सामान्य सामग्री तथा फल-मेवा का भोग ही श्रीनाथ जी को समर्पित किया जाता था । विट्ठलनाथ जी ने भोग का भी बड़ा विस्तार किया । उन्होंने पचासों भोज्य पदार्थों का ठाकुर जी की सेवा में विनियोग कर एक समुन्नत पाक कला को जन्म दिया ।

पुष्टि संप्रदाय की पाक कला का पूरा वैभव 'कुनवाड़ा', 'अन्नकूट' और 'क्षुप्पन भोग' के उत्सवों में दिखलाई पड़ता है । 'कुनवाड़ा' शब्द संभवतः कुनबा (कुटुंब) से बना है । इस समारोह का आयोजन श्री विट्ठलनाथ जी सह कुटुम्ब करते होंगे । अब भी प्रतिवर्ष ब्रज-यात्रा के अक्षर पर बल्लभीय गोस्वामीगण अपने कुटुंब परिवार सहित गिरिराज जी का कुनवाड़ा जतीपुरा (गोवर्धन) में करते हैं । 'अन्नकूट' का मतलब है - भोज्य पदार्थों का ढेर । इस उत्सव का आयोजन दीपावली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को बल्लभ संप्रदायी मंदिरों में किया जाता है ।

इस अक्सर पर ठाकुर जी को नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ अर्पित किए जाते हैं। 'हृष्ण भोग' बहुत बड़ा उत्सव है। इसके नाम के अनुरूप बहुसंख्यक भोज्य पदार्थ तो ठाकुर जी को समर्पित किए ही जाते हैं, उन के साथ षट् ऋतुओं के समस्त 'मनोरथ' भी करने आवश्यक होते हैं। पुष्टि संप्रदायी ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार श्री विट्ठलनाथ जी ने संवत् 1615 में श्रीनाथ जी का प्रथम हृष्ण भोग कराया था। तभी से इस संप्रदाय में इस उत्सव को करने की प्रथा प्रचलित हुई है। संवत् 1640 में श्री विट्ठलनाथ जी ने गोकुल में पुनः वृहत् हृष्ण भोग किया था, जिसमें नौ सेव्य स्वरूप पधराये गए थे।<sup>82</sup>

राग : इसका अभिप्राय विविध वाद्य यंत्रों की संगति द्वारा विभिन्न राग-रागिनियों में स्वर ताल एवं लय से श्रीकृष्ण के यश और उनकी लीलाओं का गायन करना है। इसे 'कीर्तन' या 'संकीर्तन' कहा जाता है। पुष्टिमार्गीय सेवा में लीलागायन रूप इस 'राग' का अत्यंत महत्व-स्थान है। इससे मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। इसीलिए इसे 'निरोध' का सर्वोपरि साधन माना गया है। श्री बल्लभाचार्य ने निरोधमयी पुष्टिमार्गीय सेवा में राग सहित कीर्तन करने का आवश्यक विधान किया। उन्होंने सर्व प्रथम कुंभनदास को और फिर सूरदास तथा परमानंददास को श्रीनाथ जी का कीर्तनिया नियुक्त किया था। वे सब अनेक राग-रागिनियों में ताल-स्वर-लय द्वारा विविध वाद्यों की संगति से कीर्तन करते थे। बाद में श्री विट्ठलनाथ जी ने इसे और भी विकसित एवं समुन्नत रूप प्रदान किया। उन्होंने श्रीनाथ जी की आठों भाण्डारियों में समय और ऋतु के रागों द्वारा कीर्तन करने का जो क्रम निर्धारित किया था, वह प्रायः उसी रूप में अभी तक प्रचलित है।<sup>83</sup>

### संप्रदाय का बंटवारा

प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि सन् 1562 ई० के लगभग अहिल में यवनों का उपद्रव आरंभ हुआ। तब गो० विट्ठलनाथ ने अहिल छोड़कर

स्थायी रूप से ब्रज में रहने का क्वार किया।<sup>84</sup> कंठमणि शास्त्री का मानना है कि लगभग इसी समय विट्ठलनाथ जी रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा (मध्य प्रदेश) पधारे। गढ़ा के पास उन्होंने जमुनिया तालाब (रानी तालाब) के किनारे अपना डेरा डाला। रानी ने इनके साधु चरित्र, प्रबल प्रताप और विद्वत्ता की जब ख्याति सुनी तो वह अपने सामंतों के साथ इनके पास आईं।<sup>85</sup> 'भाव सिंधु' में लिखा है कि गुसाईं जी से दीक्षा लेते समय रानी दुर्गावती ने 108 गांव दान किया।<sup>86</sup> कंठमणि शास्त्री के अनुसार दान में प्राप्त 108 गांवों को गुसाईं जी ने अपने सजातीय व्यक्तियों को दे दिया।<sup>87</sup>

विट्ठलनाथ जी का पहला विवाह सन् 1532 में बागरोही विश्व नाथ भट्ट की पुत्री रुक्मिणी जी से हुआ था। प्रथम पत्नी से इन्हें 10 संतान - 6 पुत्र और 4 पुत्रियां हुई थीं। पहली पत्नी की मृत्यु सन् 1559 ई० में हो गई। 'भाव सिंधु' के अनुसार रानी दुर्गावती के आग्रह से गुसाईं जी दूसरे विवाह के लिए तैयार हुए : "रानी ने मनोरथ उठायो जो आप दूसरो विवाह अंगिकार करो। तब आपने आज्ञा करी जो के लाल जी और चारि बेटि जी तो विराजे हैं। सोलोकवत सुख तो सब करि चुके हैं। अब फेरि कहा करनो तब रानी को मन मान्यो नाहि। तब श्री गोकुल नाथ जी, श्री रघुनाथ जी सो वीनती करिके कहेवाए जो आप पहले व्याह करो तो हम भैया व्याह करेंगे। नातर हम विवाह नाहि करेंगे। ऐसे तीनो भयान ने बहुत ही वीनती करी। अडि पकरि लीनी। फेरि आपके संग में भट्ट जीहते तिनके संग में श्री पद्मावती बहु जी साक्षात् दूसरो स्वरूप श्री स्वामिनी जी को अवतार हतो। ऊही कारन जानि के दुर्गावती रानी को अति करुणा सों मनोरथ पूर्ण कीयो। संवत् 1620 की साल अक्षय तृतीया के दीना श्रीपद्मावती बहुजी को विवाह अंगिकार कीयो। रानी ने विवाह में मनोरथ को द्रव्य एसो सरच्यो सो कहु लिखिवे में आवे नाहि।<sup>88</sup> दूसरे विवाह से

गुसाईं जी को एक पुत्र हुआ । संवत् 1621 (सन् 1564 ई०) में गढ़ा पर अकबर के आक्रमण की संभावना बनने लगी । तब गुसाईं जी गढ़ा से अड़ैल होते हुए सन् 1566 ई० में मथुरा आ गए । मथुरा में रानी दुर्गावती ने गुसाईं जी के रहने के लिए एक विशाल भवन बनवाया जो 'सतधरा' के नाम से जाना जाता है । 'भावसिंधु' के अनुसार - तब आपकी इच्छा मथुरा जी में विराजिवे की भई । सो रानी ने द्रव्य सरचि के आपकी बैठक न्यारी और सब भयान की बैठक न्यारी सो ऐसी रीति सों सात घर बनवाये । सो तातें सतधरा बाज्यो ।<sup>89</sup> यह भवन आजकल नहीं है, किन्तु वह स्थान अब भी मथुरा में 'सतधरा' के नाम से प्रसिद्ध है ।<sup>90</sup>

मथुरा में अपने परिवार को छोड़ कर गुसाईं जी गुजरात की यात्रा पर चले गए । जिन दिनों गुसाईं जी यात्रा पर थे, इनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी ने श्री नाथ जी को गोवर्धन से मथुरा लाकर पधराया । इस के लिए उन्होंने अपने पिता की अनुमति नहीं ली थी । इसलिए, उन्हें गुसाईं जी के मथुरा लौटने से पहले सन् 1567 ई० में श्री नाथ जी के स्वल्प को गिरिराज के मंदिर में वापस पधराना पड़ा ।<sup>21</sup> मुसलमानों के संसर्ग और नागरिक अशांति के कारण मथुरा का वास गुसाईं विट्ठलनाथ जी को अनुकूल ज्ञात नहीं हुआ, अतः उन्होंने गोकुल के शांत वातावरण में अपना स्थायी निवास बनाना चाहा ।<sup>92</sup> उसी समय के आसपास विट्ठलनाथ जी का अकबर से संपर्क हुआ । अकबर ने फरमान जारी करके गोकुल की भूमि गुसाईं जी को सदा के लिए प्रदान कर दी । उसी भूमि पर सं० 1628 (सन् 1571 ई०) के फाल्गुन मास में वर्तमान गोकुल बसाया गया । गो० विट्ठलनाथ अपने कुटुम्ब, सजातीय बंधु एवं शिष्य-सेवकों सहित वहां जाकर बस गए । संवत् 1628 में नवनीतप्रिय जी का मंदिर बनवाया गया ।<sup>93</sup>

गुसाईं जी की व्यावहारिक समझ बहुत पुष्टा थी । संप्रदाय का अपार वैभव और पुत्रों की संख्या देखते हुए गुसाईं जी के तिरौधान के बाद पुत्रों में आपसी झगड़े की पूरी संभावना बनती थी । संप्रदाय

की गद्दी के लिए गुसाईं जी का अपना अनुभव प्रीतिकर नहीं रहा था ।  
 क्ठिलनाथ जी नहीं चाहते थे कि उनके न रहने के बाद संप्रदाय में  
 पिछली कहानी दोबारा घटे । इसके लिए उन्होंने समय रहते व्यवस्था  
 कर दी । उन्होंने अपनी सारी संपत्ति सातों पुत्रों में बांट दी ।<sup>94</sup> इस  
 संपत्ति के बंटवारे के साथ उन्होंने अपने सातों पुत्रों को सात सेव्य स्वरूप  
 भी पधरा दिए जो आगे चलकर संप्रदाय में 'सात घर' अथवा 'सात पीठ'  
 के नाम से प्रख्यात हुए ।

'वल्लभाचार्य जी ने अपने समय में सेवकों को सेवार्थ कई भगवत्स्वरूप  
 पधरा दिये थे । कालान्तर में उन शिष्यों के वंश न चलने अथवा सेवा की  
 सुकरता न होने के कारण सातों स्वरूप गुसाईं जी के पास आ गए । यह  
 बटवारा गोकुल में निवास होने के बाद सातों पुत्रों में किया गया था ।  
 कहीं इसका समय सं० 1635 (सन् 1578 ई०) मिलता है और संप्रदाय  
 कल्पद्रुम के आधार पर संवत् 1640 (सन् 1583 ई०) ।'<sup>95</sup>

सातों पुत्रों को एक-एक स्वरूप की सेवा का 'भार' सौंपते हुए  
 गुसाईं जी ने दो स्वरूप ऐसे रख छोड़े जो संप्रदाय के केन्द्रीय सेव्य स्वरूप  
 थे / हैं । इन स्वरूपों की सेवा का अधिकार सभी पुत्रों को समान रूप  
 से है । साभे अधिकार वाले ये स्वरूप - श्रीनाथ जी और नवनीत प्रिय जी  
 गुसाईं जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी को प्रदान किए ।

सेव्य स्वरूपों के बंटवारे के बाद जिन सात पीठों की स्थापना हुई  
 वे इस प्रकार हैं<sup>96</sup> :

पुत्र	स्वरूप	आजकल कहाँ विराजते हैं
1. गिरिधर जी	श्री मधुरेश जी	कोटा
2. गोविंद राय जी	श्री क्ठिलनाथ जी	नाथद्वारा
3. बालकृष्ण जी	श्री द्वारकाधीश जी	काँकरोली
4. गोकुलनाथ जी	श्री गोकुल नाथ जी	गोकुल
5. रघुनाथ जी	श्री गोकुल चंद्रमा जी	कामवन

6.	यदुनाथ जी	श्री बालकृष्ण जी	सूरत
7.	घनश्याम जी	श्री मदन मोहन जी	कामवन

कंठमणि शास्त्री के अनुसार गुसाईं जी ने अपनी पुत्रियों को भी सेवा के लिए कुछ स्वरूप पधरा दिये थे, जो अद्यावधि यत्र-तत्र विराजमान हैं ।<sup>97</sup>

इन समस्त देव स्वरूपों के मंदिर गो० विट्ठलनाथ के समय में और उनके कुछ समय बाद तक जतीपुरा और गोकुल में विद्यमान थे । सं० 1726 (सन् 1669 ई०) में औरंगजेब ने मंदिरों और देवमूर्तियों को नष्ट कर हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाना आरंभ किया, तब इन भगवद् स्वरूपों की सुरक्षा के लिए उनको गुप्त रूप से जतीपुरा और गोकुल से हटाकर हिंदू राजाओं के राज्यों में ले जाया गया । सं० 1726 के आश्विन मास की पूर्णिमासी को श्रीनाथ जी के सुप्रसिद्ध स्वरूप को आगरा होते हुए मेवाड़ राज्य में पहुंचाया गया, जहां नाथद्वारा स्थान पर उनका वैभव-शाली मंदिर अभी तक विद्यमान है । इसी प्रकार अन्य सातों स्वरूपों को भी हटा दिया गया । केवल गोकुलनाथ जी का प्राचीन स्वरूप गोकुल में वापिस आ सका और वह वहीं पर विद्यमान है ।<sup>98</sup>

गुसाईं विट्ठलनाथ जी के उक्त सात पुत्रों के अलावा एक आठवां पोष्य पुत्र भी था । इस पुत्र का नाम तुलसीदास था । संप्रदाय में इनको गुसाईं जी आठवां लालजी भी कहते हैं । इनके पिता गुसाईं जी के सेवक और ठाकुर जी के जलधरिया थे । तुलसीदास जी के जन्म के कुछ ही समय बाद इनके पिता (अंजुदेव जी) और माता का नित्यलीला में प्रवेश हो गया था । अतः बालक तुलसीदास का लालन-पालन गुसाईं जी के सातों लालजी के साथ ही संपन्न हुआ । सेव्य स्वरूप के बंटवारे के पहले तक तुलसीदास जी को अपनी वास्तविक स्थिति का पता नहीं था । जब सेव्य-स्वरूपों के बंटवारे में कोई स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ, तब जाकर

उन्हें असलियत मालूम हुई । तुलसीदास जी व्यथित हो उठे । इस बात का पता जब गोसांई जी को लगा तो उन्होंने तुरंत तुलसीदास जी को बुलाया और उन्हें श्री गोपीनाथ जी (विठ्ठलनाथ जी के अग्रज) का स्वरूप प्रदान किया तथा आदेश दिया कि वे सिंध चले जाएं और वहां बल्लभ संप्रदाय का प्रचार करें । वे डेरा गाजी सां पहुँचे और मंदिर बनवा कर श्री गोपीनाथ जी को वहाँ प्रतिष्ठित किया ।<sup>99</sup> गुसांई जी के आदेश का पालन करते हुए तुलसीदास जी ने इस मुस्लिम बहुल इलाके में पुष्टि संप्रदाय का प्रचार किया । तुलसीदास जी रचनाकार भी थे । उन्होंने कई ग्रन्थों और 500 फुटकर पदों की रचना की है । इनकी सारी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं । इनके पौत्र गिरिधर जी ने डेरा इस्माइल सां में दिक्तीय पीठ स्थापित कर बल्लभ संप्रदाय का विस्तार किया । पाकिस्तान बनने के पश्चात् इनके वंशज वृंदावन, कानपुर, हरिद्वार, फरीदाबाद आदि स्थानों में अपने स्वरूपों सहित बस गए । वर्तमान में श्री गोपीनाथ जी वृंदावन में विराजते हैं ।<sup>100</sup>

### बल्लभ-कुल की कुछ ज्ञातव्य बातें

(क) बल्लभाचार्य तैलंग भट्ट ब्राह्मण थे । गुसांई विठ्ठलनाथ जी के समय से यह नियम बना दिया गया कि पुष्टिमागीय मंदिरों में स्वजातीय - तैलंग भट्ट ब्राह्मणों की सेवा नहीं ली जा सकती । हो सकता है ऐसा नियम इसलिए बनाया गया हो कि स्वजातीय होने के कारण ये लोग सेवक-धर्म भूलकर बराबरी का व्यवहार करने लगे और मंदिर पर अपना हक जताने लगे । कंठमणि शास्त्री इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि जब बंगाली ब्राह्मणों को श्री नाथ जी की सेवा से अलग किया गया था तब सजातीय ब्राह्मणों से कहा गया था कि वे मंदिर का सेवा-कार्य संभालें । उनके मना करने पर सांचीहर (सांचीरा) ब्राह्मणों को अंगिकार किया गया । अनुमान होता है कि - सजातीय तैलंग भट्ट - समुदाय इसी समय से सदा के लिए पुष्टिमागीय मंदिरों की सेवा से



वंचित कर दिया गया और क्वातीय ब्राह्मणों को प्रविष्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।<sup>101</sup>

लेकिन सांचौरा ब्राह्मण भी संप्रदाय की सात पीठों में से एक - चौथी पीठ में प्रतिबंधित हैं । यह पीठ गुसाईं जी के चौथे पुत्र गोकुलनाथ जी की है । 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार गुसाईं जी के सेवक मानिकचंद बनिया जब अत्यधिक वृद्ध हुए तो गुसाईं जी के पास आकर रहने लगे । महाप्रसाद में इनकी अपार श्रद्धा थी और ये पत्तल में कुछ भी जूठन नहीं ढोड़ते थे, उसे धौकर पी जाते थे । मंदिर के भीतरिया सांचौरा ब्राह्मणों को जब इसका पता चला तो उन्हें मज़ाक करने की सूझी । 'एक दिन श्री गोकुलनाथ जी के मंदिर में मानिकचंद जी प्रसाद लेते बैठे होते सो दिन साचोरान ने ऐसी जानी जो ये पातल पर कछु ढोड़े नहीं है और पातल धोयके पी जाय हैं तब साचोरान ने यह मस्कारी करवे के लीये भात के नीचे गोबर धर दीयो तब मानिक चंद गोबर सहित खाय गये वा बात की खबर श्री गोकुल नाथ जी कुं पड़ी तब श्री गोकुल नाथ जी ने हाथ में जल लेकर साचोरान को शाप दियो जो तुमारो साचौरा देह सूं कोई उद्धार नहीं होयगो और वाई दिन सूं सेवा की जल पर्यन्त साचौरा श्री गोकुलनाथ जी के घर में नहिं कुवे ऐसो बंदोबस्त कर्यो ।।' <sup>102</sup>

(ख) 'एक बार विट्ठलनाथ जी श्रीनाथ जी की सेवा अपने भतीजे पुरुषोत्तम जी को संभलाकर माता के पास गोकुल गये और वहां से किसी जातीय कार्य में अपने मामा के साथ मथुरा में 'अंगा रंगा' नामक सजातीय व्यक्ति के घर गये । जाति में सबको समान आदर भाव होने के कारण इनका यहां विशेष ध्यान नहीं रखा जा सका, जो विट्ठलनाथ जी के मामा को असह्य हो गया । इनके मामा ने इसको विट्ठल नाथ जी का अपमान समझा और वे इन्हें लेकर कुछ लोगों के साथ पंक्ति से उठकर चले गये । विट्ठलनाथ जी के संग जो तैलंग भट्ट गोकुल चले गये वे उस समय से 'गोकुलस्थ भट्ट' कहलाने लगे, और जिन्होंने साथ नहीं दिया, वे

‘मथुरास्थ भट्ट’ रूप में प्रख्यात हो गये । इस प्रकार इनके मामा के कारण जाति में उस समय से एक ऐसी तहबंदी हो गई जो आज भी अपना विषैला प्रभाव फैला रही है ।<sup>103</sup>

(ग) सन् 1572 के आसपास की बात होगी, वल्लभाचार्य के बड़े भाई रामकृष्ण भट्ट तब तक संन्यासी हो गए थे और उन्होंने अपना नाम बदल कर केशवपुरी रख लिया था । केशवपुरी संन्यासी यात्रा करते हुए गुसाईं जी के पास आये । क्लृष्टलनाथ जी ने इनका आदर-सत्कार किया और भिक्षा मांगने का अनुरोध किया । भिक्षा में केशवपुरी ने अपना शिष्य बनाने के लिए गुसाईं जी से एक पुत्र मांगा । गुसाईं जी ने अपने सभी पुत्रों से बात की, पर केशवपुरी के साथ जानै को कोई तैयार नहीं हुआ । अंततः गुसाईं जी ने स्वयं को शिष्य बनाने की प्रार्थना की । संन्यासी केशवपुरी इस पर क्रुद्ध हो गए और उन्होंने शाप दिया -

1. आपके वंश की पुत्रियां पिता के घर पर ही रहा करेंगी ।
2. आपके वंश को प्रदेशाटन कर अर्थ संग्रह करना पड़ेगा ।
3. आपके कुल में व्यभिचार का संपर्क होने पर कुल का द्रास प्रारंभ हो जाएगा ।

शाप देकर केशवपुरी चले गए । शाप के प्रतिकार के विषय में जब गिरिधर जी ने प्रार्थना की तो गुसाईं जी ने कहा कि यदि अनन्य भाव से तुम सब भगवत्सेवा में लीन रहकर दुःसंसर्ग से अलग रहोगे तो श्री प्रभु<sup>104</sup> अवश्य ही तुम सब की रक्षा करेंगे ।

## विट्ठलनाथ जी के सात पुत्रों का संक्षिप्त परिचय

विट्ठलनाथ जी को शास्त्रीय कर्माश्रम-धर्म की पुनर्स्थापना के लिए प्राकट्य हुआ था ।<sup>105</sup> अपने जीवन का कर्तव्य समाप्त कर उन्होंने नित्य लीला में प्रवेश करना चाहा । तिरौधान के पूर्व उन्होंने आवश्यक व्यवस्था की । संप्रदाय के सेव्य स्वस्वों और अर्जित संपत्ति को पुत्रों में बांटा । पुत्रों को आवश्यक निर्देश देकर श्रीनाथ जी का राजभोग किया और मध्याह्न में ही श्री गिरिराज की एक गुहा के द्वार पर पधारे । वहां उन्होंने अपने कंठ की माला अपने सबसे तेजस्वीपुत्र गोकुलनाथ जी के गले में पहनाई और स्वयं कंदरा के भीतर पधारे । उसी समय सूचना पाकर ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी आ पहुंचे । गुसांई जी गुहा के भीतर पधार ही रहे थे कि उन्होंने गुसांई जी का उत्तरीय वस्त्र खींचा । गुसांई जी ने आदेश दिया कि उत्तरीय वस्त्र के द्वारा ही उनका उत्तर कर्म किया जाए । इसके बाद वे सदेह लीला में पधार गए । 'संप्रदाय कल्पद्रुम' के आधार पर गुसांई जी का तिरौधान वर्ष सं० 1644 (1587 ई०) फाल्गुन शुक्ल एकादशी है ।<sup>106</sup> पर, प्रभुदयाल मीतल ने विभिन्न प्रमाणों की परीक्षा करके सं० 1642 (सन् 1585 ई०) को विट्ठलनाथ जी का तिरौधान वर्ष माना है ।<sup>107</sup> विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों का परिचय संक्षेप में इस तरह देखा जा सकता है :

### गिरिधर जी

गुसांई जी के पहले लालजी गिरिधर जी का प्राकट्य सं० 1597 (सन् 1540 ई०) को अईल में हुआ था । पिता के देहावसान के बाद पुष्टि संप्रदाय के आचार्य पद पर गिरिधर जी ही प्रतिष्ठित हुए थे । शासन-सत्ता में इनकी पैठ थी । अपने पिता का विरोध करने वाले अधिकारी कृष्णदास को इन्होंने ही कैद करवाया था । अकबर के दरबार

में ये 'यती' के नाम से प्रसिद्ध थे।<sup>108</sup> अकबर ने इनके नाम कई फरमान भी जारी किए थे।<sup>109</sup> इनकी कुल संतानें थीं - तीन पुत्र और तीन पुत्रियां। गिरिधर जी का तिरौधान सन् 1620 ई० में हुआ था। इनके जीवन काल में ही गोकुलनाथ जी को झोंड़कर अन्य पांचों भाइयों का देहावसान हो गया था। संप्रदाय का यह नियम है कि बल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जी के साथ गिरिधर जी की पादुकाएं एक साथ सेवा में प्रतिष्ठित की जाती हैं। यह नियम गोकुलनाथ जी का चलाया हुआ है।<sup>110</sup>

इनके रचे हुए दो ग्रंथ मिलते हैं - 'गद्य मंत्र टीका' एवं 'निर्णय स्तोत्र', गुसाईं विट्ठलनाथ जी का प्रसिद्ध 'विद्वन्मंडन' ग्रंथ की रचना में ये सहयोगी थे। 'विद्वन्मंडन' ग्रंथ प्रश्नोत्तर शैली में शंकराचार्य के मायावाद का खंडन करके साकार ब्रह्मवाद की स्थापना के लिए लिखा गया था। संप्रदाय में प्रचलित है कि मायावादियों की तरफ से गिरिधरजी ही प्रश्न करते थे। प्रश्न करते समय ये कंठी उतार कर पूरे मायावादी का रूप और आवेश धारण कर लेते थे। यह भी कहा जाता है कि ग्रंथ के समाप्त होने पर गिरिधरजी ने गुसाईं जी से दूसरी बार फिर 'ब्रह्म-संबंध' की दीक्षा ली थी।<sup>111</sup>

### गोविंदराय जी

गोविंदराय जी का आविर्भाव - तिरौधानकाल 1542-1593 ई० है। आपके चार पुत्र और दो पुत्रियां थीं। बटवारे में इनको विट्ठलनाथ जी का स्वरूप मिला था। यह स्वरूप गोकुल से खिमनौर होते हुए कोटा पहुंचा। कोटा से जयपुर ले जाया गया और आजकल नाथद्वारा में विराजमान है। संप्रदाय में इनकी प्रसिद्ध रचना 'विट्ठलाष्टक' अभी तक अप्रकाशित है।<sup>112</sup>

प्रसिद्ध है कि गोविंदराय जी को सेवा का प्रबल आग्रह था। अपने व्याह के समय जब ये घोड़े पर बैठे हुए थे, उत्थापन का समय हो गया। ये अधीर हो गए। यह देखकर गुसाईं जी ने आपको पहले

सेवा करने की आज्ञा दे दी और पीछे से व्याह के लिए दूसरी लग्न निकलवाई ।

### बालकृष्ण जी

इनका समय सन् 1550-1593 ई० है । ये शरीर सेबलिष्ठ और श्याम वर्ण के थे । नेत्र बड़े थे, इसलिए घर में इनको राजीव लोचन कहा जाता था । इनकी सात संतानें थीं - एक बेटी और छः बेटे ।

बालकृष्ण जी को द्वारकाधीश जी में प्रगाढ़ अनुरक्ति थी । द्वारकाधीश के स्वरूप के साध में स्वामिनी जी का स्वरूप पधाराना चाहते थे । इनकी आतुरता देखकर गुसांई जी ने उन्हें छोटे छोटे दो कंकण दिए और कहा कि जिस स्वरूप को श्रीहस्त में ये दोनों कंकण ठीक बैठ जाएंगे वही स्वामिनी जी द्वारकाधीश जी के पास पधारेंगी । बालकृष्ण ऐसा स्वरूप खोजने लगे । अंततः उन्हें यमुना के किनारे उपयुक्त स्वरूप की प्राप्ति हुई । गुसांई जी ने इसी समय स्वामिनी जी की आवश्यक सेवा प्रणाली प्रचलित की । उसी समय से प्रतिवर्ष माघ कृष्ण - 4 के दिन स्वामिनी जी का पाटोत्सव मनाया जाने लगा ।

स्वरूपों के बंटवारे के समय एक घटना घटी । गुसांई जी ने अपने छोटे पुत्र यदुनाथ जी को बालकृष्ण ठाकुर जी का स्वरूप प्रदान किया । यह स्वरूप देखने में अत्यंत छोटा था इसलिए, यदुनाथ जी ने इसे लेने से इन्कार कर दिया । बालकृष्ण जी ने गुसांई जी से वह स्वरूप मांग कर द्वारकाधीश के साथ पधरा लिया । बड़े भाई को इसके लिए यदुनाथ जी टोक न सके । बाद में इस स्वरूप को लेकर विवाद हुआ । जब तक यदुनाथ जी जीवित रहे उन्होंने अपने बड़े भाई बालकृष्ण जी के साथ मिलकर द्वारकाधीश और बालकृष्ण स्वरूपों की साथ-साथ सेवा की । यदुनाथ जी के

पुत्र मधुसूदन और बालकृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र द्वारकेश जी में स्वरूप को लेकर झगड़ा हो गया । मधुसूदन अपने पिता को मिले बालकृष्ण के स्वरूप को ले जाना चाहते थे, पर द्वारकेश जी ने मना कर दिया । विवाद निपटाने के लिए मधुसूदन जी को अपने काका गोकुलनाथ जी से फरियाद करनी पड़ी । गोकुलनाथ जी इस समय सम्प्रदाय के मुख्य पीठाधिपति थे । उन्होंने द्वारकेश जी को बुला भेजा । गोकुलनाथ जी ने गुसाई जी द्वारा किए गए बंटवारे का वृत्तांत बतलाते हुए आशा दी - 'बालकृष्ण जी यदुनाथ जी के वंशजों के ही अधिकार की निधि हैं । सात स्वरूपों के बंटवारे के समय गुसाई जी ने बालकृष्ण लाल जी को आशा दी थी कि जब कभी भी यदुनाथ जी के वंशज अपना स्वत्व मांगें, तब वह उन्हें दे दिया जाए ।'<sup>113</sup>

मधुसूदन जी को उनका सेव्य-स्वरूप वापस मिल गया । अभी एक वर्ष ही हुए थे उन्हें भगवदाज्ञा हुई कि 'मैंने एक वर्ष तक तुम्हारा मनोरथ पूर्ण किया है, किन्तु अब मैं यहाँ तुम्हारे पास न रह कर द्वारकाधीश के पास ही रहना चाहता हूँ ।'<sup>14</sup> मधुसूदनजी इस भगवदाज्ञा के आगे असहाय थे । वे पुनः द्वारकेश जी के पास पहुँचे और । द्वारकेश जी का कहना था - बार-बार हम झगड़ा नहीं करना चाहते, तुम अपने ठाकुर जी अपने ही पास रखो । आखिरकार मधुसूदन जी को अपनी बात मनवाने के लिए गोकुलनाथ जी की शरण लेनी पड़ी । गोकुलनाथ जी ने द्वारकेश जी को समझाकर बालकृष्ण का स्वरूप द्वारकाधीश के साथ पधरवा दिया । लेकिन, आगे के वंशजों में कोई विवाद फिर न उठे इसलिए मधुसूदन जी से इकरारनामा लिखवाया और उस पर अपने हस्ताक्षर किए । तब से बालकृष्ण जी पुनः वही विराजने लगे ।

बालकृष्ण जी विद्वान लेखक कहे जाते हैं । कांकरोली विद्या विभाग से इनके पाँचग्रंथों का पता चला है - (1) स्वप्नदृष्ट स्वामिनी स्तोत्र, (2) गुप्त स्वामिनी स्तोत्र विवृति, (3) भक्ति वर्द्धन स्तोत्र विवृति, (4) प्रसाद वागीश भाष्य विवृण तथा (5) सर्वोत्तम स्तोत्र विवृति ।

बालकृष्ण जी के ज्येष्ठ पुत्र द्वारकेश जी ने सिंध प्रांत की यात्रा करके यहाँ के हिंदुओं में पुष्टि मार्ग का प्रचार किया । इस यात्रा में उन्हें प्रचुर मात्रा में धनराशि प्राप्त हुई । द्वारकेश जी के दो ग्रंथ 'नामामृत स्तोत्र' तथा 'सर्वोत्तम स्तोत्र विवृति' प्राप्त हैं । आजकल तृतीय पीठ कांकरौली में है और यह पुष्टिमार्ग की सप्त पीठों में महत्वपूर्ण गिनी जाती है ।

### गोकुल नाथ जी

---

वर्तमान काल सन् 1551 - 1640 ई० ।

गोकुलनाथ जी गुसाई जी के पुत्रों में सर्वाधिक तेजस्वी और महत्वाकांक्षी थे । कुटुंब पर इनका बड़ा प्रभाव था और आपसी झगड़ों का निपटारा करवाने के लिए लोग इन्हीं के पास आते थे । गोकुलनाथ जी का विवाह पार्वती से हुआ था । इनसे इन्हें तीन पुत्र और एक पुत्री की प्राप्ति हुई थी । गोकुलनाथ जी की न्यायप्रियता की एक कहानी संप्रदाय में प्रचलित है । इनके पुत्र गोपाल जी ने अपने चाचा घनश्याम जी से रुष्ट होकर उनके सेव्य स्वरूप मदनमोहन की चोरी करवा दी । इस स्वरूप को उन्होंने गोकुल के बाहर भिजवा दिया । गोकुलनाथ जी ने कहा कि जिसने हमारे धनू (घनश्याम जी, भाइयों में सबसे छोटे तथा सौतेली माता के एकमात्र पुत्र) को कष्ट दिया है, उसका वंश नष्ट हो जाएगा । किसी ने गोकुलनाथ जी को यह कहकर रोका कि हो सकता है चोरी करने/करवाने वाला आपके ही घर का न हो । गोकुल नाथ जी ने कहा - उसका भी वंश नहीं चलेगा । वस्तुतः हुआ भी यही । चोरी में शामिल उनके दोनों पुत्रों का वंश नहीं चला ।<sup>115</sup>

### माला प्रसंग

---

संप्रदाय के इतिहास में गोकुल नाथ जी के जीवन की सबसे प्रसिद्ध

घटना 'माला प्रसंग' के नाम से जानी जाती है। 'माला प्रसंग' में मिली सफलता को इनके सेवक कवियों ने आधार बना कर कवितारें रचीं। इन कवियों में गोपालदास (गुजराती में) शैख, श्रीपति, प्राणनाथ, वृंदावन और गहर गोपाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।<sup>116</sup>

'माला प्रसंग' की घटना इस प्रकार है - बादशाह जहांगीर चिद् रूप नामक संन्यासी के चमत्कारों के प्रभाव में आ गया था। चिद् रूप वैष्णवों से बहुत चिद्धता था। सन् 1616 ई० में जब जहांगीर गुजरात गया तो वहाँ मौका पाकर चिद् रूप ने बादशाह को समझाया कि उसके राज्य में तुलसी की माला और ऊर्ध्वपुंङ्गु तिलक धारण करने वालों से राज्य का अहित हो रहा है और इन्हें रोकना आवश्यक है। बादशाह ने राजाज्ञा कर दी कि मथुरा, वृंदावन, गोकुल और अन्य जहाँ कहीं कोई वैष्णव माला और तिलक किए मिले उसकी माला उतरवा ली जाए और तिलक बिगाड़ दिया जाए। आसफ खां नाम के बादशाह के मंत्री ने गुप्त रूप से यह सूचना गोकुलनाथ जी के पास भेजी। इस निर्णय पर गोकुलनाथ जी पहले तो चुप रहे, पर जब मथुरा वृंदावन आदि जगहों पर राज-कर्मचारियों का अत्याचार बहुत बढ़ गया और गोकुल नाथ जी के पास भी सन्देश आने लगे कि या तो आप शाही हुकुम का पालन कीजिए या गोकुल छोड़ दीजिए तो उन्होंने इस आदेश का विरोध करने का निश्चय किया। जहांगीर कश्मीर जाते हुए कणाविलि नामक स्थान पर रुके तो गोकुल नाथ उन्हें आशीर्वाद देने पहुँचे। बादशाह ने उन्हें अपने आदेश की याद दिलाई। गोकुलनाथ जी ने कहा कि पहले कोई माला धारण करने को शास्त्र विरुद्ध ठहरा दे तो आपका आदेश माना जा सकता है। जहांगीर ने शास्त्रार्थ के लिए चिद् रूप से कहा, पर वह तैयार न हुआ। जहांगीर की हिन्दू रानी मानक्ती ने समझाया पर जहांगीर ने अपना आदेश वापस न लिया। विवाद बढ़ता गया। लगभग पाँच साल तक मथुरा और उसके आसपास वैष्णवों की मालाएँ तोड़ी जाती रहीं।



गोकुलनाथ को कुछ समय के लिए कहीं अलग चले जाने को कहा <sup>गया</sup> पर उन्हें मंजूर न हुआ । आखिरकार बादशाह ने गोकुलनाथ जी को कश्मीर बुलाया । गोकुलनाथ की अवस्था उस समय सत्तर वर्ष की थी । <sup>117</sup> कश्मीर में गोकुलनाथ जी के हितैषी आसफ खां ने एकांत में समझाया कि बादशाह के सामने माला उतारना स्वीकार कर लीजिए पीछे व्यवहार में चाहे ऐसा न कीजिए । गोकुलनाथ जी ने इसे स्वीकार न किया । बादशाह ने गोकुल नाथ के सामने आसफ अली की सलाह पर दो शर्तें रखीं - गोकुल छोड़ दें या माला पहनना बंद कर दें । गोकुलनाथ ने माला पहनना नहीं छोड़ा और सोरो (जिला सटा) में गंगा तट पर आकर रहने लगे । कुछ दिन बाद जब बादशाह गोकुल आए तो वहाँ सन्नाटा फैला पाया । पूछने पर हाकिमों ने उन्हें गोकुलनाथ जी के निष्कासन की याद दिलायी । बादशाह ने गोकुलनाथ जी को सोरो से बुला भेजा । गोकुलनाथ सन् 1620 में तीन माह बारह दिन सोरो में रहकर गोकुल लौट आए । <sup>118</sup>

‘माला-प्रसंग’ की समीक्षा करते हुए डा० हरिहरनाथ टंडन कहते हैं - ‘माला प्रसंग का जो उल्लेख संप्रदाय में मिलता है, इसका उल्लेख जहांगीर से संबंध रखने वाले किसी ग्रंथ में नहीं है । और, जहांगीर की उदार नीति से इसका कोई मेल भी नहीं बैठता है । ऐसा लगता है कि यह प्रसंग शाहजहाँ के राज्यारोहण के बाद का ही है क्योंकि उसी ने पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार को रोक दिया था ।’ <sup>119</sup>

### लेखक के रूप में गोकुलनाथ जी

गोकुलनाथ जी की प्रतिष्ठा का एक बड़ा कारण उनका लेखकीय व्यक्तित्व है । गोकुलनाथ जी ने बहुत से ग्रंथ बनाए । ‘संप्रदाय कल्पद्रुम’ में इनके तेरह ग्रंथों के नाम गिनाए गए हैं । <sup>120</sup> इन्होंने प्रायः टीकाएँ लिखी हैं । महाप्रभु वल्लभ के प्रायः सभी ग्रंथों पर इनकी टीकाएँ हैं ।

वार्ता साहित्य की रचना का श्रेय इन्हें दिया जाता है । संप्रदाय में गोकुलनाथ जी के 'चौबीस वचनामृत' प्रसिद्ध हैं । ये वचनामृत ब्रजभाषा में हैं । इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा में कविताएं भी की हैं । इनके पद सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रहों में श्री वल्लभ नाम से मिलते हैं ।

### स्वायत्त पीठ

पुष्टि मार्ग की सप्तपीठों में गोकुल नाथ की चतुर्थ पीठ है । गोकुलनाथ जी एक महत्वाकांक्षी आचार्य थे । इन्होंने अपनी पीठ/गद्दी को अलग पहचान देने की कोशिश की । इसीलिए, बाकी कः पीठों से इस पीठ के साम्प्रदायिक क्वार थोड़े भिन्न हैं । गोकुलनाथ जी के शिष्य-सेवक, भडूची वैष्णव कहे जाते हैं । अन्य सम्प्रदायों में ठाकुर जी का स्वरूप सर्वोपरि मान कर सेवा करने का क्वान है । भडूची वैष्णव स्वरूप सेवा को सर्वोपरि नहीं मानते । इनके लिए श्रीनाथ जी, बल्लभाचार्य या विट्ठलनाथ सर्वोपरि नहीं हैं । ये गोकुल नाथ जी को, उनकी गद्दी को ही सर्वस्व मानते हैं ।

इस भिन्नता के लिए संप्रदाय में एक कहानी प्रचलित है । जब गोकुलनाथ जी का जन्म हुआ, उस समय गुसाईं जी श्रीठाकुर जी की सेवा में तल्लीन थे । पुत्र जन्म के समाचार से उन्हें विवश होकर सेवा स्थगित करनी पड़ी । इस पर विट्ठल नाथ जी ने कहा कि इस बालक के कारण ठाकुर सेवा में बाधा पड़ी है, अतः इसके अनुयायी ठाकुर जी की स्वरूप सेवा से वंचित रहेंगे ।<sup>121</sup>

गोकुल नाथ जी ने लंबी यात्राएं करके पुष्टिमार्ग का प्रचार किया था । वे एक प्रसिद्ध वक्ता भी थे । उनसे प्रभावित होकर अनेक लोग उनके सेवक बने । इन सेवकों में 78 सेवक मुख्य माने गए । इन प्रमुख सेवकों में भड़ौच निवासी मोहन भाई विशेष प्रसिद्ध हैं । मोहनभाई एक गुजराती वैश्य थे । वे आगरा के गोकुलपुरा में रहते थे और राज्याधिकारी

थे । अन्य प्रमुख सेवकों में व्यारावाले गोपालदास, कल्याणभट्ट (प्रसिद्ध कवि) के नाम लिए जा सकते हैं ।

कहा जाता है कि गोकुल नाथ जी के 78 शिष्य सेवकों ने, इनके देहावसान के साथ वियोग न सह पाने के कारण अपने शरीर छोड़ दिए थे ।<sup>122</sup>

वल्लभाचार्य की तरह गो. गोकुलनाथ की बैठकें पुष्टिमार्ग में प्रसिद्ध हैं । ये बैठकें पुष्टिमार्गीय मंदिरों और देवालयों की भांति पवित्र मानी जाती हैं । इन बैठकों की संख्या 13 है । इनमें से आठ ब्रज में हैं, शेष अन्यत्र ।

गोकुलनाथ जी ने ही बल्लभ संप्रदाय में सर्वप्रथम रासलीला का आयोजन करवाया था । अपने लेखन में उन्होंने ब्रजभाषा गद्य का व्यापक प्रयोग किया ।

### रघुनाथ जी

कर्ममान काल 1554 - 1603 ई० ।

नंददास की वार्ता में लिखा है कि जब तुलसी नंददास से मिलने ब्रज पहुँचे तो उन्होंने अपने आराध्य रामचन्द्र जी का दर्शन करना चाहा । इस पर गुसाईं विठ्ठलनाथ ने उनकी निष्ठा का सम्मान करते हुए अपने पुत्र रघुनाथ जी में उन्हें रामचन्द्र जी के दर्शन कराए ।<sup>123</sup> टंडन जी के अनुसार यह घटना सं० 1526 (सन् 1509 ई०) की है । इस समय रघुनाथ जी की आयु 15 वर्ष की थी और इनका विवाह तब तक हो चुका था । इनकी पत्नी का नाम जानकी देवी था । रघुनाथ जी की कुलसंतानें - पाँच बेटे व एक बेटी थी । रघुनाथ जी को घर में रामचन्द्र कहा जाता था ।

स्वल्पों के बंटवारे में रघुनाथ जी को गोकुल चंद्रमा जी मिले थे ।

इनकी पांचवीं गद्दी कामका में अभी तक विद्यमान है । रघुनाथ जी का नियम था कि वे प्रातः सबसे पहले गुसाई जी का दर्शन करते थे उसके बाद ही किसी और को देखते थे । एक दिन बैठक में आंस बंद करके जाते हुए इन्हें चोट लग गई तब गुसाई जी ने अपना एक चित्र बनाकर इन्हें दिया था ।<sup>123</sup>

### मंजूषामानय प्रसंग

‘संप्रदाय कल्पद्रुम’ तथा ‘गिरधरलाल जी के वचनमृत’ में इस घटना का जिक्र है । यह घटना रघुनाथ जी की बाल्यावस्था में घटी थी । एक बार गुसाई जी श्रीनाथ जी के मंदिर में शृंगार कर रहे थे और पाँचों पुत्र उनके पास खड़े थे । श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए विट्ठलनाथ जी सिर्फ देव वाणी-संस्कृतभाषा का प्रयोग करते थे । ज़रूरत पड़ी तो उन्होंने पुत्रों की तरफ देखकर कहा - ‘मंजूषामानय’ । बाकी भाई तो वहीं खड़े रहे, सबसे छोटे पाँचवर्षीय रघुनाथ ने कहा ‘जो आज्ञा’ और चले गए । ये समझे तो थे नहीं, इसलिए सय्या मंदिर जाकर सोचने लगे कि क्या ले जाएं । कहते हैं इन्हें महाप्रभु जी ने बोध दिया और ये शृंगार मंजूषा लेकर पिता जी के पास उपस्थित हो गए । प्रसिद्ध है कि श्रीनाथ जी ने गुसाई जी से कहा कि सेवा में संस्कृत बोलने से बालकों को कष्ट होता है और मुझे ब्रजभाषा प्रिय है इस लिए उसी का व्यवहार करो । इस तरह मंजूषामानय प्रसंग के बाद सेवा में ब्रजभाषा का प्रयोग होने लगा । अष्टछाप के कवि कीर्तन रचना में इस भाषा का प्रयोग कर ही रहे थे सेवा-प्रणाली में ब्रजभाषा के आने से ब्रजभाषा गद्य का विकास होने लगा । इसके बाद गुसाई जी ने अपने कई पत्र ब्रजभाषा में लिखे । ये पत्र संप्रदाय के विद्या विभागों में सुरक्षित हैं । ब्रजभाषा गद्य का अध्ययन करने वालों के लिए ये पत्र उपयोगी हो सकते हैं । ब्रजभाषा गद्य का सर्वाधिक प्रयोग

पुष्टि मार्गी आचार्यों के वचनामृतों में हुआ है । ये वचनामृत प्रचुर मात्रा में हैं ।<sup>124</sup>

संप्रदाय में रघुनाथ जी की ख्याति एक बड़े ग्रंथकार के रूप में है ।  
‘संप्रदाय कल्पद्रुम’ में इनके चौदह संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख है ।<sup>125</sup>

### यदुनाथ जी

वर्तमान काल - सन् 1558 - 1603 ई० ।

गुसाई जी के छठे पुत्र यदुनाथ जी ने आयुर्वेद का विशेष अध्ययन किया था । इनकी एकमात्र प्रकाशित रचना ‘वल्लभ दिग्विजय’ है । इस ग्रंथ में मायावादियों की पराजय का विशेष विवरण मिलता है ।  
स्वरूपों के बंटवारे में इन्हें बालकृष्ण ठाकुर जी का बहुत छोटा स्वरूप मिला था जिसके कारण ये नाराज थे । जब गुसाई जी ने सातों स्वरूपों को श्रीनाथ जी के पास पधराकर महोत्सव किया, तब ये नहीं आए । गुसाई जी ने इन्हें समझाने के लिए राजा आसकरण की सहायता ली थी । ‘संप्रदाय कल्पद्रुम’ में यह प्रसंग लिखा गया है<sup>126</sup> --

नंद महोत्सव पूर्ण करि श्रीविठ्ठल दिवजराय ।

आसकरण नृप कों जु फिर नरवर ते बुलवाय ॥ (42)

त्रिविध सृष्टि हरषत हिये घेर लीन मग आय ।

फक्त एक रघुनाथ जु, रहे जु गृह बिलखाय ॥ (46)

आसकरण नृप को जु फिर गोकुल भोर पठाय ।

बुलवाये यदुनाथ को परिपूरण समुभाय ॥ (50)

यदुनाथ जी का विवाह महारानी नामक कन्या से हुआ था । इनके पांच पुत्र और एक पुत्री थी । इनके प्रायः सभी भाइयों ने गुसाई विठ्ठलनाथ की स्तुति में ग्रंथ लिखे हैं या उनके ग्रंथों की टीका लिखी है, पर यदुनाथ जी ने (पिता से नाराज रहने के कारण ही) ऐसा नहीं किया था ।

### घनश्याम जी (1571-1612 ई०)

---

घनश्याम जी विट्ठलनाथ जी की दूसरी पत्नी पद्मावती जी के एकमात्र पुत्र थे । बाल्यावस्था में ही इनकी माँ का देहांत हो गया था । इनका पालन पोषण गुसाई जी के प्रथम पुत्र गिरिधर जी की पत्नी भामिनी जी ने किया था । इसे प्रसन्न होकर गुसाई जी ने भामिनी जी को आशीर्वाद दिया था कि तेरी गोद सदा हरी रहेगी । टंढन जी के अनुसार आज जो गोस्वामी बालक विद्यमान हैं उनमें गिरिधरजी और श्री यदुनाथ जी का ही वंश चल रहा है । शेष घरों में इनमें से ही गोद लिए जाते हैं ।<sup>127</sup>

संप्रदाय में प्रचलित है कि संवत् 1669 (1612 ई०) में अन्नकूट के दिन इनका गोकुलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपाल जी से सुखपाल के डँडै की लंबाई को लेकर भगड़ा हो गया । गोपाल जी ने इनके सेव्य स्वरूप को चुरा कर गोकुल के बाहर भेज दिया । घनश्याम जी ने इसी वियोग और दुःख में शरीर त्याग दिया था ।<sup>128</sup> घनश्याम जी के दो पुत्र और एक कन्या थी । घनश्याम जी कवि थे । इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा में कई रचनाएँ की हैं ।

### हरिराय जी

---

पुष्टिमागीय आचार्यों में सिर्फ तीन आचार्यों को 'महाप्रभु' तथा 'प्रभुवरण' की पदवी दी जाती है ।<sup>129</sup> ये आचार्य हैं - बल्लभ, गोकुलनाथ तथा हरिराय । हरिराय विट्ठलनाथ जी के द्वितीय पुत्र गोविंदराय के पौत्र थे । इनके पिता का नाम कल्याण राय था । हरिराय जी का जन्म 1590 ई० में और देहावसान 1715 ई० में हुआ था । इन्होंने 125 वर्ष की लंबी आयु पाई थी ।

हरिराय जी संस्कृत, गुजराती तथा ब्रजभाषा के बड़े भारी

विद्वान् थे । संप्रदाय का ऐसा कोई विषय नहीं, जिस पर उन्होंने न लिखा हो । उन्हें सांप्रदायिक दीक्षा गोकुलनाथ जी ने दी थी । गोकुलनाथ जी की उपस्थिति में ही उन्होंने वाताओं पर भाव प्रकाश टीका लिखी थी । इनका लिखा हुआ शिक्षा पत्र संप्रदाय में अत्यंत समादृत है । इसे 'सिद्धांत ग्रंथ' कहा जाता है । हरिराय जी ने कई नामों से रचना की थी - रसिक, रसिकराय, हरिधन, हरिदास आदि।

वल्लभ संप्रदायी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् द्वारकादास पारीस के अनुसार गोस्वामी हरिराय ने संस्कृत में 166 ग्रंथों की रचना की थी । ब्रजभाषा गद्य में इनकी 46 कृतियां प्राप्त हैं । इनकी ब्रजभाषा-काव्य-रचनाओं की संख्या 6 है । गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं में हरिराय जी के लिखे पद प्राप्त होते हैं । नाडियाद के पुष्टिमागीय पुस्तकालय ने 'हरिराय वांग मुक्तावली' नाम से दो भागों में ग्रंथ छापा है जिसमें इनके रचे हुए 155 ग्रंथों का समावेश किया गया है ।<sup>130</sup>

सन् 1669 ई० में औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता की नीति अपना ली । उत्तर भारत के मंदिर तोड़े जाने लगे । मथुरा का प्रसिद्ध केशवदेव मंदिर ध्वस्त कर दिया गया । गोकुल और गोकर्ण पर भी लूटपाट शुरू हो गई । ऐसे में वल्लभ सम्प्रदाय के तत्कालीन महानुभावों ने गोकुल गोकर्ण के अपने स्थायी आवास का परित्याग करना ही श्रेयस्कर समझा । वे अपने सेव्य-स्वरूप और साम्प्रदायिक ग्रंथों को लेकर आसपास के हिन्दू राज्यों में चले गए । गो० हरिराय ने अपने सेव्य स्वरूप कट्ठलनाथ जी को मेवाड़ के खमनोर ग्राम में प्रतिष्ठित किया । ब्रज से दूर खमनोर गांव में हरिराय जी के जीवन के अंतिम 45 वर्ष बीते । ब्रज से दूर रहने की पीड़ा 'बड़े शिक्षा पत्र' के कई श्लोकों तथा अन्य ग्रंथों में व्यक्त हुई है । हरिराय जी के तिरोधान के बाद कट्ठलनाथ जी के स्वरूप को एक विशाल मंदिर का निर्माण करनाथद्वारा में फरा दिया गया । यह मंदिर आज भी श्रीनाथ जी के मंदिर के एक मार्ग प्रीतमपोल के पास अवस्थित है ।<sup>131</sup>

हरिराय जी के कृतित्व पर एक स्वतंत्र शोध की आवश्यकता बनी हुई है ।

### बल्लभ-कुल के कुछ चर्चित प्रसंग

बल्लभ संप्रदाय का परकीर्ण विकास उतार-चढ़ावों से भरा हुआ है । सातों पीठों में प्रत्येक पीठ की अपनी कहानी है जो विवादों, लांछनों और मुकदमों से अछूती नहीं है । प्रत्येक गद्दी का इतिहास विस्तृत एवं स्वतंत्र अध्ययन द्वारा ही समझा जा सकता है । यहाँ हम कुछ प्रसंगों का उल्लेख भर करके अध्याय समाप्त करते हैं :

### अन्याश्रय प्रसंग

तीसरे अध्याय में हमने गुसाईं विठ्ठलनाथ के एक कथन की चर्चा करते हुए पुष्टिमार्ग के सत्ता तंत्र का जायजा लिया था । गुसाईं जी का कहना था - 'अन्याश्रय की गंध भी गरदन काट देती है - अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते' । इसके प्रतिवाद में यह कहा जा सकता है कि मात्र सिद्धांत कथनों के आधार पर किसी धर्म-मत का मूल्यांकन कर देना उचित नहीं है । स्मृतियों में दी गई व्यवस्थाओं के संदर्भ में समकालीन हिंदूवादी इसी तर्क-पद्धति से बचाव करते हैं ।

अन्याश्रय के परिणामों की विस्तृत चर्चा हमने हरिराय के शिष्यापत्रों का उल्लेख करते हुए उक्त अध्याय में की थी । हमने यह कहना चाहा था कि ऐसी सत्त व्यवस्था पुष्टिमार्गी सेवकों को अन्य संप्रदायों के आकर्षण से बचाने के लिए की गई थी । प्रस्तुत प्रसंग का संबंध किसी पुष्टिमार्गी सेवक से नहीं, खुद एक पुष्टिमार्गी आचार्य से है, यह प्रसंग सिद्धांत कथनों की व्यावहारिक परिणति की एक मिसाल है ।



गुसाईं विट्ठलनाथ के पुत्र बालकृष्ण जी तृतीय गृहाधिपति थे । बालकृष्ण जी के ज्येष्ठ पुत्र द्वारकेश जी थे और द्वारकेश जी के पहले पुत्र गिरिधर जी महाराज थे । संप्रदाय में गद्दी पर ज्येष्ठ पुत्रों का ही अधिकार बनता है । गिरिधरजी महाराज की दो संतानें थीं - एक पुत्र और एक पुत्री । पुत्र का नाम द्वारकानाथ जी था और पुत्री का गंगा बेटी जी ।

गिरिधर जी महाराज की इच्छा अपने एकमात्र पुत्र द्वारकानाथ जी को खूब पढ़ा-लिखाकर विद्वान बनाने की थी । इस उद्देश्य से उन्होंने द्वारकानाथ जी को काशी भेजा । अपनी विशेष विद्याभिरुचि के कारण द्वारकानाथ जी को शास्त्र पारंगत होने में मुश्किल नहीं आई । संप्रदाय में मशहूर है कि दिग्विजयी पंडित बनने के लिए द्वारकानाथ जी ने सरस्वती की आराधना की और निश्चित सफलता के लिए अपनी जीभ पर सरस्वती मंत्र भी लिखवाया । तभी से इनका नाम द्वारकानाथ जी 'सरस्वती मंत्र वाले' पड़ गया । वेदुष्य प्राप्ति के लिए उपासना पूर्वक इस प्रकार का अनुष्ठान पुष्टि संप्रदाय में सर्वप्रथम था ।

पुष्टि-साधना छोड़कर ज्ञान की साधना करने के कारण द्वारकानाथ जी संप्रदाय में चर्चित हो चले थे । काशी में कई वर्ष रहने के बाद सन् 1655 के लगभग ये अपने पिता के पास गोकुल आए । यहां द्वारकानाथ जी को उनके 'विचलन' के लिए ढण्ड देने की तैयारी हो चुकी थी । द्वारकानाथ जी जब अपने ठाकुर जी की सेवा में जाने को उद्यत हुए तो उन्हें रोक दिया गया । कंठमणि शास्त्री लिखते हैं : 'उन्से श्रीप्रभु ने स्वप्न में कहा कि तुमने मेरा आश्रय और विश्वास छोड़कर सरस्वती देवी का अन्याश्रय किया है, अतः ऐसा मनुष्य हमारी सेवा का अधिकारी नहीं हो सकता । इसी प्रकार का स्वप्न इनके पिता गिरिधरलाल जी को भी दिसलाई दिया ।'<sup>132</sup>

उपलब्ध वृत्तान्त की हानबीन करने पर ऐसा लगता है कि अन्याश्रयी द्वारकानाथ जी को प्राण-त्याग के लिए विवश किया गया था ।

संप्रदायी विद्वान कंठमणि शास्त्री का कहना है, "उन्होंने वैष्णवता के लिए सर्वथा निषिद्ध अपने किए हुए इस कार्य पर बड़ा पश्चाताप किया, और अन्न-जल खौड़ते हुए भगवत्सेवा विमुख देह का मोह त्याग किया ।<sup>133</sup> प्रसंग की भयावहता कम करने के लिए शास्त्री जी यह कहते हैं कि द्वारका नाथ जी 'ब्रज के किसी अज्ञात स्थान में' भगवद् भजन के लिए चले गए ।

पुष्टि संप्रदायी विद्वान कंठमणिशास्त्री का उद्बोधन है :  
 "गिरिधरलाल जी महाराज ने इस घटना में श्री प्रभु की इच्छा को प्रानता देकर ही स्वकीय पुत्र का मोह-ममत्व त्याग दिया, और जनता के सम्मुख एक उदाहरण स्थापित कर दिया कि - वैष्णवता के अनुसार अन्याश्रय करना सबसे बड़ा अपराध है, और उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए वैष्णवों को सन्नद्ध रहना चाहिए ।"<sup>13</sup>

### गद्दी के फगड़े में औरंगजेब

एक ऐश्वर्यशाली और वैभव की सतत् संभावनाओं से भरी संप्रदाय की गद्दी पर अधिकार करने की इच्छा स्वाभाविक है । पुष्टि संप्रदाय की एक गद्दी इसी तरह की इच्छा पूर्ति के चलते बनी है । इस वाक्य का संबंध उक्त तृतीय पीठ से है ।

हमने देखा कि तृतीय पीठ के गृहाधिपति गिरिधरलाल जी महाराज के एकमात्र पुत्र द्वारिकानाथ को अन्याश्रय के अपराध में प्राण त्याग के लिए क्विश होना पड़ा । द्वारिकानाथ जी का विवाह हो चुका था पर उन्होंने अभी गृहस्थ धर्म शुरू नहीं किया था । इसलिए, इनकी पत्नी जानकी निःसंतान ही थी ।

तृतीय पीठ की परंपरा बनी रहे, इसके लिए गिरिधरलाल जी ने गोद लेने का क्वार किया । तृतीय पीठ के प्रथम गृहाधिपति बालकृष्ण जी के द्वितीय पुत्र ब्रजनाथ जी का वंश समाप्त हो गया था । तृतीय और चतुर्थ पुत्रों के वंश चल रहे थे । अतः नियमानुसार गिरिधर जी महाराज

ने बालकृष्ण जी के तृतीय पुत्र के पौत्र ब्रजभूषण जी को अपना दत्तक पुत्र बनाया । इस समय (सन् 1660 ई०) ब्रजभूषण जी की आयु 17 वर्ष की थी । गिरिधरलाल जी ने दत्तक-पत्र तैयार करके अपनी सारी संपत्ति ब्रजभूषण जी के नाम कर दी । ब्रजभूषण जी अभी अवयस्क थे । अतः उन्होंने पुत्री गंगा बेटी और पुत्रवधू जानकी बहू जी को उनका अभिभावक नियुक्त कर दिया । सन् 1661-62 ई० के लगभग गिरिधरलाल जी महाराज का देहावसान हो गया ।

बालकृष्ण जी के चतुर्थ पुत्र पीतांबर जी के पौत्र और श्यामलजी के पुत्र ब्रजराय (जन्म सन् 1625 ई०) एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे । वे (दत्तक पुत्र) ब्रजभूषण जी के काका लगते थे । उन्होंने ब्रजभूषण जी को तृतीय गृह का अधिकार मिलने पर आपत्ति उठायी । गोकुल आकर उन्होंने गंगा बेटी और जानकी बहू जी से मिलकर उत्तराधिकारियों में बँटने का तर्क देकर इस पीठ पर अपना अधिकार बताया । इस मुद्दे को सुलझाने के लिए जाति के पंचों की बैठक हुई । गंगा बेटी ने अपने पिताजी का लिखा हुआ गोदनामा पंचों के सामने रखा । पंचों का निर्णय ब्रजभूषण के पक्ष में रहा और ब्रजराय को शांत हो जाना पड़ा ।

ब्रजराय जी की महत्वाकांक्षा ने एक बार फिर सिर उठाया । ब्रजराय जी अपने अधिकार के लिए फरियाद करने बादशाह औरंगजेब के हजलास में आगरा जा पहुँचे । इस कारण, अपना पक्ष प्रस्तुत करने गंगा बेटी को भी ब्रजभूषण को साथ लेकर आगरा जाना पड़ा । सरकारी न्यायालय में दोनों पक्षों ने अपना-अपना दावा प्रस्तुत किया । दोनों दावों पर विचार करने के बाद ब्रजभूषण जी के पक्ष में निर्णय किया गया । ब्रजराय जी मुकदमा हार गए । उन्हें विवश होकर ब्रजभूषण जी के प्रति फारिगुस्ती लिख देनी पड़ी ।<sup>135</sup>

आगरा से मुकदमा जीत जाने पर गंगाबेटी और ब्रजभूषण जी गोकुल लौट आए और निश्चित होकर द्वारकाधीश की सेवा करने लगे ।

ब्रजराय जी शांत बैठने वाले नहीं थे । एक रात जब सब लोग बेखबर सो रहे थे द्वारकाधीश मंदिर पर डाका पड़ा । सौ-डैढ़ सौ शस्त्र-धारियों ने मंदिर की अधिकांश संपत्ति लूट ली और वाप्सी में द्वारकाधीश बालकृष्ण जी के स्वरूपों के साथ मंदिर में रखी महाप्रभु जी की चरण पादुका भी लेते गए ।

प्रातः काल मालूम हुआ कि यह डाका महावन के लठित ब्राह्मणों ने ब्रजराय जी के कहने पर डाला था । दो-एक दिन में यह खबर भी मिली कि ब्रजराय जी द्वारकाधीश के स्वरूप को लेकर आगरा पहुंच गए हैं और वहीं रह रहे हैं ।

पता चलने पर गंगा बेटी आगरा पहुंची । औरंगजेब उन दिनों किसी अभियान के सिलसिले में आगरा शहर से बाहर था । गंगा बेटी ने बादशाह की बेगम से सारी विपत्ति कही । उन्होंने सरकार से ठाकुरजी का स्वरूप वापस दिलवाने की मांग की । बेगम ने अपने मातहतों को हुक्म देकर ब्रजराय को पकड़वाया और उनसे द्वारकाधीश तथा अन्य स्वरूपों के साथ थोड़ी बहुत संपत्ति गंगा बेटी को वापस दिलवा दी । गंगा बेटी गोकुल वापस चली आई । स्वरूप की पुनर्प्राप्ति पर द्वारकाधीश का पाटोत्सव संवत् 1720 आषाढ शुक्ल 5 को मनाया गया । तब से प्रतिवर्ष इस पाटोत्सव को मनाया जाने लगा ।

गोकुल में रहते हुए गंगा बेटी और ब्रजभूषण जी निश्चित नहीं रह सके । आशंका बलवती थी कि ब्रज राय जी पता नहीं कब कैसे आक्रमण कर दें । इसलिए, विश्वासपात्र लोगों से मशविरा करके द्वारकाधीश को किसी सुरक्षित जगह पर पधराने का निश्चय किया गया । इस गद्दी के कई सेवक गुजरात में थे । इन सेवकों में से कई अत्यंत धनाढ्य सेठ-साहूकार थे । इन्हीं में से राजनगर (संप्रदाय में अहमदाबाद इसी नाम से जाना जाता है ।) के एक सेठ के यहां द्वारकाधीश जी पधराये गए । परिजनों के साथ ब्रजभूषण जी गुप्त रूप से यहां रह कर ठाकुर जी की सेवा करने लगे ।

आगरा में ब्रजराय जी को सूचना मिली कि द्वारकाधीश को लेकर ब्रजभूषण जी गंगा बेट्टी आदि परिजनों के साथ किसी अज्ञात स्थान पर चले गए हैं। उन्होंने पता लगाने की कोशिश की। ब्रजराय जी औरंगजेब के सेवकों में शामिल हो चुके थे। 'संप्रदाय कल्पद्रुम' के अनुसार शिकार के वक्त ब्रजराय जी औरंगजेब का बाज अपने पास रखा करते थे :

साह हुक्म पालत जु स्त श्री ब्रजराज सुजान ।  
बाज उठायहु वर्ष लों नृपति छोड़ कुल्कानि॥<sup>136</sup>

लगातार सेवा से ब्रजराय जी ने औरंगजेब को प्रसन्न कर लिया। उचित हाजिरी पर बादशाह ने इनाम देने की इच्छा व्यक्त कर उनका परिचय पूछा। ब्रजराय जी ने अपना परिचय देकर द्वारकाधीश पर अपना हक बतलाया और इनाम में वह स्वरूप वापस दिलवाने की प्रार्थना की। बादशाह को आगरा में किए हुए अपने फसले का स्मरण था। अतः उसने इस विषय में गैर इन्साफी करने से मना कर दिया और कुछ दूसरा इनाम मांगने को कहा।

ब्रजराय जी ने तब तक गंगा बेट्टी के राजनगर वाले अज्ञात ठिकाने का पता लगा लिया था। उन्होंने औरंगजेब से विनय की, 'मुझे तो देव से काम है। यदि हुजूर बड़े देव (द्वारकाधीश) मुझे नहीं दिलाना चाहते हैं तो उनके पास के छोटे देव (बालकृष्ण जी) ही दिलवाने की मेहरबानी करें।'।

ब्रजराय जी ने यह भी जोड़ा कि, 'इस समय ब्रजभूषण जी अपने परिवार के साथ गोकुल से अहमदाबाद की ओर भाग गए हैं, इसलिए वहां के हाकिम के नाम आज्ञा पत्र मिलना चाहिए।'।

आल्मगीर ने यह निवेदन स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों बाद उसने अहमदाबाद के शासक के नाम हुक्म लिखवा दिया कि - गुजरात में जहां कहीं हो, पता लगाकर ब्रजभूषण के पास के छोटेठाकुर 'बालकृष्ण जी' ब्रजराय जी को दिलवा दिये जाएं।

शाहंशाह औरंगजेब से ब्रजराय जी की निकटता संप्रदाय में उनके प्रभाव का कारण थी । अपने इसी दबदबे का प्रयोग करते हुए ब्रजराय जी ने श्रीनाथ जी की सेवा गोविंदराय जी से छीन ली थी और श्रीनाथ जी के मंदिर पर उनका कब्जा 28 दिनों तक बना रहा था ।<sup>137</sup>

सन् 1669 ई० के अंत में ब्रजराय जी अहमदाबाद पहुँचे और सरकारी हुक्मनामे के बल पर वहाँ के सूबेदार महाकत खाँ से मिलकर अपना पक्ष प्रबल कर लिया । शाही फौज के साथ ब्रजराय एक दिन द्वारकाधीश मंदिर पर जा चढ़े । सिपाहियों ने मंदिर को चारों ओर से घेर रखा था । ब्रजराय जी मंदिर में घुसे और पालना से बालकृष्ण जी के स्वरूप को उठा लिया । शाही फौज के आतंक से सब चुप रहे । ब्रजभूषण जी ने द्वारकाधीश को ही सुरक्षित पाकर संतोष कर लिया ।

ब्रजराय जी अहमदाबाद में कुछ दिन रहकर 1670 ई० में सूरत चले गए । वहाँ उन्होंने मंदिर बनवाकर बालकृष्ण जी को प्रतिष्ठित किया । सूरत पर अंग्रेजों का कब्जा काफी पहले से (सन् 1615 ई० में ही) हो चुका था । ब्रजराय जी को मंदिर के वैभव-विस्तार का पर्याप्त अक्सर मिला । उसी समय से बालकृष्ण जी की (छठी)गद्दी सूरत में प्रतिष्ठित है ।<sup>138</sup>

### महाराजा लाइब्ल केस<sup>139</sup>

-----

उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते तमाम सैद्धांतिक, व्यावहारिक प्रतिबंधों के बावजूद पुष्टिमार्गी सेवकों में, गोस्वामी आचार्यों की चारित्रिक दुर्बलताओं को लेकर, असंतोष और आलोचना के स्वर फूटने लगे थे । संप्रदाय के भीतर सक्रिय सुधारवादी गुट ने गोस्वामियों या महाराजों की गतिविधियों पर, उनकी आचरण भ्रष्टता पर उंगली उठाना शुरू कर दिया था । उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मुम्बई के सुधारवादी गुट के प्रवक्ता कसौनदास मुलजी ने महाराजों की गतिविधियों पर 'सत्य प्रकाश' नामक लेख लिखकर अभियान चलाने की कोशिश की ।

21 अक्टूबर 1860 को करसोनदास मुलजी ने एक लेख प्रकाशित करवाया ।

‘दि प्रिम्पिटिव रेलिजन आफ दि हिंदूज स्टंड द प्रेजेंट हेटरोडाक्स ओपिनियंस’ नामक इस लेख में मुलजी ने संप्रदाय के गोस्वामियों/महाराजों पर तीखा प्रहार किया । लेख में कहा गया था : ‘हिंदुओं के पुराणों और शास्त्रों में लिखा गया है कलियुग में झूठे धर्म पैदा होंगे और पाखंडी तथा विधर्मी लोग अधर्म की स्थापना करेंगे... इस क्रम में अन्य संप्रदायों के उदय के साथ वल्लभ संप्रदाय का उदय हुआ । ये सभी संप्रदाय कलियुग में पैदा हुए, इसलिए हिंदू शास्त्रों के अनुसार वे शास्त्र विरोधी ही हैं ।’

उक्त लेख में बताया गया है कि बल्लभाचार्य के पुत्र, महाराज परंपरा के संस्थापक विठ्ठलनाथ जी ने किस तरह मूल ब्रह्म संबंध मंत्र को बदल कर उसे परवर्ती महाराजों के अनुकूल बना दिया, जिसके कारण उस का पापपूर्ण उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सका । इसके चलते पुष्टिमार्गी सेवकों की पत्नियाँ और बेटियाँ महाराजों की भोग्या बन गईं । करसोनदास मुलजी ने लिखा, ‘यद्यपि कलियुग में बल्लभाचार्य के अलावा और भी बहुत से संप्रदाय बने, लेकिन अन्य किसी संप्रदाय ने इतनी बेधर्मी, चालाकी, धृष्टता, धूर्तता और कपट नहीं किया, जितनी महाराजों के संप्रदाय ने ।’

लेख छपने के साथ महीनों के बाद महाराज ने संपादक और प्रकाशक दोनों के खिलाफ मानहानि का मुकदमा दायर किया । बचाव पक्ष ने अपने को निर्दोष बताते हुए अपने आरोपों को इस तरह रखा :

1. महाराजों की धार्मिक पुस्तकों में ऐसे परिच्छेद/अंश हैं जिनसे व्यभिचारपूर्ण पूजा को बढ़ावा मिला ।
2. महाराज एक संस्था के तौर पर, व्यभिचार में लिप्त थे ।
3. इस मुकदमे का वादी, महाराजों के इस सामान्य व्यवहार का अपवाद नहीं है ।

इस मुकदमे की सुनवाई ने पूरे भारत, खास कर बम्बई प्रेसीडेंसी

का ध्यान खींचा । सुनवाई वाले दिन हजारों लोगों की भीड़ जुटती थी । भीड़ बहुधा महाराज के प्रति श्रद्धावन्त थी और इसलिए कसोनदास मुलजी को अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस के संरक्षण में रहना पड़ता था ।

मुकदमे की सुनवाई के दौरान पुष्टि संप्रदायी मंदिरों की असलियतें खुलने लगीं । संप्रदायेतर लोगों को पता चला कि महाराज के खाए हुए पान कीसुपारी अनुयायियों को प्रसाद रूप में चबाने को दी जाती है । वे महाराज के चरणामृत का पान करते हैं । इस 'स्कैंडल' को पूर्णता मिली जब एक डाक्टर ने कोर्ट में आकर बयान दिया कि उसने महाराज के यौन रोग का इलाज किया है ।

कोर्ट का आदेश पूरी तरह से महाराज के खिलाफ रहा । महाराज को इस मुकदमे का खर्च रु० 50,000 अदा करना पड़ा । अगेज जज ने अपने निर्णय में कहा कि, 'हमारे सामने धर्मशास्त्र का सवाल नहीं है, सवाल नैतिकता का... जो नैतिक रूप से गलत है, वह धर्मशास्त्रीय दृष्टि से सही हो ही नहीं सकता ।'

यह कोर्ट केस बल्लभ-संप्रदाय के लिए बहुत बड़ा आघात साबित हुआ । पुष्टिमार्गी आचार्य और सेवक दोनों के लिए यह अब भी हरा घाव ही है । ज्यादातर पुष्टि संप्रदायी पुस्तकालयों में 'महाराजा लाइब्ररी केस' नामक पुस्तक नहीं है । जिस पुस्तकालय के कैंटलाग में इस पुस्तक का उल्लेख है, वहां इसे गायब करा दिया गया है ।

'महाराजा लाइब्ररी केस' ने पुष्टिमार्गी गोस्वामियों को सार्वजनिक चर्चा का विषय बनाया । लेकिन इस संप्रदाय पर सबसे तीखा आक्रमण आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया । 'सत्यार्थ प्रकाश' में वेदवादी स्वामी जी ने लिखा, 'ये गोसाईं लोग अपने संप्रदाय को 'पुष्टि' मार्ग कहते हैं अर्थात् खाने, पीने, पुष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग किलास करने को पुष्टि मार्ग कहते हैं परंतु उनसे पूछना चाहिए कि जब बड़े दुःखदायी भग्नरादि रोगग्रस्त होकर ऐसे झींक-झींक मरते हैं



कि जिसको ये ही जानते होंगे । सच पूछी तो पुष्टिमार्ग नहीं कुष्टिमार्ग है ।<sup>140</sup> स्वामी ब्लाटकानंद नामक किसी कृद्म नामधारी ने 'बल्लभ कुल कुल कष्ट दर्पण' तथा 'बल्लभ कुल दम्भ दर्पण' नाटक लिखकर 'गोस्वामियों के दुराचरण' पर प्रकाश डाला ।<sup>141</sup> बल्लभ संप्रदाय के लिए ये सब तिल-मिलाहट भरी परिघटनाएं रहीं । हिन्दी नवजागरण के पुरोधा और पुष्टिमार्गी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संप्रदाय को चैताते हुए अपील की थी : 'यद्यपि वैष्णव धर्म भारतवर्ष का प्रकृत धर्म है, इस हेतु उसकी ओर लोगों की रुचि होगी, किंतु उसमें अनेक संस्कारों की अतिशय आवश्यकता है । प्रथम तो गोस्वामीगण अपना रजोगुणी-तमोगुणी स्वभाव छोड़ें तब काम चलेगा । गुरु लोगों में एक तो विषा ही नहीं होती, जिसके न होने से शील, नम्रता आदि उनमें कुछ नहीं होते । दूसरे, या तो वे अति हसे क्रोधी होते हैं या अति विलासलालस होकर स्त्रियों की भांति सदा दर्पण ही देखा करते हैं । अब वह सब स्वभाव उनको छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इस उन्नीसवीं शताब्दी में वह श्रद्धा जाइय अब बाकी नहीं है । अब कुर्मी गुरु का भी चरणामृत लिया जाय वह दिन कम्पार पर गए । जितने बूढ़े लोग अभी तक जीते हैं उन्हीं के शील संकोच से प्राचीन धर्म इतना भी चल रहा है, बीस-पचीस वर्ष पीछे फिर कुछ नहीं है, अब तो गुरु गोसांई का चरित्र ऐसा होना चाहिए कि जिसको देख सुन कर लोगों में श्रद्धा से स्वयं चित्त आकृष्ट हो । स्त्री जनों का मंदिर से सहवास निवृत्त किया जाय केवल इतना ही नहीं, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की केलिकथा जो अति रहस्य होने पर भी बहुत परिमाण से जगत में प्रचलित है, वह केवल अंतरंग उपासकों पर छोड़ दी जाय, उनके माहात्म्य मत, विशद चरित्र का महत्व यथार्थ रूप से व्याख्या करके सब को समझाया जाय । रास क्या है, गोपी कौन है, यह सब रूपक अलंकार स्पष्ट करके श्रुति सम्मत उनका ज्ञान वैराग्य मुक्तिबोधक अर्थ किया जाय ।'<sup>142</sup>

पुष्टि संप्रदाय ने एक शताब्दी पहले स्वमार्गीय भारतेन्दु की सलाह पर कितना ध्यान दिया, यह सतत शोध का विषय है ।

संदर्भ  
---

1. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आ० रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० स०, वाराणसी, 2049 वि०, पृ० 86
2. 'अष्टछाप परिचय', प्रभुदयाल मीतल, मथुरा, 2006 वि०, पृ० 7
3. वही
4. वही, पृ० 8
5. 'संप्रदाय कल्पद्रुम'
6. 'अष्टछाप परिचय', पृ० 9
7. 'कांकरोली का इतिहास', कंठमणि शास्त्री, पृ० 51
8. 'मिथ, सैंट्स एंड लीजेंड्स इन मेडिक्ल इंडिया' - शारलोट वादवेल, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1996, पृ० 53
9. वही
10. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 47
11. वही, पृ० 47-48 । इस कथा का मूल 'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' में मिलता है । इस ग्रंथ को गो० हरिराय ने लिखा था । ग्रंथ के आरंभिक अंशों का अनुवाद वादवेल ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में प्रस्तुत किया है, पृ० 123-134
12. वादवेल, वही, पृ० 57
13. कंठमणि शास्त्री, वही, पृ० 48
14. वादवेल, वही, पृ० 57
15. वही, पृ० 58
16. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 9
17. वही, पृ० 10
18. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', पृ० 105-6
19. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 11
20. कांकरोली का इतिहास, पृ० 56
21. वही, पृ० 57
22. मीतल, वही, पृ० 25

23. चौरासी वैष्णव, पृ० 318
24. वही, पृ० 320
25. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 18
26. वही
27. वही
28. वही, पृ० 26
29. वही, पृ० 27 - मीतल जी ने ये निष्कर्ष 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', लीला भाक्ता वाली (गो० हरिराय कृत भावप्रकाश) से निकाले हैं। यह वार्ता संस्करण अग्रवाल प्रेस, मथुरा से छपा था। अभी तक यह संस्करण हमारे देखने में नहीं आया है।
30. मीतल द्वारा उद्धृत, पूर्वोक्त, पृ० 21
31. चौरासी वैष्णव, पृ० 325-27
32. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 29
33. वही, पृ० 30
34. वही, पृ० 31
35. 'गोसांई विट्ठलनाथ स्मृति ग्रंथ', सम्पादक - भगवतीप्रसाद देवपुरा, साहित्य मंडल, नाथद्वारा, सन् 1993, पृ० 64
36. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 32
37. कांकरोली का इतिहास, पृ० 99
38. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 38
39. दो सौ बावन, पृ० 446
40. वही, पृ० 372
41. वही, पृ० 245-6
42. वही, पृ० 73-74
43. वही, पृ० 78
44. वही, पृ० 80
45. वही, पृ० 171
46. वही, पृ० 160
47. वही, पृ० 161

48. वही, पृ० 165 - इस प्रसंग के सभी उद्धरण वैष्णव वार्ता संख्या 63 से हैं ।
49. वही, पृ० 98
50. वही, पृ० 364
51. वही, पृ० 350-51
52. चौरासी वैष्णवन, पृ० 101
53. वही, पृ० 204
54. वही, पृ० 209
55. वही, पृ० 209
56. दो सौ बावन, पृ० 250
57. वही, पृ० 227
58. वही, पृ० 226
59. वही, पृ० 238-39
60. वही, पृ० 292
61. इन आठ राजाओं की वार्ताएँ दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता के पृष्ठ 138, 275, 298, 341, 354, 364, 377, 387, 403 पर लिखी गई हैं ।
62. वही, पृ० 101
63. वही, पृ० 191
64. वही, पृ० 280
65. वही, पृ० 384
66. वही, पृ० 482
67. वही, पृ० 492
68. वही, पृ० 130
69. वही, पृ० 131
70. वही, पृ० 449
71. वही, पृ० 131
72. वही, पृ० 131-33

73. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 104
74. वही, पृ० 105-106
75. हीरक जयंती ग्रंथ, साहित्य मंडल, नाथद्वारा, पृ० 226 ;  
 इस शोध-लेख का शीर्षक है - 'तिलकायतों का भू-स्वामित्व व  
 शासनाधिकार' - लेखक डा० श्रीकृष्ण जुगनू
76. वही, पृ० 226
77. वही, पृ० 227
78. वही, पृ० 229
79. 'भाव सिंधु' गौ० गोकुलनाथ, पृ० 289 - 304, 'ताजबीबी की  
 वार्ता' । ताजबीबी ने कवित्त, सवैये, कीर्तन भी बनाए हैं ।  
 विशेष विवरण के लिए 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ',  
 लेखिका डा० सावित्री सिन्हा, एम. ए., पी-स्च. डी., हिन्दी  
 अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की ओर से  
 आत्माराम एंड संस, दिल्ली-6 द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण  
 1953 ई० देखा जा सकता है । 'भाव सिंधु' में भी ताज की कुछ  
 रचनाएँ संकलित हैं ।
80. राग, भोग और शृंगार का यह विवरण प्रभुदयाल मीतल द्वारा  
 लिखित 'सूर-सर्वस्व' ग्रंथ से उद्धृत किया गया है । पृ० 342-350
81. वही, पृ० 343-345
82. 'वार्ता साहित्य : एक वृहत् अध्ययन' (पृ० 303-305) में डा०  
 हरिहरनाथ टंडन ने कृष्ण भोग का एक पद उद्धृत किया है । इस  
 पद के रचयिता गुसाई जी के सेवक माणिक्यंद क्षत्री (अनुमानतः  
 1595 वि० सं० से 1640 तक) हैं । टंडन जी का अनुमान है  
 कि यह पद संवत् 1640 में गोकुल में हुए कृष्ण भोग का है क्योंकि  
 तभी संप्रदाय के नवनिधि इकट्ठे हुए थे -

माणिक्यंद रचित कृष्ण भोग का पद

महामहोत्सव होत श्री विट्ठलनाथ के ।

प्रथम यथा मति बरनिहों हो वल्लभ विट्ठल रूप ।

भूतल प्रगटे जायके हो श्री गोकुल के भूप ।

पुष्टिमार्ग रस रूप सिंधु को प्रगट करत जग सौय ।  
 अतुल प्रताप तेज करुणामय बरन सकत कवि कोय ।  
 श्री शुभकचन प्रगट करिवै को करत कथा रसगान ।  
 श्यामसुंदर वृषभान कुंवरी को वश कीन्हें मनमान ।  
 श्रुति मयादिता प्रगट रस सेवा भूतल कीन्हें आय ।  
 प्रथम विवेक धर्यो निज आश्रय महापदारथ पाय ।  
 भक्ति भाव प्रीतम प्यारे को निज निकुंज सुख धाम ।  
 सो सब लीला प्रकट दिखाई भक्तन मन अभिराम ।  
 श्री भागवत नवनीत नंद गृह प्रकट कृष्ण अक्तार ।  
 ताकी सेवा नित्य विविध विधि आप करत श्रुतिसार  
 दिन के बस द्वादस मास बीच उत्सव अति आनन्द ।  
 कृष्ण कथा रस पान करावत पूरण परमानन्द ।  
 श्री वृषभान सदन की लीला प्रगट करी निज गेह ।  
 हृष्ण भोग विविध विधि कीन्हों भक्ति भाव सुख स्नेह ।  
 नेदादिक को न्योति बुलाए बरसाने वृषभान ।  
 उठिके वेग आय आदर करि बहुत कर्यो सनमान ।  
 प्रथम फुल्ले लगाय अरगजा अंग ही उबटि नह्वाये ।  
 विविध वस्त्र मणि जटित अमोलिक आभूषण पहिराये ।  
 मृगमद केसर भुवन लिपाए कुंकुम जल सों सींच ।  
 गज मोतिन सों चौक पुराए धरत साधिये बीच ।  
 कंचन कलस धरै जमुना जल पीत बसन बहु भांति ।  
 कनक पटा बैठात सबन को करि भोजन की पांति ।  
 मधु मैवा पकवान मिठाई षटरस धरे बनाय ।  
 कंचन मणि जटित कटोरा धर्यो जु थार सजाय ।  
 कटु अम्ल, तिक्त, मधुर रस लवण कसाय अनेक ।  
 भक्ष, भोज्य, और चुस्य, लेय विधिधरे जु आन कितेक ।

दधि ओदन घृत दूध संधाने कीन्हें नाना भाति ।  
 बड़ी बरा बेसन बहु विधि के मनो उदय करत रविकान्त ।  
 कंद मूल फल पत्र साग ये अगनित ही सब कीन्हें ।  
 करि घृत पय पक्ष न्यार-न्यारे लाल अतिकर दीन्हें ।  
 सौवा बासींधी और मिश्री दै मासन में सानी ।  
 अग्नि पक्व बहु किये सलौने लैत परम रुचि मानी ।  
 गुंजा मठरी सुरमा साजा लहुआ बहुविधि कीने ।  
 क्वरी आदि भुजेना तल के पापर अति सरसीने ।  
 हस परस्पर खात खबाक्त प्रेम प्रीति रस भीने ।  
 बहु विधि व्यंजन कहा बखानों वरनिन सक्त कवि हीने ।  
 सबकों साथ बैठाय आप ठां नवनिधि दरस दिखार ।  
 बहौ निज सुख दै निज दासन कों महा पदारथ पार ।  
 जमना जल अचक्क करवायो पुनि बीड़ी दीन्हीं ।  
 करत आरती होत मन आनन्द फिर न्योहावर कीन्हीं ।  
 करत बिदा नंदादिक कों अति सुख चरण नमावत सीस ।  
 माणिक्यन्द प्रभु सदा बिराजौ जीवौ कोटि बरीस ।

83. 'सूर-सर्वस्व', प्रभुदयाल मीतल, पृ० 350
84. 'अष्टकाप परिचय', प्रभुदयाल मीतल, पृ० 36
85. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 100
86. 'भाव सिंधु', पृ० 259
87. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 101
88. 'भावसिंधु', पृ० 260
89. वही, पृ० 262
90. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 36
91. वही
92. वही, पृ० 36-37
93. वही, पृ० 37

94. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 108
95. वही
96. वही
97. वही, पृ० 109
98. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 39
99. गोसांई विट्ठलनाथ स्मृति ग्रंथ, सं० भगवती प्रसाद देवपुरा,  
साहित्य मंडल, नाथद्वारा, प्रथमावृत्ति 1993, पृ० 91
100. वही
101. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 98
102. 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता', पृ० 107-8
103. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 106
104. वही
105. वही, पृ० 110
106. वही, पृ० 111
107. मीतल, पूर्वोक्त, पृ० 43
108. 'वार्ता साहित्य : वृहत् अध्ययन', हरिहरनाथ टंडन, पृ० 379
109. गो० वि० स्मृ० ग्रंथ, पृ० 86
110. टंडन, पूर्वोक्त, पृ० 379
111. वही
112. वही, पृ० 380
113. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 124
114. वही
115. टंडन, पूर्वोक्त, पृ० 382
116. वही, पृ० 383
117. वही, पृ० 384
118. वही
119. वही, पृ० 393



120. 'संप्रदाय कल्पद्रुम', पृ० 140 टहन द्वारा उद्धृत, पृ० 387
121. गोस्वामी गोकुलनाथ स्मृति ग्रंथ, साहित्य मंडल नाथद्वारा,  
प्रकाशनवर्ष - 1996 ई०, पृ० 30
122. वही, पृ० 33
123. टहन, पूर्वोक्त, पृ० 394
124. 'पुष्टिमार्गीय कचनामृत साहित्य' (शोध ग्रंथ) - डा० शकुंतला  
शर्मा, प्रकाशक, कृष्ण चरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली-2,  
प्र० संस्करण - 1977, पृ० 293-333
125. टहन, पूर्वोक्त, पृ० 394
126. 'संप्रदाय कल्पद्रुम', पृ० 90-93
127. टहन, पूर्वोक्त, पृ० 396
128. वही
129. अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय, दीनदयालु गुप्त, पृ० 80
130. गोस्वामी हरिराय स्मृति ग्रंथ, संपादक भगवती प्रसाद देवपुरा,  
साहित्य मंडल, नाथद्वारा, 1995 ई०, पृ० 39
131. वही, पृ० 24
132. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 128
133. वही
134. वही
135. यह फारिगुखती 'कांकरोली का इतिहास' में पृ० 136 पर  
दी गई है ।
136. 'संप्रदाय कल्पद्रुम', पृ० 124
137. 'कांकरोली का इतिहास', पृ० 143
138. वही, पृ० 144
139. विवेच्य केस से संबंधित सभी साक्ष्य, उद्धरण और सूचनाएं जरगन  
लट के लेख 'फ़ाम कृष्णालीला दू रामराज्य' से ली गई हैं ।  
जरगन लट का यह लेख कसुधा डालमिया द्वारा संपादित और  
सेज पब्लिकेशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'रिप्रजेंटिंग हिंदूइज्म' (1996)  
नामक पुस्तक में शामिल है ।

140. 'सत्यार्थ प्रकाश', दयानंद सरस्वती, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट  
दिल्ली-6, 43 वां संस्करण, 1995 ई०, पृ० 253
141. ये दोनों नाटक यूनियन प्रेस, इलाहाबाद से वर्ष 1907 ई०  
में प्रकाशित हुए थे ।
142. हीरक जयंती ग्रंथ में संकलित 'वैष्णवता और भारतवर्ष' शीर्षक  
लेख, साहित्य मंडल, नाथद्वारा संपादक - भगवती प्रसाद देवपुरा,  
1997, पृ० 169-70

---

भक्ति संवेदना भारतीय जनमानस में एक संश्लिष्ट और जीवंत उपस्थिति है । भक्ति आंदोलन को मुक्तिकारी और क्वीस्व विरोधी माना गया । आलोचकों के बीच उसके लोकमंगलकारी स्वरूप पर गंभीर विचार-विमर्श हुए । तमाम असहमतियों के बावजूद, आलोचकों में भक्ति की

लोकग्राह्यता पर आम सहमति रही । पुनः, भक्ति की इस लोक ग्राह्यता की खानबीन शुरू हुई । प्रस्तुत शोध-प्रबंध को उसी कड़ी में देखा जाना चाहिए । इसमें सगुण भक्ति धारा के सर्वाधिक बड़े संप्रदायों में से एक पुष्टिमार्ग का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्ययन से भक्ति आंदोलन की लोक ग्राह्यता की प्रकृति और परिणतियों पर नए कोण से रोशनी पड़ती है । पुष्टि मार्ग की लोक व्याप्ति मध्य काल के अन्य संप्रदायों की तुलना में कुछ ज्यादा ही थी । स्वयं आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक बल्लभाचार्य के बारे में लिखा था, 'विक्रम की 15 वीं और 16 वीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का जो आंदोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक रहा उसके श्री बल्लभाचार्य जी प्रधान प्रवर्तकों में से थे ।' बल्लभाचार्य के योग्य उत्तराधिकारी गुसाईं विठ्ठल नाथ ने पुष्टि मार्ग का पर्याप्त विस्तार किया और उसे राग, भोग तथा शृंगार की त्रयी का रूप देकर अत्यंत वैभव सम्पन्न बनाया ।

पांच अध्यायों में विभक्त इस शोध-प्रबंध का सार-संक्षेप इस तरह पेश किया जा सकता है :

अध्याय एक में पुष्टि मार्ग को केन्द्र में रखते हुए मध्यकालीन सगुण भक्ति आन्दोलन के उदय की व्याख्या है । आचार्य शुक्ल से लेकर हमारे वक्त के साहित्येतिहासकार प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी तक भक्ति आन्दोलन के उदय के संदर्भ में इस्लामी राजसत्ता की नकारात्मक भूमिका पर प्रायः मतैक्य दिखता है । मुस्लिम शासकों को हिन्दू धर्म-विनाशक के रूप में ही चित्रित किए जाने की प्रवृत्ति रही है जबकि वास्तविकता ऐसी थी नहीं । मध्यकाल में इस्लामी राजसत्ता की भूमिका सिर्फ़ इकतरफा,

सपाट और नकारात्मक न होकर जटिल तथा बहुआयामी रही है । बल्लभाचार्य का उद्घोष कि देश 'म्लेच्छों' से आक्रांत है, सचाई का मात्र <sup>स्व</sup>पहलू है । स्वयं बल्लभाचार्य को आक्रांत 'म्लेच्छों' से सहयोग मिलता रहा । उनके पुत्र विट्ठलनाथ की तो इस्लामी राजसत्ता में बड़ी गहरी पैठ थी । अकबर के विश्वास-मात्र राजा मानसिंह, राजा बीरबल और टोडरमल बल्लभ सम्प्रदाय के संरक्षक थे । सिर्फ पुष्टिमार्ग ही नहीं, मध्यकाल के दूसरे धर्म सम्प्रदायों की मुस्लिम शासन से पर्याप्त निकटता थी ।

फिर बल्लभाचार्य की उक्त पीढ़ा का ऐतिहासिक संदर्भ क्या है ? बल्लभाचार्य को एक समय विशेष में 'म्लेच्छ' आक्रांता ही क्यों दिखाई पड़े ? बल्लभाचार्य के करीब तीन सौ साल पहले भारत में मुस्लिम आक्रमण और इस्लामी शासन की शुरुआत हो चुकी थी । इस बीच किसी धर्माचार्य को देश के आक्रांत होने की घोषणा करके धर्म रक्षा में जोर-शोर से लग जाना चाहिए था । पर ऐसा नहीं हुआ । इतिहास के साक्ष्य से देखें तो इस अवधि में धर्माचार्यों की चुप्पी रहस्य समझा जा सकता है । यह तथ्य सदेह से परे है कि राजसत्ता से ब्राह्मणों का निकट का रिश्ता शुरू से रहा है । शासन सत्ता कोई संभाले ब्राह्मण वर्ग उनसे सुमधुर संपर्क प्रायः कायम ही कर लेते थे । यही वजह है कि मुस्लिम शासन सत्ता की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में ही ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्राप्त हो गए थे । हिन्दू जनता को जबकि जजिया समेत अनेक कर देने पड़ते थे, ब्राह्मणों को जजिया कर से मुक्त रखा गया था । कट्टर मुस्लिम फिरोज़ शाह तुगलक जब गद्दी पर बैठा तब उसे यह बात मालूम पड़ी कि काफिरों के अगुआ ब्राह्मणों को जजिया कर से मुक्त रखा गया है । उसने इसबारे में शरीअत की जानकारी रखने वालों से पूछताछ की । ब्राह्मणों को छूट देने का प्रावधान किसी धर्म ग्रंथ में न मिला । नतीजन ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया गया । यह व्यवस्था कायम रखी परवर्ती शासक सिकंदर लोदी ने । ब्राह्मणों के लिए यह हताशा का समय था । बल्लभाचार्य को कहना पड़ा कि ऐसे शासन में 'सत पुरुषों' को पीड़ा

दी जा रही है - 'सत्पीड़ा व्यस्य लोकेषु'। भारतीय समाज में सत् पुरुष कौन है, बताने की जरूरत नहीं। इस्लामी शासन से हिन्दू धर्म इसलिए सतरे में पड़ा नजर आया।

बल्लभाचार्य द्वारा निरूपित संकट का एक अन्य कारण भी था। उस समय के निर्गुण पंथ ब्राह्मण वर्गस्व को चुनौती दे रहे थे। इन्हें न वेद की सर्वोपरिता स्वीकार थी और न चार वर्णों वाली व्यवस्थानी। कबीर, दादू, रैदास की लोकस्वीकृति का दायरा क्रमशः बढ़ता जा रहा था। बल्लभाचार्य के अभियान का एक उद्देश्य इन पर भी रोक लगाना था। उन्होंने वेद बाह्य प्रयासों को पासण्ड बताया। हालांकि, यह बात जरूर हुई कि निर्गुण पंथों पर रोक लगाने के लिए आचार्य बल्लभ को अपना संप्रदाय लबीला बनाना पड़ा। उन्होंने उपासना के क्षेत्र में सभी वर्णों, जातियों, धर्मों को समान अधिकार दिया।

शासन सत्ता से विप्रों की निकटता फिर कायम हुई। गुसाईं विट्ठलनाथ को मुगल शासकों ने फरमान जारी करके प्याप्त जमीन और अधिकार प्रदान किए। सिर्फ पुष्टिमार्ग ही नहीं अन्य संप्रदायों को भी माफ़ी में ज़मीन दी गई। अकबर इस मामले में सर्वाधिक उदार रहा। ब्राह्मणों ने अब अकबर को अवतारी पुरुष घोषित किया। 'विष्णु सत्सनाम' की तर्ज पर अकबर के हजार नाम बनाए। ब्राह्मणों की प्रेरणा से ही अकबर को आदेश जारी करना पड़ा कि छोटी जातियों को विद्या न पढ़ाई जाए क्योंकि उनके विद्यावान होने से सामाजिक उपद्रव की आशंका रहती है।

प्रस्तुत अध्याय से यह स्पष्ट होता है कि - 'भक्तन को कहा सीकरी सौ काम' का आशय यह नहीं कि राजसत्ता से पुष्टिमार्गी भक्तों का कोई संबंध ही न था। स्वयं अकबर की व्यक्तिगत मुलाकात कुंभनदास, सूरदास, नंददास और गोविन्ददास से हुई थी। अकबर ने गुसाईं विट्ठलनाथ को गोकुल की ज़मीन प्रदान की थी। जहांगीर, शाहजहाँ, दारा शिकोह

ने भी फरमान जारी करके पुष्टि मार्ग को लाभ पहुंचाया था । पुष्टि संप्रदाय के घरेलू भगड़े निपटाने में राजसत्ता से बराबर सहयोग लिया जाता था ।

दूसरे अध्याय में मध्यकाल के अन्य धर्म संप्रदायों के साथ बल्लभ संप्रदाय के रिश्तों की हानबीन की गई है । राजसत्ता से निकटता स्थापित करने के बाद बल्लभ संप्रदाय को समकालीन संप्रदायों के प्रति एक निश्चित रवैया अस्तित्वार करना ज़रूरी था । संप्रदाय का विस्तार पुष्टि मार्गी आचार्यों का मुख्य उद्देश्य था । इसलिए, यह स्वाभाविक ही था कि अन्य संप्रदायों को बल्लभ संप्रदाय से कमतर साबित किया जाए । पुष्टि संप्रदायी ग्रंथों में जहां भी अन्य संप्रदायों के उल्लेख हुए हैं, उन्हें हीनतर बताया गया है और उनके अनुयायियों को सलाह दी गई है कि वे एकमात्र परिपूर्ण और श्रेष्ठ बल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ले लें ।

पुष्टिमार्ग का पहला साबका मयादि मार्ग से पड़ा । मयादि मार्ग शास्त्र सम्मत आचरण का मार्ग है । यह कर्ण धर्म का पर्याय है । इसके अनुसार उपासना और मोक्ष के अधिकारी केवल दिवज हैं । देश काल और वातावरण को देखते हुए मयादि मार्ग बल्लभाचार्य को अनुकूल नहीं लगा । ब्राह्मणों की सर्वोच्चता स्वीकार करके भी पुष्टिमार्गी आचार्यों ने मयादि मार्ग से अपने को अलग बताया । भक्तों की आदर्श गोपियां हैं जो अपने आराध्य के प्रति इतनी समर्पित हैं कि वे लोक वेद और कुल की मयादि का ध्यान नहीं रखती । उनका प्रगाढ़ प्रेम उन्हें शास्त्रीय व्यवस्थाओं की चिंता करने का अवसर नहीं देता । सेवा और साधना के क्षेत्र में मयादि मार्ग में प्रतिबंध / विधि निषेध हैं जबकि पुष्टि मार्ग में 'पूर्ण स्वतंत्रता' ।

वैष्णव, शैव और शाक्त - हिंदुओं के तीन मुख्य संप्रदाय कहे जाते हैं । पुष्टि संप्रदाय के ग्रंथों में रामानंदी वैष्णव, शिव भक्त और देवीपूजक सही मार्ग - बल्लभ मार्ग से भटके हुए लोग सिद्ध किए गए हैं । रामचंद्र, शिव और देवी जी स्वयं अपने पूजकों को आदेश देती हैं कि वे आचार्य

बल्लभ या गुसाईं विट्ठलनाथ की शरण में चले जाएं ।

बल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना से पहले शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित मायावाद को परास्त किया था । विजयनगर में हुए शास्त्रार्थ में भाग लेकर बल्लभ ने वैष्णव संप्रदायों की शांकर वेदांत के ऊपर विजय पताका फहरायी थी । इस विजय के उपलक्ष्य में उन्हें 'आचार्य चूड़ामणि' की पदवी दी गई थी । राजा कृष्णादेव राय ने बल्लभाचार्य का कनकाभिषेक किया था । पुष्टि-मार्ग की स्थापना और आचार्यों के बीच उसकी स्वीकृति के लिए दो आधार ज़रूरी थे - एक, प्रस्थानत्रयी पर अपना भाष्य प्रस्तुत करना और दूसरा अद्वैतवाद को पराजित करना । बल्लभाचार्य ने ये दोनों शर्तें पूरी कीं । लेकिन ध्यान देने की बात है कि अद्वैतवाद से शुद्धाद्वैतवाद की लड़ाई दार्शनिक स्तर पर ही चल रही थी । इसलिए इससे संबंधित सारा वाद विवाद संस्कृत भाषा में हुआ था । अद्वैतवाद का शैवों और शाक्तों की तरह जन सामान्य में पसारा नहीं था । इसलिए 'भाषा' में उक्त विवाद को लाने की बहुत ज़रूरत नहीं समझी गई । हालांकि मायावाद के (कु)प्रभावों से वैष्णवों को बचाने की मुहिम ब्रजभाषा में भी चलाई गई । भ्रमर गीत लिखने का यही उद्देश्य था ।

चैतन्य महाप्रभु बल्लभाचार्य के समकालीन थे । दोनों में मुलाकातें भी हुई थीं । पुष्टिमार्गी ग्रंथ दोनों आचार्यों के बीच आत्मीय संबंध बताते हैं । लेकिन, अंततः गौडीय संप्रदाय को पुष्टिमार्ग प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता था । इसलिए, गौरांग देव के अनुयायी पुष्टिमार्गी वैष्णवों की तुलना में हीनतर निरूपित किए गए । पुष्टि मार्ग ने अपनी सेवा पद्धति को स्वाभाविक रूप से एकमात्र पद्धति माना ही पर साथ में यह भी जोड़ा कि गौडीय या अन्य संप्रदायों के अनुयायी सही राह से भटके हुए लोग हैं । राजसत्ता से जो निकटता बल्लभ संप्रदाय की बनी, चैतन्य संप्रदाय की नहीं थी । जब कृष्णादास अधिकारी ने बंगाली ब्राह्मणों को श्रीनाथ जी की सेवा से निष्कासित किया, तब दोनों संप्रदायों के बीच

प्रत्यक्ष टकराव की नीबत आ गई । लेकिन, जैसा कहा गया, शासन सत्ता से अपने संपर्कों के कारण पुष्टि मार्ग चैतन्य संप्रदाय पर भारी पड़ा ।

पुष्टि मार्ग एक सजग संप्रदाय है । सांप्रदायिक ग्रंथों में उन्हीं मतों, संप्रदायों का उल्लेख मिलता है जिन्हें वह (पुष्टि मार्ग) स्तरीय मानता है । जो उसकी बराबरी में नहीं तो उसके आसपास ज़रूर ठहरते हैं । जिनका अपना कोई दार्शनिक मतवाद है । यही वजह है कि पुष्टिमार्ग के समय में तमाम निर्गुण पंथ तथा राधावल्लभ और हरिदासी जैसे संप्रदाय बनते पनपते हैं, लेकिन बल्लभ संप्रदाय उनकी नोटिस नहीं लेता । संप्रदाय के ग्रंथों में उनका नामोल्लेख तक नहीं होता ।

राजसत्ता का संरक्षण पाकर पुष्टि मार्ग अपने समकालीन संप्रदायों पर भारी पड़ता है । वह बड़े व्यवस्थित ढंग से सभी प्रतिद्वन्द्वी मतों, संप्रदायों पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है । ये दोनों स्थितियां उसके प्रसार के लिए अनुकूल ज़मीन तैयार करती हैं । उसके सामने अब तीसरा लक्ष्य है - अपना आंतरिक सत्ता तंत्र मजबूत करना । तीसरे अध्याय में पुष्टिमार्ग के इसी आंतरिक सत्ता तंत्र की विवेचना है । पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने ऐसे सिद्धांत बनाए कि पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के विचलन की न्यूनतम गुंजाइश भी शेष न रही । उत्तम वैष्णव के कुछ केन्द्रीय भाव निर्धारित कर दिए गए । एकनिष्ठता की गारंटी<sup>सुनिश्चित करने</sup> वाले इन केन्द्रीय भावों में दास भाव, पतिव्रता भाव, आर्त भाव आते हैं । इनसे वैष्णव विशेष की अनन्यता पक्की हो जाती है ।

पुष्टिमार्गीय सिद्धांत अन्याश्रय के प्रसंग में सर्वाधिक कड़ा रुख अपनाते हैं । वैष्णव अपनी कल्पना में भी किसी अन्य देव का आश्रय नहीं ले सकता । इस<sup>अपराध के</sup> लिए निर्धारित दंड पर्याप्त भयकारी है । गुसाईं विट्ठलनाथ ने व्यवस्था दी कि अन्याश्रय के गंध मात्र से गर्दन कट सकती है - अन्य संबंध गंधों<sup>पि</sup> कंधरामेव बाधते । अन्याश्रय करने वाले वैष्णवों की दुर्गति के उदाहरण कई वार्ता प्रसंगों में देखे जा सकते हैं (जिन्हें यथा स्थान उद्धृत किया गया है) । पुष्टिमार्ग के परवर्ती व्यवस्थाकार गोस्वामी



हरिराय ने इस मुद्दे पर विस्तार से प्रकाश डाला है । उनकी व्यवस्थाएं संप्रदाय के सेवकों के मन में भक्ति से अधिक भय का संचार करती होंगी, ऐसा थोड़े संकोच के साथ कहा जा सकता है । किसी व्यक्ति को पुष्टि मार्ग में दीक्षित करना नाम समर्पण और ब्रह्म संबंध कहा जाता है । यहां समर्पण का आशय पूर्ण समर्पण से है । जिस सेवक को ब्रह्म संबंध की दीक्षा दे दी जाती है, उसका सब कुछ आचार्य जी महाप्रभु का हो जाता है । चूंकि पुष्टि मार्ग सेवामार्ग है, इसलिए पुष्टि मार्गी सेवक से उम्मीद की जाती है कि वह शरीर और धन दोनों से सेवा करेगा । आचार्य वल्लभ का कहना है कि सेवा का मतलब अपने चित्त को <sup>शरीर और धन के साथ</sup> संपूर्ण रूप से प्रभु के चरणों में विनियोग कर देना है - 'चैतस्तत्प्रवर्णा सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा ।'

महाप्रभु वल्लभ को स्त्री तथा शूद्र का उद्धारक बताया गया है । तीसरे अध्याय के अंतिम भाग में इस धारणा की समीक्षा है । पुष्टि संप्रदाय में स्त्रियां और शूद्र दोनों पर्याप्त संख्या में हैं । कई स्थलों पर वार्ता ग्रंथों में इनका सम्मान के साथ उल्लेख है । लेकिन इसका आशय यह नहीं कि पुष्टि मार्ग भारतीय समाज के पदानुक्रम में कोई फेर-बदल प्रस्तावित कर रहा था । वह अंततः ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का ही हिमायती है । संप्रदाय विस्तार की कामना और निर्गुण पंथियों के बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने की रणनीति के तहत ही ऐसी उदारता बरती गई थी ।

इस धारणा पर आलोचकों में आम सहमति बन गई है कि भक्त कवि किसी बाहरी अनुशासन से नियंत्रित न होकर स्वातंत्र्य से सुखाय लिखते थे । उन्हें न अपने आश्रयदाता की रुचियों का खयाल रखना पड़ता था, न शास्त्रों, आचार्यों की व्यवस्थाओं का । वे लोक के कवि थे, लोकमंगल उनका ध्येय था और लोकसत्ता ही उनकी प्रेरणा । शोध-प्रबंध के चौथे अध्याय में इस आम सहमति पर पुनर्विचार की कोशिश हुई है । अध्याय का शीर्षक है - 'पुष्टिमागीय अनुशासन में कवि और कविता' ।

शीर्षक से मंतव्य स्पष्ट है - पुष्टिमार्गीय रचनाकार बाहरी अनुशासन से मुक्त नहीं थे । उन्हें शरणदाता आचार्य के किानों में बंध कर ही कविता करनी पड़ती थी । गोस्वामी विट्ठलनाथ ने संप्रदाय के आठ प्रमुख रचनाकारों को चुनकर अष्टह्वाप का गठन किया था । इस गठन का प्राथमिक उद्देश्य साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए रचनाकारों को प्रोत्साहन देना नहीं था, जैसा कि आम तौर पर समझा जाता है। अष्टह्वाप का गठन इस उद्देश्य से संचालित था कि पुष्टिमार्ग के संगठन तथा विस्तार में इन कीर्तनकारों का कहां और कितना उपयोग किया जा सकता है । सामान्य पुष्टिमार्गी वैष्णवों की तरह इन पर भी संप्रदाय के सभी नियम लागू होते थे । इन कवियों को भी अपनी अनन्यता समय समय पर प्रमाणित करनी होती थी । ये कवि श्रीनाथ जी के मंदिर के आधिकारिक तौर पर नियुक्त कीर्तनियां थे । इनके द्वारा रचित पद बल्लभ संप्रदाय के नित्योत्सवों एवं वर्णोत्सवों पर गाए जाने के लिए थे । कृष्णलीला का कौन सा अंश कौन कवि अपने पदों में उतारेगा इसकी आचार्यों ने व्यवस्था कर रखी थी । सूरदास को अगर बाललीला और मानलीला के पद रचने की आज्ञा मिली थी तो कुंभनदास को निकुंजलीला गायन की ।

शोध-प्रबंध के पांचवें अध्याय में बल्लभ संप्रदाय के वैभव विस्तार की चर्चा है । बल्लभ-संप्रदाय का वैभव राग, भोग और शृंगार की त्रयी के रूप में दिखाई देता है । इस संप्रदाय के पास जितनी संपदा इकट्ठी हुई, वह प्रतिद्वन्द्वी संप्रदायों के लिए ईर्ष्या का कारण थी । गुसाईं विट्ठलनाथ ने अधिकाधिक लोगों को आकृष्ट करने के लिए वैभव प्रदर्शन की समुचित व्यवस्था की । धनाढ्य वैष्णवों से लेकर सामान्य वैष्णवों तक पुष्टिमार्ग के वैभव की अभिवृद्धि में सहयोग देते थे । गुसाईं विट्ठलनाथ की छोटे-बड़े राजाओं से निकटता संपत्ति इकट्ठा करने में बहुत सहायक हुई ।

एक वैभवशाली संप्रदाय की गद्दी में जबर्दस्त आकर्षण होता है । पुष्टिमार्ग की गद्दी पर बैठने के लिए जो विवाद हुए उसका कारण संप्रदाय का अपार ऐश्वर्य था । हालांकि, गुसाईं विट्ठलनाथ ने भविष्य

में होने वाले गद्दी के भगड़े को भांप कर अपने सातों पुत्रों में बंटवारा समय रहते कर दिया था, पर फिर भी, संप्रदाय में कई भगड़े हुए । एक विवाद निपटाने के लिए औरंगजेब को हस्तक्षेप करना पड़ा था । परवर्ती काल में पुष्टि मार्ग पर कुछ दूसरी आपदाएं भी आईं ।  
 'महाराजा लाइबल केस' उनमें से एक था ।

संवेदनात्मक धरातल पर भक्ति की मौजूदगी चूंकि लगातार बनी हुई है इसलिए उस पर नए सिरे से अनुसंधान की गुंजाइश बनती रहती है । प्रस्तुत प्रबंध में शोधकर्ता की कोशिश रही है कि भक्ति संवेदना के कुछ अनछुए पहलुओं की व्याख्या की जाए । अपेक्षाकृत नई सामग्री और नए परिप्रेक्ष्य के साथ इस दिशा में कदम बढ़ाया गया है । शोध के एक सतत संभावनाशील क्षेत्र में यह कोशिश एक छोटा सा पड़ाव बन सके तो यही इसकी सार्थकता होगी ।

## ग्रन्थानुक्रमिका

### आधार ग्रंथ

कंठमणि शास्त्री

- 1. कांकरोलीका इतिहास, द्वितीय भाग, विद्या विभाग, कांकरोली, संवत् 1996 विक्रमी
- 2. अष्टछाप (प्राचीन-वार्ता-रहस्य, द्वितीय भाग) विद्या विभाग, कांकरोली, द्वितीय संस्करण, संवत् 2009 विक्रमी

गोकुलनाथ

- 1. चौरासी वैष्णव की वार्ता, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, संस्करण 1986 ई०
- 2. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, रामदास जी द्वारा संपादित, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई 1989 ई०
- 3. भावसिन्धु, श्री भक्ति ग्रंथ माला कार्यालय, अहमदाबाद, प्रथमावृत्ति सं० 1978 वि०

ब्रजभूषण शर्मा  
(प्रधान संपादक)

- 1. गोविन्द स्वामी, वार्ता और पद संग्रह, विद्या विभाग, कांकरोली, सं० 2008 वि०
- 2. चतुर्भुजदास, जीवन भाँकी तथा पद संग्रह, विद्या विभाग, कांकरोली, सं० 2014 वि०
- 3. हितस्वामी, जीवनी और पद संग्रह, विद्या विभाग, कांकरोली सं० 2012 वि०
- 4. परमानन्द सागर, विद्या विभाग, कांकरोली, सं० 2016 वि०

- ब्रजरत्नदास  
(संपादक) - नंददास गंधावली
- रघुनाथ जी शिवजी  
(संग्रहकर्ता) - श्री वल्लभ पुष्टि प्रकाश अर्थात् श्री वल्लभ  
सम्प्रदाय पुष्टिमार्गीय सातों घरन की  
सेवाविधि, लक्ष्मी वैकटेश्वर स्टीम प्रेस,  
कल्याण, बंबई, सन् 1988 ई०
- वल्लभाचार्य - षोडश ग्रंथ, संपादक - गोस्वामी श्री वागीश  
कुमार जी, कांकरौली, राजस्थान,  
प्रकाशन तिथि प्राप्त नहीं
- विट्ठलनाथ - सर्वोत्तम स्तोत्र, हिन्दी संस्करण  
प्रकाशक - विद्या विभाग, कांकरौली  
राजस्थान, सं० 2054 वि०
- विट्ठलनाथ भट्ट - सम्प्रदाय कल्पद्रुम, लक्ष्मी वैकटेश्वर ह्यापासना  
कल्याण, बंबई, सं० 1950 वि०
- सीताराम वर्मा - श्री वल्लभ दिग्विजय (भाषा में), चन्द्रप्रभा  
यंत्रालय बनारस, प्रकाशन वर्ष 1887
- हरिराय - 1. बड़े शिक्षा पत्र, श्री गोपेश्वर जी कृत  
ब्रजभाषा टीका सहित, प्रभाशंकर जय-  
शंकर पाठक, जगदीश्वर प्रिंटिंग प्रेस,  
गिरगांव, मुंबई, चतुर्थ संस्करण सन्  
1936 ई०  
2. श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, विद्या  
विभाग, मंदिर मंडल, नाथद्वारा,  
सं० 2053 वि०

सहायक ग्रंथ  
-----

- तुलसीदास - रामचरित मानस (मूल मफली साइज),  
गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2039 वि०
- दयानंद सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार  
ट्रस्ट, दिल्ली, 1995 ई०
- दाउद अली  
(संपादक) - इन्वोकिंग द पास्ट, ओयूपी, नई दिल्ली  
1999 ई०
- दीनदयाल गुप्त - अष्टक्याप और बल्लभ संप्रदाय, भाग एक  
और दो, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,  
द्वितीय संस्करण सन् 1970 ई०
- नामवर सिंह - दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन,  
नई दिल्ली, 1983
- नाभादास - भक्तमाल, लक्ष्मी वैकटेश्वर स्टीम प्रेस,  
बंबई, 1989 ई०
- प्रमुदयाल मीतल - 1. अष्टक्याप परिचय, अग्रवाल भवन,  
मथुरा, सं० 2006 वि०  
2. सूर सर्वस्व, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली,  
प्रथम संस्करण 1983  
3. चैतन्य मत और साहित्य, साहित्य  
संस्थान, मथुरा, 1962 ई०  
4. ब्रजस्थ बल्लभ संप्रदाय का इतिहास,  
साहित्य संस्थान, मथुरा, 1968 ई०
- बलदेव उपाध्याय - वैष्णव संप्रदायों का साहित्य और सिद्धांत,  
चाखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी,  
वि० सं० 2035

भगवती प्रसाद देवपुरा -  
(संपादक)

1. हीरक जयंती ग्रंथ, साहित्य मंडल  
नाथद्वारा, सन् 1997 ई०
2. गोस्वामी हरिराय स्मृति ग्रंथ, साहित्य  
मंडल, नाथद्वारा, 1995 ई०
3. गो० गोकुलनाथ स्मृति ग्रंथ, साहित्य  
मंडल, नाथद्वारा, 1996 ई०
4. अष्टहाप स्मृति ग्रंथ, साहित्य मंडल  
नाथद्वारा, 1988 ई०
5. श्रीनाथ जी अंक, साहित्य मंडल, नाथ-  
द्वारा, 1997 ई०
6. पाटोत्सव स्मृति ग्रंथ, साहित्य मंडल  
नाथद्वारा, 1994 ई०
7. गोसाईं विट्ठलनाथ स्मृति ग्रंथ,  
साहित्य मंडल, नाथद्वारा, 1993 ई०
8. कुंभनदास अंक, साहित्य मंडल, नाथद्वारा,  
सन् 1998 ई०
9. नाथद्वारा दर्शन, सत्येश पुस्तक भंडार,  
नाथद्वारा, नवा संस्करण
10. हीरक जयंती परिशिष्टांक, साहित्य  
मंडल, नाथद्वारा,

राहुल सांकृत्यायन

- अकबर, किताब महल, इलाहाबाद

रामचंद्र शुक्ल

- हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी  
प्रचारिणी सभा, वाराणसी, ऋषीसवा  
संस्करण, सं० 2049 वि०

रामविलास शर्मा

- परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन,  
नई दिल्ली, 1987

- रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य और सविदना का विकास,  
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्  
1993 ई०
- रामकृष्ण शर्मा - अष्टहापेतर पुष्टिमागीय कवि : सिद्धांत  
और साहित्य, राधा पब्लिकेशंस, नई  
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1991
- रत्नकुमारी - हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि, भारतीय  
साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1956 ई०
- वसुधा डालमिया (सं०) - रिप्रजेंटिंग हिंदुइज्म, सेज पब्लिकेशन,  
नई दिल्ली, 1996 ई०
- विष्णु विराट चतुर्वेदी (संपादक) - पुष्टि माधुर्य (कृष्णदास स्मृति ग्रंथ),  
श्री कल्याण राय सार्वजनिक चैरीटेबल  
ट्रस्ट, बडौदा, 1997 ई०
- विजयेंद्र स्नातक - राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और  
साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, सं०  
2014 वि०
- श्रीराम शर्मा - दि रिलिजियस पाल्सी आफ द मुगल  
संमर्स, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स,  
नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 1988
- शरलोत वादवेल - मिथ्स, संत्स एंड लीजेंड्स इन मेडिवल  
इंडिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,  
दिल्ली, 1996 ई०
- शकुंतला शर्मा - पुष्टि मागीय कवनामृत साहित्य, प्रकाशक  
कृष्णभरणा जैन एवं संतति, नई दिल्ली,  
1979 ई०



- शम्सुल उल्मा मौलाना - अकबरी दरबार (अनुवादक - रामचंद्र वर्मा)  
मुहम्मद हुसैन 'आजाद' नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,  
सं० 2024 वि०
- सरौजनी कुलश्रेष्ठ - हिंदी साहित्य में कृष्ण, राजश्री प्रकाशन,  
मथुरा, सन् 1965 ई०
- सावित्री सिन्हा - मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां,  
आत्माराम एंड संस, दिल्ली-6,  
प्रारंभिक सं० 1963 ई०
- सुरेन्द्र नाथ दासगुप्त - भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 से 5,  
राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, संस्करण  
1988
- हरिनाथ टंडन - वार्ता साहित्य (एक वृहत् अध्ययन),  
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़,  
सन् 1960 ई०